ॐ

॥ श्रीनेमिनाथाय नमः ॥

स्व० श्रीमद् ब्रह्मचारी नेमिदत्तजी कृत

श्री नेमिनाथ पुराण

संस्कृत से हिन्दी में अनुवादकर्ता

स्व० पं० उदयलालजी कासलीवाल

(बड़नगर)

सम्पादन :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2081	2551	2024

—: प्रकाशन :—

शाश्वत् अष्टाह्निका पर्व (कार्तिक)

दिनांक, 8 से 15 नवम्बर 2024

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जीवन चरित्ररूप नेमिनाथ पुराण प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों का उपदेश होता है, उसमें प्रथम अनुयोग का नाम प्रथमानुयोग है। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग और करणानुयोग में जो वर्णन है, उसकी दृष्टान्त द्वारा प्रसिद्धि, प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग के अभ्यास से तीनों अनुयोगों का समझना सरल बनता है।

प्रथमानुयोग के अभ्यास से—

❖ पुराण-पात्रों के प्रसंग पढ़ने-विचारने से दृढ़ता होती है कि क्रमबद्ध अनुसार - होनहार अनुसार परिणमते हुए परिणमन काल में उसके योग्य पुरुषार्थ होता ही है; क्रमबद्ध अनुसार पुरुषार्थ होता ही है, कर्तृत्वपूर्वक करना नहीं पड़ता परन्तु सहजरूप से उसके योग्य पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता, इसलिए मुझे कर्तृत्वपूर्वक पुरुषार्थ करने का बोझा भी नहीं रहता। मैं तो मात्र ज्ञातारूप से रहता हुआ एक ज्ञायकभाव हूँ।

❖ जीवों के भूतकाल के और भविष्य काल के निश्चित परिणामों का वर्णन जानकर क्रमबद्धपर्याय की यथार्थ श्रद्धा द्वारा अकर्तास्वभाव के सन्मुख हुआ जाता है।

❖ संसारी जीवों के पापमय परिणामों होने पर भी उनकी क्षणिकता समझने से स्वभाव में संसार की गन्ध भी नहीं है, ऐसा महिमावन्त ज्ञायक मैं हूँ - ऐसी दृढ़ता होती है।

❖ एक जीव दूसरे जीव पर क्रोध करे तो उसके संस्कार भव-भव तक रहते हैं, राग करे तो उसके संस्कार भी भव-भव तक नहीं छूटते और कुदेव-गुरु-धर्म के सेवन से नरक-निगोद में चिरकाल भ्रमण करके फिर से मनुष्य होने पर कुधर्म के संस्कार पुनः जागृत हो जाना जानकर, जीव को वीतरागधर्म की आराधना की विशेष जागृति रहती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भगवान नेमिनाथ द्वारा द्वारिका एवं श्रीकृष्ण की मृत्यु के

सन्दर्भ में की गयी भविष्यवाणी अटल सत्य सिद्ध हुई, जो कि क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त की दृढ़ता और वस्तुस्वातन्त्र्य की प्रबल प्रेरणा प्रदाता एक अत्यन्त मननीय प्रसंग है। ऐसे-ऐसे अनेक प्रसंगों से प्रस्तुत ग्रन्थ भरा हुआ है। जिसका सूक्ष्म अवगाहन कर निश्चितरूप से आत्महित साधा जा सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का संस्कृत भाषा से हिन्दी अनुवाद स्वर्गीय पण्डित उदयलालजी कासलीवाल बड़नगरवालों ने किया था, जिसका प्रकाशन अनेक वर्षों पूर्व दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत द्वारा किया गया था। वर्तमान में इस ग्रन्थ की अनुपलब्धता एवं उपयोगिता को दृष्टिगोचर रखते हुए प्रस्तुत सम्पादित संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें मात्र प्राचीन हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्दों का वर्तमानकालीन भाषा में प्रचलित शब्दों को रखा गया है। आवश्यकतानुसार भाषा को प्रवाहमयी बनाने का प्रयास किया गया है।

सभी जीव इस ग्रन्थ को पढ़कर निज आत्महित साधें, इसी भावना के साथ।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

प्रकाशकीय निवेदन

(प्रथमावृत्ति)

श्रीकृष्ण व कौरव-पाण्डवों के ऐतिहासिक काल में होनेवाले हमारे वर्तमान चौबीसी के 22वें तीर्थंकर **भगवान नेमिनाथ** का यह पुराण, 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होनेवाले विद्वान ब्रह्मचारी नेमिदत्तजी कृत संस्कृत में है जो हस्तलिखित ग्रन्थ बड़नगर के दिगम्बर जैन मन्दिर से प्राप्त करके पण्डित उदयलालजी कासलीवाल (बड़नगर नि०) ने मुम्बई में रहकर इसका हिन्दी अनुवाद तैयार करके अपने हिन्दी जैन साहित्य प्रचारक कार्यालय, मुम्बई द्वारा करीब 40 वर्ष हुए प्रकट किया था जो कई वर्षों से मिलता ही नहीं था और इस ग्रन्थराज की बहुत माँग आती रहती थी। इससे हमने इस संस्था के वर्तमान कार्यकर्ता श्री बा० बिहारीलालजी कठनेरा (मुम्बई) की सम्मति प्राप्त करके इस 'नेमिनाथ पुराण' की दूसरी आवृत्ति प्रकट की है, और इसका अधिकाधिकि प्रचार हो इसलिए इसको 'जैनमित्र' के ग्राहकों को भेंट में दे रहे हैं तथा कुछ प्रतियाँ विक्रयार्थ भी निकाली गयी हैं। आशा है प्रथमानुयोग के इस पुराण ग्रन्थ का शीघ्र ही प्रचार हो जाएगा।

इस ग्रन्थ में श्री नेमिनाथ तथा उनके माता, पिता, श्रीकृष्ण, बलदेव, कृष्ण की आठ पट्टरानियाँ आदि के पूर्वभव वर्णित किये गये हैं जो प्रत्येक पाठक के रोम-रोम खड़े करनेवाले हैं तथा इससे पुनर्जन्म व शुभाशुभकर्म का फल बराबर दृष्टिगोचर होते हैं।

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना जो आगे प्रकट है, वह वीर सेवा मन्दिर के कार्यकर्ता व 'अनेकान्त' पत्र के स० संपादक व प्रकाशक, अनन्य विद्वान पण्डित परमानन्दजी जैन शास्त्री ने साहित्य सेवा के भाव से लिख दी है। अत: उनकी इस सेवा के लिये हम अतीव कृतज्ञ हैं।

सूरत - वीर संवत् 2481
ता० 9-11-1954

निवेदक
मूलचन्द किसनदास कापड़िया

ॐ

॥ श्रीनेमिनाथाय नमः ॥

श्री नेमिनाथ पुराण

और

ब्रह्म नेमिदत्त

भारतीय इतिहास में भगवान पार्श्वनाथ की तरह भगवान नेमिनाथ भी ऐतिहासिक महापुरुष माने जाने लगे हैं। यजुर्वेद और प्रभासपुराण में भगवान नेमिनाथ का उल्लेख मिलता है [१] कि भगवान नेमिनाथ जैनियों के 22वें तीर्थंकर थे।

चन्द्रवंशी राजा यदु के वंश में शूरसेन नाम का एक प्रतापी राजा हुआ, जिसने शौरीपुर नाम का एक नगर बसाया था। उसका वंश 'यदुवंश' के नाम से लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। शूरसेन के अधकवृष्णि आदि पुत्र हुए और अधकवृष्णि के समुद्रविजय और वसुदेव आदि दस पुत्र तथा कुन्ती और माद्री नाम की दो पुत्रियाँ हुईं। काश्यपगोत्री राजा समुद्रविजय की रानी शिवा या शिवदेवी के गर्भ से श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में भगवान नेमिनाथ का जन्म हुआ था[२]। उस समय इन्द्र ने रत्नों की वृष्टि की थी। वसुदेव की, देवकी नामक रानी से श्रीकृष्ण और रेवती रानी से बलदेव का जन्म हुआ। नेमिनाथ को अरिष्टनेमि भी कहा जाता है। नेमिनाथ यदुवंशरूपी

१. **देखो, यजुर्वेद अध्याय 9, म० 25 ?**
रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्॥ प्रभासपुराण।

२. **अथ श्री श्रावणे मासे, शुक्लपक्षे मनोहरे।**
षष्ठी दिने शुभे चित्रा, नक्षत्रेण विराजिते॥ नेमिपुराण।

कमलों को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य थे। बाल्यकाल से ही नेमिनाथ की जीवन प्रकृति वैराग्य को लिये हुए थी।

देह-भोगों की ओर उनका कोई झुकाव नहीं था। किन्तु बाल्यावस्था में आपकी क्रीड़ायें श्री कृष्ण के प्रतिस्पर्धक रूप में होती थी, जिनमें श्री नेमिनाथ के अतुल पराक्रम और असीमित बल का अनुभव होता था, उनसे श्री कृष्ण के दिल में यह भय था कि कहीं नेमिनाथ का झुकाव राज्य-कार्य की ओर न हो जाए। अत: उससे बचने के लिये श्री कृष्ण ने सोच-विचार कर एक युक्ति निकाली, कि श्री नेमिनाथ का विवाह कर दिया जाए।

फलस्वरूप जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती का विवाह नेमिनाथ के साथ करना तय हो गया। विवाह के लिये जाते समय मार्ग में मूक पशुओं का एक समूह एक वाड़े में इकट्ठा कर दिया गया, उनके करुणाक्रन्दन से श्री नेमिनाथ का दया-समुद्र उमड़ पड़ा, उनसे उनका दु:ख देखा न गया। उन्होंने सारथी से पूछा—ये पशु इकट्ठे क्यों किये गये हैं ? उत्तर में सारथी ने कहा कि इन्हें बारात में आनेवाले लोगों के आतिथ्य के लिये इकट्ठा किया गया है।

इतना सुनते ही श्री नेमिनाथ ने सारथी से रथ रोकने को कहा। रथ रुक गया, श्री नेमिनाथ ने सबसे पहले उन पशुओं को छुड़ाया और फिर स्वयं ने कँकण आदि विवाह-चिह्नों और समस्त वस्त्राभूषणों को उतारकर फेंक दिया, और आप ऊर्जयन्तगिरि (गिरशिखर) पर जाकर दीक्षा धारण कर दिगम्बर साधु बन गये और घोर तपश्चर्या द्वारा आत्म-साधना कर कैवल्य पद प्राप्त किया। और अनेक देशों में विहार कर लोक में अहिंसा धर्म का उपदेश दिया, जगत के जीवों को आत्मकल्याण का आदर्श मार्ग दिखलाया, और अन्त में अवशिष्ट अघातिया कर्म-समूह को नष्ट कर गिरनार पर्वत से निर्वाण प्राप्त किया।

इस तरह भगवान नेमिनाथ ने बाल ब्रह्मचारी रहकर लोक में उच्चादर्श की प्रतिष्ठा की। राजमती ने जब नेमिनाथ की दीक्षा लेने का हाल सुना तो उसे बहुत दु:ख हुआ, परन्तु बाद में उन्होंने भी गिरनार पर्वत पर जाकर दीक्षित

होकर तपश्चरण का अनुष्ठान किया और स्वर्ग सुख प्राप्त किया।

श्री नेमिनाथ के पावन जीवन परिचय पर संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी और गुजराती भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनकी कुछ सूची निम्न प्रकार है:—

1.	हरिवंशपुराण	जिनसेन	संस्कृत
2.	''	स्वयंभू	अपभ्रंश
3.	''	धवलकवि	''
4.	''	रइधू	''
5.	''	भ० यशकीर्ति	''
6.	''	भ० श्रुतकीर्ति	''
7.	नेमिनाथचरित	गुणभद्र	संस्कृत (उत्तरपुराण में)
8.	''	पुष्पदन्त	'' ''
9.	'' हरिवंशपुराण	भ० श्रीभूषण	''
10.	''	भ० धर्मकीर्ति	''
11.	''	ब्रह्मजिनदास	''
12.	''	रामचन्द्र	''
13.	नेमिनाथपुराण	ब्रह्मनेमिदत्त	संस्कृत
14.	नेमिनाथचरित्र	विक्रमकवि	''
15.	णेमिणहचरिउ	कविदामोदर	अपभ्रंश
16.	नेमिनाथपुराण	हेमचन्द	संस्कृत
17.	हरिवंशपुराण	कवि शालिवाहन	हिन्दी
18.	''	कवि खुशालचन्द	''
19.	नेमिनाथपुराण	वखतावर रतनलाल	''

इनके अतिरिक्त अनेक स्तोत्र, रासा और बारहमासा आदि अनेक फुटकर रचनाएँ विविध कवियों द्वारा रची गयी हैं। स्तोत्रों में सबसे पुराना स्तोत्र आचार्य समन्तभद्र का है, जिनका समय विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी है।

श्री नेमिनाथ के निर्वाण होने के कारण ऊर्जयन्तगिरि जैनियों का पावन तीर्थक्षेत्र है। उसका एक-एक कण श्री नेमिनाथ की तपश्चर्या और कठोर आत्मसाधना से पावन बना हुआ है। इसी से पुरातन काल से जैनी लोग उक्त तीर्थ की वन्दना करने के लिये संघ सहित जाते हैं और पुण्य का संचय करते हैं। प्राचीनकाल में अनेक मुनि संघसहित श्री नेमिनाथ की यात्रा के लिये विहार करते थे। गोवर्धनाचार्य गिरनार की यात्रा को गये थे।

प्रभासपाटन के प्राचीन ताम्रपत्र से जो पण्डित हरिशंकर शास्त्री को एक ब्राह्मण के पास से मिला था और जिसका अनुवाद हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० प्राणनाथ ने किया था, उसमें बतलाया गया है कि—सौराष्ट्र के जूनागढ़ के समीप रैवतक (गिरनार) पर्वत पर स्थित जैनियों के 22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमी की मूर्ति की पूजार्थ बेबीलोन देश के अधिपति नेवुचन्द नेजर प्रथम ने (1140 ई० पूर्व) अथवा द्वितीय ने (640-561 ई० पूर्व के करीब) अपने देश की उस आमदनी को जो नाविकों से नौका द्वारा प्राप्त होती थी प्रदान की।*

इसी गिरनार पर्वत की चन्द्रगुहा में धरसेनाचार्य ने श्री पुष्पदन्त और श्री भूतबली नाम के दो साधुओं को आगम का रहस्य बतलाया था। आचार्य श्री समन्तभद्र ने अपने स्तोत्र में इस पर्वत को विद्याधरों और मुनियों से सेवित प्रकट किया है। इस क्षेत्र पर अनेक प्राचीन जैन मन्दिर और भगवान नेमिनाथ की सुन्दर मूर्ति थी, परन्तु खेद है कि अब उक्त पर्वत पर जैनियों का नाम मात्र का प्रभाव रह गया है। वहाँ पर पुरातत्त्व विषयक प्राचीन सामग्री का प्राय: अभाव सा है।

इस ग्रन्थ का नाम श्री नेमिनाथ पुराण है, जिसमें भगवान नेमिनाथ के जीवन परिचय के साथ समसामायिक अपने चचेरे भाई श्री कृष्ण, बलदेव, वासुदेवादिक का, कौरव और पाण्डवादि का परिचय भी कराया गया है। ग्रन्थ की मूल भाषा संस्कृत है जो सरल जान पड़ती है। ग्रन्थ के रचयिता ब्रह्म नेमिदत्त है, जो मूलसंघ सरस्वती गच्छ बलात्कारगण के विद्वान थे। इनके

* See Illustrated Weekly of Indian, 14 Ap. 1935.

दीक्षागुरु भ० विद्यानन्द थे, जो भ० देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे और विद्यानन्दि के पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाले 'मल्लिभूषण' गुरु के शिष्य थे। भ० मल्लिभूषण की इस समय तक दो कृतियों का पता चला है, जिनमें एक 'रात्रिभोजन कथा' है। इस ग्रन्थ की 27 पत्रात्मक 1 प्रति सं० 1678 की लिखी हुई जयपुर के बड़े तेरापन्थी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है और दूसरी कृति 'पंच कल्याणक पूजा' है, जो ईडर के भण्डार में पायी जाती है। इनका समय विक्रम की 16वीं शताब्दी का मध्यभाग है। चूँकि भगवान मल्लिभूषण की पट्ट-परम्परा गुजरात में रही है। इनके पट्टधर भगवान लक्ष्मीचन्द्र थे।

ब्रह्म नेमिदत्त ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है, किन्तु इस समय वे सब रचनाएँ मेरे पास नहीं हैं, जिनसे यह निश्चय किया जा सके कि उन्होंने कौन सी रचना कहाँ और कब निर्माण की? उनकी ज्ञात रचनाओं के नाम तो इस प्रकार हैं :—

1. रात्रिभोजनत्याग कथा; 2. सुदर्शन चरित; 3. श्रीपाल चरित; 4. धर्मोपदेश पीयूष वर्ष श्रावकाचार; 5. नेमिनाथ पुराण; 6. आराधना कथाकोश; 7. प्रीतिकर महामुनि चरित; 8. धन्यकुमार रचित; 9. नेमिनिर्वाण काव्य (ईडर); और 10. नागश्री कथा (जयपुर)।

इनका समय विक्रम की 16वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। ब्रह्म नेमिदत्त का जन्म सम्भवत संवत् 1550 या 1555 के आस-पास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि इन्होंने अपना आराधना कथा कोश संवत् 1575 के लगभग बनाया था और श्रीपाल चरित संवत् 1585 में बनाकर समाप्त किया है। शेष सब ग्रन्थ प्राय: उक्त समय के मध्यवर्तीकाल की रचनाएँ ज्ञात होती हैं।

परमानन्द जैन,
वीरसेवा मन्दिर, लाल मन्दिर,
चाँदनी चौक, देहली

विषय सूची

क्र०	विषय	पृष्ठ
1.	पहला अध्याय—मंगल और प्रस्तावना.....	1
2.	दूसरा अध्याय—नेमिनाथजिन के पूर्वभव.....	7
3.	तीसरा अध्याय—हरिवंश का वर्णन.....	29
4.	चौथा अध्याय—वसुदेव का देशत्याग और.....	52
5.	पाँचवाँ अध्याय—कंस व कृष्ण का जन्म, कृष्ण.....	75
6.	छठा अध्याय—जरासंघ की मृत्यु और नेमिजिन.....	106
7.	सातवाँ अध्याय—देवों द्वारा श्री नेमिजिन का.....	123
8.	आठवाँ अध्याय—कृष्ण बलदेव की दिग्विजय यात्रा.....	136
9.	नौवाँ अध्याय—नेमिजिन का तपकल्याण.....	151
10.	दसवाँ अध्याय—नेमिजिन को केवल-लाभ.....	175
11.	ग्यारहवाँ अध्याय—नेमिजिन का पवित्र उपदेश.....	206
12.	बारहवाँ अध्याय—कृष्ण को नेमिजिन का तत्त्वोपदेश.....	248
13.	तेरहवाँ अध्याय—देवकी, बलदेव और कृष्ण के पूर्वभव.....	266
14.	चौदहवाँ अध्याय—कृष्ण की पट्टरानियों के पूर्वभव.....	279
15.	पन्द्रहवाँ अध्याय—प्रद्युम्न हरण, विद्यालाभ और.....	301
16.	सोलहवाँ अध्याय—कृष्ण की मृत्यु, पांडव और.....	334

प्रथमानुयोग का प्रयोजन

प्रथमानुयोग में तो संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल, महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया है। जो जीव तुच्छबुद्धि हों, वे भी उससे धर्मसन्मुख होते हैं, क्योंकि वे जीव सूक्ष्म निरूपण को नहीं पहिचानते, लौकिक कथाओं को जानते हैं, वहाँ उनका उपयोग लगता है। तथा प्रथमानुयोग में लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होने से उसे वे भली-भाँति समझ जाते हैं। तथा लोक में तो रागादिक की कथाओं में पाप का पोषण होता है। यहाँ महन्त पुरुष राजादिक की कथाएँ तो हैं, परन्तु प्रयोजन जहाँ-तहाँ पाप को छुड़ाकर धर्म में लगाने का प्रगट करते हैं; इसलिए वे जीव कथाओं के लालच से तो उन्हें पढ़ते-सुनते हैं और फिर पाप को बुरा, धर्म को भला जानकर धर्म में रुचिवन्त होते हैं।

इस प्रकार तुच्छबुद्धियों को समझाने के लिये यह अनुयोग है। 'प्रथम' अर्थात् 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि', उनके अर्थ में जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोम्मटसार की टीका में किया है।

तथा जिन जीवों के तत्त्वज्ञान हुआ हो, पश्चात् इस प्रथमानुयोग को पढ़ें-सुनें तो उन्हें वह उसके उदाहरणरूप भासित होता है। जैसे - जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं - ऐसा यह जानता था। तथा पुराणों में जीवों के भवान्तर निरूपित किये हैं, वे उस जानने के उदाहरण हुए। तथा शुभ-अशुभ-शुद्धोपयोग को जानता था व उसके फल को जानता था। पुराणों में उन उपयोगों की प्रवृत्ति और उनका फल जीव के हुआ, सो निरूपण किया है, वही उस जानने का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार अन्य जानना।

यहाँ उदाहरण का अर्थ यह है कि जिस प्रकार जानता था, उसी प्रकार वहाँ किसी जीव के अवस्था हुई - इसलिए यह उस जानने की साक्षी हुई।

तथा जैसे कोई सुभट है, वह सुभटों की प्रशंसा और कायरों की निन्दा जिसमें हो - ऐसी किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने से सुभटपने में अति उत्साहवान होता है; उसी प्रकार धर्मात्मा है, वह धर्मात्माओं की प्रशंसा और पापियों की निन्दा जिसमें हो, ऐसे किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने से धर्म में अति उत्साहवान होता है।

इस प्रकार यह प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना।

—मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय-8, पृष्ठ-268-269

ॐ

॥ श्रीनेमिनाथाय नमः ॥

श्रीमद् ब्रह्मचारी नेमिदत्तजी कृत

श्री नेमिनाथ पुराण

(हिन्दी वचनिका)

पहला अध्याय
मंगल और प्रस्तावना

श्री विराजमान और लोकालोक के प्रकाशक नेमिनाथ भगवान को नमस्कार कर भव्यजनों को सुख देनेवाला नेमिनाथ जिनका चरित लिखता हूँ। जिनके शोभायमान चरणों को नमस्कार करते हुए देवगण के मुकुटों की कान्ति-सरोवर में कमलों की शोभा को धारण किया और जिन्होंने धर्मचक्र को चलाने में धुरा का काम किया—जिनके द्वारा धर्म की वृद्धि हुई, उन संसार-कमल को प्रफुल्लित करनेवाले नेमिनाथ जिनकी मैं स्तुति करता हूँ।

और जो सब सौभाग्यों के समूह होकर सब प्रकार के इन्द्रों द्वारा पूज्य तथा भव्यजनों को सुख के कारण हुए, सूर्य की प्रभा जैसे कमलों को विकसित करती है, उसी तरह जिनके नाम का स्मरण ही परम-सुख देता है; और जिनके जन्म के पहले ही स्वर्ग के देवताओं ने भक्ति से रत्नवृष्टि कर निरन्तर सेवा की, उन स्वर्ग-मोक्ष के कारण नेमिनाथ जिन को भक्ति से प्रणाम है।

स्वर्ग के इन्द्र जिनके चरणों की पूजा करते हैं और जिन्होंने बिना किसी कठिनाई के अपने शिष्यों को श्रेष्ठ धर्म का उपदेश किया, उन ऋषभजिन को नमस्कार है।

उन जगत् के हित करनेवाले अजितजिन को नमस्कार है। जिनका पवित्र आत्मा राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि शत्रुओं से न जीता गया।

संसार-ताप के मिटानेवाले सम्भवजिन और देवों के अधिदेव अभिनन्दनजिन को, भव्यजनों को सुमति देनेवाले सुमतिजिन और कान्तिशाली तथा प्रसिद्ध अतिशय-धारी पद्मप्रभजिन को, संसार की श्रेष्ठ सम्पदा का सुख देनेवाले सुपार्श्वजिन और सब दुःखों के नाश करनेवाले प्रभावान् चन्द्रप्रभजिन को, खिले हुए कुन्द के फूल समान सुन्दर पुष्पदन्तजिन और शीतल श्रेष्ठ वचनवाले शीतलजिन को, श्रेष्ठ पुण्य के कारण श्रेयांसजिन और जगत्पूज्य, खिले कमल समान मुख-शोभा धारण करनेवाले वासुपूज्यजिन को, केवलज्ञानरूपी सूरज विमलजिन और अनन्त सुख समान अनन्तजिन को, धर्मतीर्थ के कर्ता, देवताओं द्वारा पूज्य धर्मजिन और सब भव्य जिन्हें मानते हैं, उन शान्तिजिन को, कुंथवे आदि छोटे जीवों पर भी दया करनेवाले कुन्थुजिन और श्रेष्ठ लक्ष्मी को देनेवाले अरहजिन को, मोह-शत्रु को नष्ट करनेवाले महामल्ल, शल्यरहित मल्लिजिन और अच्छे व्रतों से युक्त मुनिसुव्रतजिन को, जिन्हें देवगण नमस्कार करते हैं, उन नमिजिन और देव-पूज्य, त्रिजगन्नाथ नेमिनाथजिन को, प्रसिद्ध महिमाधारी पार्श्वजिन और सुख के स्थान महावीर भगवान को नमस्कार है। देवताओं द्वारा

वन्दनीय ये सब तीर्थंकर तथा आगे होनेवाले और जो हो चुके हैं, वे सब शान्ति दें।

लोक शिखर पर विराजमान और संसार से पार हो गये सिद्ध-भगवान की मैं आराधना करता हूँ, वे मेरे कार्य को पूरा करें।

सूरज के समान अन्धकार को नाशकर जो तत्त्वों का प्रकाश करती है, उस निर्मल जिनवाणी को नमस्कार है।

रत्नत्रय-पवित्र मुनियों के सुख देनेवाले और संसार-समुद्र से पार रकनेवाले चरण-कमलों को नमस्कार है।

निर्मल मूलसंघरूपी ऊँचे उदयाचल पर जो सूरज के समान शोभा को धारण करते हैं, उन मल्लिभूषण भट्टारक की जय हो।

मोक्षमार्ग का प्रकाश करने के लिये दीपक के समान और श्रेष्ठ ज्ञान के समुद्र, गुण-विराजमान गुरुजन मेरे हृदयकमल में बसे।

इस प्रकार देव, गुरु और श्रुतदेवी के चरण-कमलों में स्मरण, मेरे इस पुराणरूपी ऊँचे महल पर कलश की शोभा को धारण करें।

जिस पुराण को गुणभद्र जैसे महाकवियों ने कहा, उसके कहने का मुझ सरीखा अल्पज्ञ भी साहस करे, यह थोड़े आश्चर्य की बात नहीं। अथवा सूर्य के द्वारा प्रकाशित रास्ते में कौन आँखोंवाला पुरुष बिना किसी कठिनाई के न जा सकेगा? उसी तरह यद्यपि मैं अल्पज्ञ हूँ, तथापि उन पूर्वाचार्यों की कृपा से नेमिनाथजिन का यह पवित्र चरित अपने तथा दूसरों के हित के लिये संक्षेप में कहने का साहस करता हूँ।

यदि बहुत अमृत न मिले तो, क्या प्राप्त हुआ थोड़ा अमृत

पीकर सुखी न होना चाहिए? यही सब विचारकर और अपने बान्धवजन, सिंहनन्दी आदि आचार्य तथा अपना हित चाहनेवाले अन्य भव्यजनों की प्रेरणा से अपनी शक्ति के अनुसार नेमिनाथजिन का चरित लिखता हूँ। वीर पुरुष के द्वारा उकसाया कायर-डरपोक भी शूरवीर बन जाता है।

ज्ञानी गौतमभगवान ने श्रेणिक महाराज के पूछने पर जैसा यह पवित्र पुराण कहा तथा त्रेसठ शलाका के महापुरुषाश्रित महापुराण में जैसा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रथमानुयोग को श्रेष्ठ कारण कहा है, उसी क्रम से मैं भी संक्षेप में नेमिनाथ जिन का पुराण-चरित बुद्धि न होने पर भी केवल भक्ति के वश होकर कहता हूँ। हे बुद्धिमान भव्यजनों! आप इस सुख के कारण पुराण को सुनिए। इसके सुनने से अनन्त सुख प्राप्त होता है।

पुराणकार को अपने पुराण की आदि में सत्पुरुषों के आनन्द के लिये वक्ता और श्रोता के लक्षण कहना चाहिए।

अच्छा वक्ता - उपदेश करनेवाला वह है, जो सब शास्त्रों का जानकार, धर्मात्मा, नीति का जाननेवाला, सदाचारी, विचारशील, क्षमावान हो, जिसे सब लोग चाहते हों, जो जिन भगवान का भक्त हो, जिसने अपनी तर्कणा-शक्ति से शंकायें उठा-उठाकर उनका उत्तर जान लिया हो और दयावान, निरभिमानी, सदा पवित्र भावना और पवित्र विचार करनेवाला हो। इन गुणों से युक्त वक्ता ही को बुद्धिमानों ने अपना और दूसरों का हित करनेवाला कहा है।

श्रोता - उपदेश सुननेवाला वह उत्तम है जो देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची भक्ति रखता हो, जिसे किसी प्रकार का आग्रह या

पक्षपात न हो, जो दानी, धर्मात्माओं से प्रेम करनेवाला, पात्र तथा अपात्र के भेद का जाननेवाला, गुण और दोषों का विचार करनेवाला, काम-क्रोध रहित और साधर्मी-सेवा आदि गुणों का धारी हो।

आचार्यों ने कथा के चार भेद बतलाये हैं। शास्त्रानुसार वे यहाँ लिखे जाते हैं। उन्हें सुनिये। उन कथाओं के नाम हैं—आक्षेपिणी -कथा, विक्षेपिणीकथा, संवेगिनीकथा और निर्वेदिनीकथा।

इनके लक्षण ये हैं—हेतु और दृष्टान्तादि द्वारा विद्वान लोग जो अपने स्याद्वादमत का समर्थन करते हैं, वह आक्षेपिणीकथा है।

पूर्वापर-विरोधयुक्त मिथ्यावादियों के मत का जिसमें खण्डन किया जाये, वह विक्षेपिणीकथा है।

जिसमें तीर्थंकरादि का चरित या विशेषकर धर्म का फल बतलाया गया हो, वह संवेगिनीकथा है। और जिसमें संसार-शरीर-भोगादिक की स्थिति तथा स्वरूप आदि का वर्णन हो, वह वैराग्य की कारण निर्वेदिनीकथा है। ये चारों सत्कथायें हैं और पुण्यबन्ध की कारण हैं। और जहाँ केवल राग-द्वेषादि का वर्णन हो, उसे कुकथा समझनी चाहिए।

यह नेमिनाथपुराण प्रथमानुयोग से उत्पन्न हुआ है, पुण्य का कारण है और संसार के प्राणियों का हित करनेवाला है; इसलिए जो भव्यजन इसे पढ़ते हैं, दूसरों को पढ़ाते हैं या सुनते हैं, वे सदा परमसुख प्राप्त करते हैं। अन्य ग्रन्थ में लिखा है कि जो जिन भगवान के पवित्र पुराण की पूजा करते हैं, वे शान्ति-तुष्टि लाभ करते हैं, जो पूछते हैं, वे पुष्टि को प्राप्त होते हैं, जो पढ़ते हैं, वे आरोग्य लाभ करते हैं और जो सुनते हैं, उनको कर्मों की निर्जरा होती है।

इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तावना कहकर अब नेमिनाथ भगवान

का पवित्र चरित्र यथा शास्त्रानुसार लिखा जाता है।

नमस्कार करते हुए देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि के मुकुटों के कान्तिजल में धुलकर जिनके चरण पवित्र हो गये हैं, जिनका आत्मा अत्यन्त पवित्र है, जो लोक और अलोक के जाननेवाले हैं, और प्राणियों को मनोवांछित देनेवाले–चिन्तामणि समान हैं। वे गुणनिधि **श्री नेमिनाथजिन** मंगल–सुख करें।

इति प्रथमः सर्गः।

दूसरा अध्याय
नेमिनाथजिन के पूर्वभव

सम्पदा के स्थान जम्बूद्वीप के बीच में सुदर्शन नाम का पर्वत है। वह सोने का है, बड़ा ऊँचा है। उसके चारों ओर चार वन हैं। उनसे वह ऐसा जान पड़ता है, मानो रेशमी कपड़े पहने हुए सब द्वीप-समुद्रों का राजा है। सीता और सीतोदा नाम की दो बड़ी नदियाँ उसके पास होकर बहती हैं। उनका पानी बड़ा निर्मल है और वे बड़ी गहरी हैं। जैसे किसी उच्च घराने की दो राज-रानियाँ हों।

सुमेरु के उन चारों वनों में बड़े-बड़े जिनमन्दिर हैं। उनमें भगवान की सुन्दर प्रतिमायें हैं। मेरु से कोई एक बाल के इतना अन्तर छोड़कर ऊपर स्वर्ग का ऋजुविमान है। वह बड़ा चौड़ा छत्र की सी शोभा को धारण किये हुए है। सूरज चाँद आदि ज्योतिष चक्र मेरु के चारों ओर सदा घूमा करता है। मानो राजा की सेवा में जैसे सेवक लोग खड़े हैं।

मेरु के पश्चिम और सीतोदा नदी से उत्तर की ओर सारे संसार की सम्पत्ति का निवासस्थान सुगन्धिल नाम देश है। वह ग्राम, पुर, पत्तन, खेट, द्रौण, मटव आदि से युक्त है। उसमें स्वच्छ पानी भरे हुए, बहुत गहरे और कमलों से युक्त सुन्दर तालाब सज्जन पुरुषों के समान जान पड़ते हैं। सज्जन पुरुष भी निर्मल हृदयवाले और गम्भीर प्रकृति के होते हैं।

वहाँ की नाना वस्तुओं की खाने तथा सुन्दर खजानों से पृथ्वी का वसुन्धरा नाम सार्थक है। उसमें-रास्ते के ऊँचे, छायादार और

सदा फल-फूलों से झुके हुए वृक्ष सज्जनों के समान जान पड़ते हैं। सज्जन भी उन्नत विचारवाले, दूसरों को आश्रय देनेवाले या कान्ति के धारक और नम्र होते हैं। उनके फलों को खाकर पथिकजन बड़े सन्तुष्ट होते हैं। वहाँ पर्वत के समान ऊँची अन्न की ढेरियाँ भव्यजनों के संचित किये पुण्य-समूह के समान जान पड़ती हैं। वहाँ की ग्वालिनों के सुन्दर रूप को देखकर स्वर्ग के देव-देवांगनाएँ मुग्ध हो जाते हैं, तब औरों की तो बात ही क्या?

वहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और बड़े-बड़े माण्डलिक राजगण उत्पन्न होते हैं। उसके वन में जिनमन्दिर रत्नों के तोरणों और ध्वाजाअें से बड़ी सुन्दरता धारण किये हुए हैं। वहाँ के भव्यजन जो परोपकार द्वारा पुण्य उपार्जित करते हैं, उनसे वे वन-जन-सुख-सम्पत्ति से युक्त होते हैं।

वहाँ अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि का कष्ट नहीं होता। वहाँ मिथ्या देवताओं की स्थापना, पाखण्डी और धर्म-ढोंगी गुरुओं की सेवा कोई नहीं करता। केवल दशलक्षणमय जिनधर्म ही को, जिसे स्वर्ग के देवता भी पूजते हैं, सब मानते हैं। रत्नत्रय के धारक पवित्र हृदयवाले मुनिजन आत्मयोग का साधन कर वहाँ से सदा मोक्ष को जाते हैं।

उस देश में सुवर्ण-रत्नादिक सम्पत्ति से परिपूर्ण सिंहपुर नाम का एक नगर है। उसके चारों ओर एक सफेद रंग का किला बना है। जैसे वहाँ के राजा के संसार-व्यापी यश ने उस पुर को घेर रखा हो। गोपुरद्वार, खाई, गृहों की पंक्ति, ध्वजा आदि से वह पुर स्वर्ग के समान जान पड़ता था।

उस पुर के चारों ओर नारियल, सन्तरा, सेब, नाशपाती आदि फलों से झुके हुए वृक्ष कल्पवृक्ष के समान मालूम होते थे। वहाँ के जिनभवन, कुएँ, बावड़ी, सरोवर, फूल बाग आदि से युक्त थे। उन पर सुन्दर ध्वजायें फहरा रही थीं। वहाँ की प्रजा बहुत धन-दौलत से युक्त थी और पुण्य से प्राप्त हुए मनचाहे भोगों से बड़ी सुखी थी। वहाँ सदा ही कुछ न कुछ मंगल-उत्सव हुआ ही करते थे। कभी जिनयात्रोत्सव होता और कभी पुत्रादिक का जन्मोत्सव मनाया जाता था।

वहाँ के निवासी बड़ी प्रसन्नता से पात्रों को चारों प्रकार का दान देते थे और महासुख को देनेवाली जिनपूजा करते थे। वहाँ के लोग सम्यक्त्वसहित आठ-आठ, पन्द्रह-पन्द्रह दिन के उपवास कर और अपने योग्य शीलव्रत का पालन कर उत्तम गति लाभ करते थे। स्त्रियाँ वहाँ की बड़ी खूबसूरत और सदाचारिणी थीं। उनमें दुराचार का नामनिशान भी नहीं था।

इत्यादि श्रेष्ठ सम्पत्ति से भरे हुए सिंहपुर के राजा 'अर्हद्दास' थे। वे देव-गुरु-शास्त्र के बड़े भक्त थे। बड़े गुणवान थे, शूरवीर थे, गम्भीर थे और सुन्दरता उनकी इतनी चढ़ी-बढ़ी थी कि कामदेव को भी उन्होंने जीत लिया था। क्षत्रियों में वे शिरोमणि गिने जाते थे। उन्होंने अपने पराक्रम से क्रूर सिंह को, धन-वैभव से कुबेर को, प्रताप से सूरज को और कान्ति से चन्द्रमा को जीत लिया था। सवेरे के सूरज से सरोवर जल जैसे लाल हो उठता है, उसी तरह उनका प्रताप शत्रुओं के लिये बड़ा ही तीव्र था और चन्द्रमा की कान्ति जिसे कुमुद-पुष्पों को शीतल और विकसित करती है,

उसी तरह उनकी कान्ति सत्पुरुषों के लिये शीतल थी।

'अर्हद्दास' बड़े दानी और भोगी थे—कृपण न थे। विचारशील और धर्म के तत्त्व को जाननेवाले थे। बड़े नीतिवान थे। सब राजाओं के लिए वे आदर्श थे। स्त्री जैसे प्रिय और मनचाहा सुख देनेवाली होती है, उसी तरह उन्हें चारों राज-विद्याएँ प्रिय और सुख देनेवाली थीं। उन विद्याओं के नाम हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, कर्ता और दण्डनीति।

'अर्हद्दास' राज्य के जो सात अंग हैं, उनसे युक्त थे। उन्होंने राजाओं के छह शत्रु काम, क्रोध, लोभ आदि को जीत लिया था। अपने धार्मिक-नैमित्तिक क्रिया-कर्म में वे सदा तत्पर रहते थे। वे सन्धि, विग्रह, आदि छह राज-गुणों से युक्त थे। इन गुणों से वे ऐसे शोभते थे, जैसे गृहस्थ देवार्चना आदि छह नित्यकर्मों से शोभता है।

'अर्हद्दास' की रानी 'जिनदत्ता' थी। वह बड़ी पतिपरायणा और सारी स्त्री-सृष्टि का भूषण थी। स्वर्ग की देवांगनाओं को उसकी संसार-श्रेष्ठ सुन्दरता देखकर इतना अचम्भा हुआ कि वे फिर पलक तक न गिरा सकें। (देवांगनाओं के पलक नहीं गिरते यह प्रसिद्ध है।) उसका शरीर बड़ा कोमल, उसकी वाणी बड़ी मधुर, उसका मन बड़ा दयालु था। और दान करने में मानों वह कल्पबेल थी। इस प्रकार वे पति-पत्नी पुण्य से प्राप्त भोगों को भोगा करते थे। उनका समय बड़े सुख से बीतता था।

एक दिन रानी 'जिनदत्ता' ने अष्टाह्निका के दिनों में जिन भगवान की पूजा की। उसके कोई सन्तान न होने के कारण उस

रात को पुत्र की भावना करती हुई वह सो गयी। रात के अन्तिम भाग में उसने स्वप्न में सिंह, हाथी, चाँद, सूरज और नहाती हुई लक्ष्मी को देखा। उस समय जान पड़ा कि कोई महापुरुष सबको सुख देने के लिए उसके गर्भ में आया। नौवें महीने के अन्त में उसने बड़े सुख के साथ पुण्य के पुंज पुत्र को जन्म दिया। जैसे कवि की बुद्धि सुन्दर काव्य को जन्म देती है।

उस समय सारे देश और पुर के लोगों को बड़ा ही आनन्द हुआ। सुपुत्र कुल का दीपक होता है। 'अर्हद्दास' महाराज ने अपने पुत्र का जन्म महोत्सव बड़े ठाट-बाट के साथ मनाया। याचकजनों को उनके मन के माफिक दान दिया। जिस दिन से 'अर्हद्दास' के पुत्र जन्म हुआ, उस दिन से उन्हें शत्रुओं पर बड़ी विजय मिली। इसी कारण बन्धु लोगों ने जिनमन्दिर में बहुत उत्सव कर उस बालक का नाम भी 'अपराजित' रखा।

पूर्व पुण्य से जीवों को सब प्रकार का उत्तम सुख मिलता ही है। इसलिए भव्यजनों! प्रमाद छोड़कर सुख देनेवाले पुण्यकर्मों को सदा करते रहो। मुनि लोगों ने जिनदेव की पूजा करना, पात्रों को दान देना, व्रत-उपवास करना और शील पालना आदि पुण्य के कारण बतलाये हैं।

बालक 'अपराजित' का रूप-सौभाग्य दिन-दिन बढ़ता ही गया। चन्द्रमा के समान उसे बढ़ता देखकर कुटुम्ब-परिवार के लोगों को बड़ा आनन्द हुआ। जो आगे तीर्थंकर होनेवाला है और देवतागण जिसे पूजते हैं, उस महात्मा के गुणसमुद्र का पार कौन पा सकता है?

इस प्रकार पुत्र, धन-दौलत, राज्य-वैभव से युक्त 'अर्हद्दास' महाराज बड़े सुख से समय बिताते थे।

इसी समय इनके 'मनोहर' नामक बाग में 'विमलवाहन मुनि' आकर ठहरे। वनमाली ने उनके आने की खबर राजा को दी। इस अच्छी खबर लानेवाले माली को राजा ने उचित इनाम देकर सारे शहर में भी इस आनन्द-समाचार को पहुँचा दिया। इसके बाद वे परिजन-पुरजनसहित बड़े ठाट-बाट से मुनिवन्दना को गये। वहाँ उन्होंने चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्यों से युक्त, देवताओं द्वारा पूजा को प्राप्त, धर्मामृत की वर्षा करते हुए, समवसरण में विराजमान, केवलज्ञानी और निर्ग्रन्थ तीर्थंकर भगवान को देखा।

उन्होंने उन जगत्पूज्य भगवान की तीन प्रदक्षिणा कर और बार-बार उन्हें नमस्कार कर जल-चन्दनादि द्रव्यों द्वारा उनकी पूजा की और इस प्रकार स्तुति की—देव! आप तीन जगत के स्वामी हैं, तीन लोक के भूषण हैं, सब जीवों के रक्षक हैं और गुरु हैं। आपने घातियाकर्मों का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। आप संसाररूपी समुद्र के पार को प्राप्त हो चुके हैं और इसीलिए भव्य पुरुषों को आप तारनेवाले हैं। आप सात तत्त्वरूपी रत्नों के स्थान-पर्वत हैं। (पर्वत से रत्न उत्पन्न होते हैं, ऐसा प्रसिद्ध है।) देवताओं के इन्द्र, चक्रवर्ती आदि आपको पूजते हैं। आप निस्पृह, होकर जगत् का हित करते हैं।

हे नाथ! आप तीन लोक के पिता समान हैं, मंगलों के मंगल हैं, लोक में सबसे उत्तम हैं और भव्यजनों के एकमात्र शरण हैं। प्रभो! आपके चरणों की सेवा से जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख

और सैकड़ों कष्टों के सहने पर भी नहीं प्राप्त होता—स्वप्न में भी वह सुख दुर्लभ है। नाथ! आपके लिए निर्वाण-गमन में रत्नत्रय एक सुन्दर वाहन-सवारी हुई। इसलिए आपका विमल-वाहन नाम वास्तव में सार्थक है। इत्यादि भगवान की स्तुति कर और अन्य मुनियों को नमस्कार कर राजा ने प्रसन्न मन से धर्म का स्वरूप पूछा। जिन भगवान ने तब इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इस प्रकार रत्नत्रय को धर्म कहते हैं। वह रत्नत्रय व्यवहार और निश्चय इन भेदों से दो प्रकार का है। जो व्यवहार रत्नत्रय कहा गया, उसमें उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन उसे कहा है, जो निःशंकितादि आदि अंगसहित हो। जिससे पदार्थों के विशेष आकारादि जाने जायें, वह ज्ञान है। उस ज्ञान को, बुद्धि के पार को पहुँचे हुए लोगों ने आठ प्रकार का कहा है।

अहिंसा आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समिति के भेद से चारित्र तेरह प्रकार का है।

यह रत्नत्रय संसार में बड़ा ही पूज्य है। इसके फल से इन्द्र, चक्रवर्ती आदि की सम्पत्ति और क्रम से केवलज्ञान प्राप्त होता है। और जो मुनि लोग अपने आत्मा के ही सच्चे श्रद्धान, सच्चे ज्ञान और अपने आप में लीन होनेरूप चारित्र को प्राप्त करते हैं, वह निश्चय रत्नत्रय है और मोक्ष का देनेवाला है। इस प्रकार धर्म का स्वरूप सुनकर राजा संसार-शरीर-भोग से अत्यन्त उदास हो गये।

अपने पुत्र 'अपराजित' को राज्य देकर अन्य पाँच सौ राजाओं

के साथ उन्होंने जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। इधर कामजयी अपराजित कुमार ने भी सम्यक्त्वपूर्वक पाँच अणुव्रत ग्रहण कर तोरणादि से सजाये गये अपने पुर में बड़े वैभव के साथ प्रवेश किया। जैसे इन्द्र स्वर्ग में प्रवेश करता है।

इसके बाद व्रती, पवित्र और बड़े धर्मात्मा राजकुमार ने अपना सब राजकाज मन्त्रियों को सौंपकर नाना प्रकार के सुख भोगने, पात्रों को दान देने, जिनभगवान की पूजा करने और शास्त्रचर्चा करने आदि में अपने मन को अधिक लगाया।

इस तरह कुछ समय बाद एक दिन अपराजित को समाचार मिला कि भगवान 'विमलवाहन' के साथ अपने पिता 'अर्हद्दास' भी गन्धमादन नाम पर्वत पर से मोक्ष पधार गये हैं। यह सुनकर अपराजित बड़ा दु:खी हुआ। उसने तब प्रतिज्ञा कर ली कि मैं पिताजी के दर्शन किये बिना भोजन नहीं करूँगा। इन्द्र ने तब फिर कुबेर को विमलवाहन और अर्हद्दास जिन के समवसरण रचने की आज्ञा दी।

कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से समवसरण रचकर दोनों जिन के अपराजित को दर्शन कराये। अपराजित ने बड़े आनन्द से उनकी पूजा की। धर्मात्माओं का कौन मित्र नहीं होता ? अपराजित राजा को इस प्रकार धर्म-अर्थ-काम का उपभोग करते बहुत समय भी एक क्षणभर के समान जान पड़ा।

★ ★ ★

बसन्त के दिन थे। एक बार अपराजित राजा नन्दीश्वर पर्व में महान अभ्युदय की देनेवाली जिन पूजा करके धर्मानुराग से भव्यजनों

को धर्मोपदेश कर रहा था। इसी समय दो आकाशचारी मुनि वहाँ पधारे। राजा ने नमस्कार कर उनकी स्तुति की। स्तुति के अन्त में राजा ने भक्ति से एक बार फिर उन मुनिराजों को नमस्कार किया।

इसके बाद उनका धर्मोपदेश सुनकर राजा ने उनसे पूछा—नाथ! मुझे ऐसा भान होता है कि पहले कहीं मैंने जगत का हित करनेवाले आप माहात्माओं के दर्शन किये हैं। परन्तु यह नहीं जानता कि किस स्थान पर और वह स्थान कहाँ है? नाथ! आपको देखकर मेरे हृदय में बड़ा प्रेम उत्पन्न होता है। कृपाकर ये सब बातें बतलाइए कि इसका कारण क्या है?

उन मुनियों में से बड़े मुनि ने कहा—राजन, तुम्हारा कहा सत्य है। तुमने हमको पहले देखा है। वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

★ ★ ★

पुष्करार्ध द्वीप के मेरु की पश्चिम दिशा में और सीतोदा नदी के उत्तर किनारे 'गन्धिल' नाम का एक मनोहर देश है। उसमें विजयार्द्ध-पर्वत की उत्तरश्रेणी का भूषण 'सूर्यप्रभ' नामक एक पुर था। उसके राजा का नाम भी 'सूर्यप्रभ' था। वह बड़ा प्रतापी और धर्मात्मा था। उसकी रानी का नाम 'धारिणी' था। वह बड़ी सौभाग्यवती थी।

इनके तीन पुत्र हुए। उनके नाम थे—चिन्तागति, मनोगति, और चपलगति। मुनियों को जैसे रत्नत्रय के लाभ से आनन्द होता है, उसी तरह ये राजा-रानी इन पुत्रों को पाकर महा सुखी हुए।

विजयार्द्ध की उत्तरश्रेणी में ही 'अरविन्द' नामक एक और पुर था। उसके राजा का नाम 'अरिंजय' था। वह विद्याधरों का स्वामी

था। इसकी रानी का नाम 'अजितसेना' था। राजा को रानी प्राणों से अधिक प्यारी थी। इनके 'प्रीतिमती' नाम की एक बड़ी सुन्दरी लड़की थी। वह एक दिन अपने पिता के साथ मेरु की प्रदक्षिणा करने गयी। वहाँ उसने एक प्रतिज्ञा की कि 'मैं किसी नियत स्थान पर एक रत्नमाला रख लूँगी। जो अपने विद्याबल से मेरे आगे दौड़कर उस माला को पहले उठा लेना, वही बुद्धिमान मेरा स्वामी होगा; दूसरा नहीं।'

प्रीतिमती के साथ विवाह की आशा करके बहुत से विद्याधर राजकुमार आये। उन सबको अकेली प्रीतिमती ने हरा दिया। वे बहुत अपमानित होकर वापिस लौटे। बिना अच्छे पुण्य के जय नहीं मिलती। इस मौके पर चिन्तागति के भाई मनोगति और चपलगति भी गये थे। चिन्तागति नहीं गया था, और राजकुमारों की तरह इन दोनों भाईयों को भी अपना सा मुँह लेकर लौट आना पड़ा। इन्होंने अपना मानभंग का हाल अपने बड़े भाई चिन्तागति से कहा।

चिन्तागति यह सुनकर अरविन्दपुर आया। उसने बात की बात में प्रीतिमती को जीतकर बड़ी ख्याति लाभ अर्जित की। प्रीतिमती जब चिन्तागति के गले में वरमाला पहनाने लगी, तब चिन्तागति उससे बोला—कुमारी! तुम यह माला मुझे न पहनाकर मेरे छोटे भाई को पहनाओ—उसे ही अपना पति समझो।

इसके उत्तर में प्रीतिमती बोली—जिसने मुझे जीता है, उसे छोड़कर मैं किसी तरह अन्य पुरुष को अपने स्वामीपन का मान नहीं दे सकती। प्रीतिमती के इन वचनों को सुनकर चिन्तागति ने फिर कहा—तो कुमारी! सुनो! मेरे भाईयों ने पहले तुम्हारे साथ जो

गतियुद्ध किया था, वह तुम पर मोहित होकर ही किया था। इसलिए जिसे मेरे छोटे भाईयों ने चाहा, वह मेरे योग्य नहीं; अत: मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता—मैं तुम्हें सर्वथा छोड़ चुका। तब उनमें जो तुम्हें पसन्द हो, उसे इस माला के द्वारा भूषित करो। सत्य है—सज्जनों के मन की महिमा कोई नहीं कह सकता।

चिन्तागति की यह प्रतिज्ञा सुनकर प्रीतिमती मेरु के समान दृढ़ निश्चयवाली और महा वैरागिन बन गयी। उसने फिर संसार-भोग और परिग्रह को छोड़कर निर्वृत्ता नाम आर्यिका के निकट तप ग्रहण किया। उसका इस नई उम्र में ऐसा साहस देखकर और बहुतों ने तप ग्रहण किया।

चिन्तागति और उसके दोनों भाई भी प्रीतिमती का यह कठिन साहस देखकर संसार-भोगादिकों से अत्यन्त उदासीन हो गये।

उन्होंने फिर 'दमधर' नामक आचार्य के पास जिनदीक्षा ग्रहण कर बहुत तप किया। अन्त में संन्याससहित शरीर त्यागकर 'चिन्तागति' चौथे माहेन्द्र स्वर्ग में अपने भाईयों के साथ 'सामानिक देव' हुआ। वहाँ उसने सात सागर तक बहुत दिव्य भोगों को भोगा।

★ ★ ★

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में 'पुष्कलावती' नामक देश है। उसमें विजयार्द्धपर्वत की उत्तरश्रेणी में 'गगनबल्लभ' नामक पुर है। उसके राजा का नाम 'गगनचन्द्र' था। उनकी रानी का नाम 'पुरसुन्दरी' था। माहेन्द्र स्वर्ग में जो चिन्तागति और उसके दो भाई थे, वे वहाँ की आयु पूरी कर इस पुरसुन्दरी के 'अमितगति' और 'अमिततेज' नाम के हम दो पुत्र हुए। हमने तीनों विद्याओं को पढ़ा। हम बड़े

पराक्रमी वीर हुए। एक दिन हम दोनों भाई किसी कारणवश पुण्डरीकणी नगरी में गये हुए थे। वहाँ श्रीस्वयंप्रभ तीर्थंकर का समवसरण आया जानकर हम वन्दना को गये।

बड़ी भक्ति के साथ हमने उनकी पूजा की। इसके बाद हमने उनसे अपने पूर्वजन्म का हाल पूछा। उन्होंने हमारा तीन जन्म का हाल कहा। हमने फिर उनसे पूछा—भगवन, हमारा तीसरा भाई चिन्तागति इस समय कहाँ है ? उत्तर में भगवान बोले—सुगन्धिल नाम का एक सुन्दर देश है। उसमें सिंहपुर नामक नगर है। उसका राजा अपराजित ही तुम्हारा भाई चिन्तागति है।

उनके द्वारा यह सब वृत्तान्त सुनकर हमने उसी समय जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। उसके बाद भ्रातृप्रेम के वश होकर हम दोनों भाई तुम्हें देखने को यहाँ आये। अब हम तुम्हें कुछ कहना चाहते हैं, तुम उसे जरा सावधान होकर सुनना।

भैया! पुण्य के उदय से अब तक, तुमने प्रचुर भोगों को भोगा, परन्तु अब तुम्हारी आयु मात्र एक महीने की रह गयी है। इसलिए अब तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए।

मुनि के इन वचनों को सुनकर अपराजित अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने कहा—श्रेष्ठ जिनधर्म का उपदेश करनेवाले आप सरीखे सर्व त्यागी निर्ग्रन्थ योगी भी पूर्वजन्म के प्रेम के वश होकर मुझसे मिलने को इतनी दूर से चलकर यहाँ पधारे, यह मेरे विशिष्ट पुण्य या भाग्य का उदय है। आप महात्माओं ने इस समय मेरा जो उपकार किया, वह उपकार आप सरीखे पूज्य पुरुषों को छोड़कर और कौन कर सकता है ? इत्यादि उन मुनिराजों की स्तुति कर

अपराजित ने उनको प्रणाम किया।

उस समय वे मुनिराज राजा को आशीर्वाद देकर अपने स्थान को चले गये। इधर धीरवीर अपराजित राजा ने सब राज्यभार अपने प्रीतिंकर नाम के पुत्र को देकर अष्टाह्निका पर्व की महापूजा की, भक्तिपूर्वक प्रसन्न मन से पात्रों को दान दिया और अपने सब कुटुम्ब-परिवार को विदा करके शल्यरहित होकर प्रायोपगमन नामक संन्यास ले लिया।

संसार-समुद्र से पार करनेवाले पंच परम गुरु का स्मरण करते हुए उसने प्राण त्याग किया। जाकर उसने सोलहवें स्वर्ग के रत्नमयी पुष्पविमान की दिव्यसेज में उपपाद-जन्म लिया। वहाँ अन्तर्मुहूर्त में वात, पित्त, कफ आदि दोष, धातु और रोग, शोक, अपमृत्यु से रहित होकर वह दिव्य शरीर का धारक पूर्ण युवावस्था को प्राप्त देव हुआ।

★ ★ ★

उस 'अच्युतेन्द्र' ने अवधिज्ञान द्वारा यह सब पूर्व पुण्य का प्रभाव समझकर जिनधर्म की बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद उसने अमृतकुण्ड में स्नान कर जिनपूजा की और सिंहासन पर बैठकर अपने को नमस्कार करने आये हुए देवताओं का उचित आदर-सत्कार किया। उसे अणिमादिक आठ ऋद्धियाँ प्राप्त हुईं। वह परम आनन्द में लीन रहने लगा। उसका हृदय बड़ा पवित्र था। महा वैभवयुक्त वह देवांगनाओं के साथ अनेक प्रकार का दिव्य सुख भोगता हुआ, कल्पवेल से युक्त कल्पवृक्ष की तरह शोभने लगा।

जिसके पाप नष्ट हो गये हैं, ऐसा वह देव, कभी बड़े ठाट-

बाट से नन्दीश्वर द्वीप या मेरुपर्वत के अकृत्रिम जिनमन्दिर में जाकर वहाँ इच्छा मात्र से प्राप्त हुए दिव्य द्रव्यों द्वारा जिनप्रतिमाओं की पवित्र भावों से पूजा करता था, कभी मोक्षसुख के देनेवाले केवलीजिन के चरणों की बड़ी भक्ति से सेवा करता था, कभी सब सन्देहों के नाश करनेवाला जिन भगवान का सुमधुर उपदेश-संगीत सुनता था; और कभी बड़े आनन्द और भक्ति के साथ जिनभगवान के पाँच कल्याणक जिन-जिन स्थानों पर हुए हैं, उन स्थानों तथा मुनियों की पूजा करता था।

इस प्रकार पुण्य के फल से उस देव ने बाईस सागर पर्यन्त स्वर्ग के दिव्य सुखों को भोगा। उसके मानसिक आहार था— अर्थात् मन में आहार की इच्छा उत्पन्न होते ही तृप्ति हो जाती थी।

इस प्रकार की मानसिक इच्छा बाईस हजार वर्ष बीतने पर एक बार होती थी और उसी से उसे पंचेन्द्रियों के सब सुख प्राप्त हो जाते थे। उसके दिव्य देह की रचना ही ऐसी थी या उसके महान पुण्य का उदय था जो उसे ग्यारह महीने में एक बार सांस लेना पड़ता था।

इस प्रकार उस जिनभक्तदेव ने सोलहवें स्वर्ग में बहुत सुख भोगा।

★ ★ ★

भारतवर्ष में 'कुरुजांगल' नाम का एक सुन्दर देश है। उसमें हस्तिनापुर के राजा का नाम 'श्रीचन्द्र' था। वह बड़ा बुद्धिमान था। उसकी रानी 'श्रीमती' बड़ी सुन्दरी और सौभाग्यवती थी। वह सोलहवें स्वर्ग का देव इसी के सुप्रतिष्ठ नामक सुप्रसिद्ध पुत्र

हुआ। वह अत्यन्त खूबसूरत और गुणवान था। योग्य वय में इसका एक 'सुनन्दा' नामक राजकुमारी के साथ विवाह हुआ। सुनन्दा को पाकर वह बड़ा सुखी हुआ। प्राणों से अधिक वह अपनी प्रिय को चाहने लगा। एक दिन सुप्रतिष्ठ के पिता श्रीचन्द्र ने अपना राज्य का सब कारोबार सुप्रतिष्ठ को सौंपकर जगत का उपकार करनेवाले 'सुमन्दरमुनि' के निकट जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

सुप्रतिष्ठ अब राज्य चलाने लगा। उसने इस अवस्था में खूब सुखों को भोगा, जो भोग पापीजनों को अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। वह सब सम्पदा की देनेवाली जिनपूजा और अपने योग्य शील, व्रत, उपवासादिक सदा किया करता था। प्रजा का पालन वह पुत्र की तरह प्रेम से करता था।

एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा ने 'यशोधर' मुनि को विधिपूर्वक आहार कराया। उससे उनके यहाँ देवों ने रतन और फूलों की वर्षा की, नगाड़े बजाये, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहाया और जय-जयकार किया।

पात्रदान का फल ही ऐसा है कि उससे सुख प्राप्त होता है, सब सम्पदा मिलती है, दरिद्रता और दुर्गति का नाश होता है और मन अत्यन्त प्रमुदित होता है। तीन लोक में ऐसी कौन उत्तम से उत्तम वस्तु है, जो सत्पात्रदान से प्राप्त न हो।

इस प्रकार पात्र-दान को सब धर्म का मूल और जगत का उपकारी जानकर दोनों लोक में हित की इच्छा करनेवाले भव्यजनों को पात्र-दान सदा करते रहना चाहिए। इस प्रकार श्रावकधर्म को धारण कर सुप्रतिष्ठ राजा ने कुछ काल बिताया।

एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा अपनी प्रियाओं के साथ राजमहल पर से प्रकृति की शोभा देख रहा था। उस समय उसने आकाश से उल्का को गिरते देखा। उसे देखकर सुप्रतिष्ठ ने मन में विचारा— जैसी यह उल्का क्षणमात्र में नष्ट हो गयी, उसी तरह संसार में धन-जन, जीवन-यौवन, बन्धु-बान्धव आदि सब विनाशीक हैं।

जिस संसार में तीर्थंकर भगवान तक स्थिर न रहे, उसमें इन्द्र, चक्रवर्ती आदि को मौत के पंजे से कौन छुड़ा सकता है? यह शरीर मल से भरा हुआ, सन्ताप करनेवाला और नाश होनेवाला है। फिर भला कौन ज्ञानीजन इस शरीर में प्रेम करेगा?

ये पंचेन्द्रियों के विषय क्षणभर में साँप के समान प्राणों को नष्ट कर देनेवाले हैं। इन्हें भी लोग बड़े प्रेम से सेवन करते हैं। इससे बढ़कर और क्या मूर्खता होगी? इस प्रकार मन-वचन-काय से विरक्त होकर सुप्रतिष्ठ ने जिनभगवान का अभिषेक किया और पात्रों को यथायोग्य दान दिया।

इसके बाद अपने बड़े पुत्र 'सुदृष्टि' को राज्य देकर उसने सुमन्दर मुनि के पास सुख की कारण जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। सत्पुरुषों के मन में जो बात बैठ जाती है, उसे वे पूरी करके ही छोड़ते हैं। अब सुप्रतिष्ठित मुनि पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति का बड़े आदर के साथ पालन करने लगे। रत्नत्रय के निधिरूप इन सुप्रतिष्ठ मुनि ने थोड़े ही समय में ग्यारह अंगों को पढ़ लिया।

वे सोलहकारण भावनाओं को, जो पवित्र तीर्थंकर पद की कारण है, विचारने लगे। इन भावनाओं का शास्त्रानुसार संक्षेप स्वरूप

यहाँ लिखा जाता है, उसे आप लोग सावधान होकर सुनिये।

जिन भगवान ने जो विस्तारसहित सात तत्त्वों का स्वरूप कहा है, उसके श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। जैसे अक्षर-मात्रा से पूर्ण मन्त्र कार्य की सिद्धि का हेतु है, उसी तरह यह सम्यक्त्व नि:शंकतादि आठ अंगों से दृढ़ होकर सब सिद्धि का देनेवाला है। निर्मल आकाश में जैसे चन्द्रमा शोभा को प्राप्त होता है, उसी तरह यह सम्यक्त्व पच्चीस मल-दोषों से रहित होने पर सुन्दरता धारण करता है। जिस रत्न का साण पर चढ़ने से संस्कार हो चुका, वह जैसी दिव्य कान्ति धारण करता है, उसी तरह आठ मदरहित सम्यक्त्व शुद्ध कहा जाता है। जो दर्शनरूपी रत्न मन-वचन-काय से उत्पन्न वैराग्यरूपी जल से धुलकर पवित्र हो गया, भला वह फिर किसके मन को न हरेगा ? अथवा पंच परमेष्ठी की अनन्यभाव से शरण में प्राप्त होकर उनकी आराधना-ध्यान करना, वह भी सम्यग्दर्शन है। या मैं एक हूँ, ज्ञानी हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञाता-दृष्टा हूँ और सुखमय हूँ, सुख-दु:ख में इस प्रकार की भावना करने को भी सम्यग्दर्शन कहते हैं, इत्यादि लक्षणों से युक्त सम्यग्दर्शन की विशुद्ध-अत्यन्त निर्मलता होने को '**दर्शनविशुद्धिभावना**' कहते हैं।

इस भावना से युक्त होकर ही बाकी की सब भावनायें मोक्ष की कारण होती हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा इनके धारकों में जो महान विनय किया जाता है, उसकी पूर्णता होने को दूसरी '**विनयसम्पन्नताभावना**' कहा है। यह कर्मों की नाश करनेवाली हैं।

ब्रह्मचर्य के पालन करने को शील कहते हैं। उसके पालनेवाले

मुनि और श्रावक हैं। इसलिए वह दो प्रकार का है। मन-वचन-काय से अपने व्रत का रक्षण करने को भी शील कहते हैं। उसमें किसी प्रकार का अतिचार न लगाना—तीसरी '**शीतव्रतेष्वनतिचार-भावना**' है।

जिनप्रणीत शास्त्र समुद्र का सदा अवगाहन-स्वाध्याय करने को चौथी '**अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगभावना**' कहा है।

इस स्वाध्याय के पाँच भेद हैं। नरक गति में छेदन-भेदन आदि दु:ख हैं, पशुगति में भूख-प्यास आदि दु:ख हैं, मनुष्यगति में इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग आदि दु:ख हैं और देवगति में मानसिक दु:ख है। इस प्रकार चारों ही गति में दु:ख है—सारा संसार ही दु:खों का घर है। इस प्रकार के विचार को पाँचवीं '**संवेगभावना**' कहा है।

चारों प्रकार के पात्रों को चारों प्रकार का दान अपनी शक्ति के अनुसार देना, छठी '**शक्तितस्त्यागभावना**' है।

कर्मों की निर्जरा का कारण बारह प्रकार तप का शक्ति के अनुसार करना, सातवीं '**शक्तितस्तपभावना**' है।

रत्नत्रय पवित्र तथा और अनेक गुणों के धारक साधुओं को मन-वचन-काय से समाधि में लगाना—मृत्यु के समय उन पर किसी प्रकार का उपसर्गादि न आने देकर स्थिर चित्त रखना, आठवीं '**साधुसमाधिभावना**' है।

धर्मात्माओं तथा साधुओं का भक्ति से वैयावृत्य-सेवा-सुश्रुषा करना—उनके रोगादि के नाश का यत्न करना, नवमीं '**वैयावृत्य-भावना**' है।

जिन भगवान का अभिषेक पूजन करना, स्तुति करना, ध्यान करना या सब सुख-सम्पदा के कारण जिन-दर्शन करना, नित्य हृदय में ज्ञानादि का स्मरण करना, दसवीं '**अर्हद्भक्तिभावना**' है।

आचार्यों को प्रणाम करना, उनकी भक्ति करना, स्तुति करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना, ग्यारहवीं '**आचार्यभक्ति-भावना**' है।

मिथ्यात्व के नाश करनेवाले स्याद्वाद के मर्मज्ञ जन की सेवा करना, बारहवीं '**बहुश्रुतभक्तिभावना**' है।

जिनवाणी बड़े-बड़े पुरुषों द्वारा पूज्य और माननीय है, यह समझकर उसका हृदय में सदा आराधन करते रहना, तेरहवीं '**प्रवचनभक्तिभावना**' है।

सामायिक, जिनस्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक हैं, इनके करने में किसी प्रकार की हानि न आने देना, चौदहवीं '**आवश्यकापरिहाणिभावना**' है।

तप, ज्ञान, प्रतिष्ठा, महोत्सव, जिनयात्रा, जिन-भवन-निर्माण आदि द्वारा जिनधर्म की प्रभावना करना, पन्द्रहवीं '**मार्गप्रभावना-भावना**' है।

साधर्मियों से गाढ़ वात्सल्य और जिनवचनों में सदा प्रेम करना सोलहवीं '**प्रवचनवात्सल्यत्वभावना**' है।

इन भावनाओं के द्वारा सुप्रतिष्ठमुनि ने संसार का नाश करनेवाले और जिसे देवता पूजते हैं, ऐसे तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध किया। इसके बाद इन महामना मुनि ने सब परिषहों को सहकर अन्त में

एक महीने का संन्यास ले लिया। शत्रु-मित्र को समान भावों से देखनेवाले इन मुनि ने भक्ति से पंच परमगुरुओं का ध्यान करते हुए आत्मभावना से युक्त होकर प्राणों का परित्याग किया।

★ ★ ★

यहाँ से जाकर वे रत्नमयी और मोतियों की मालाओं से शोभायमान जयन्त नामक विमान की उपपवाद शय्या में, जो बड़ी ही निर्मल और मुनियों के मन की तरह कोमल है, जन्म लिया। अन्तर्मुहूर्त में वे अहमिन्द्र पूर्ण युवा हो गये। शरीर उनका एक हाथ का था। वे बहुत खूबसूरत थे। उनका दिव्य-शरीर कान्ति से आँखों में चकाचौंध लाता था। वे शुक्ललेश्या से ऐसे शोभा को प्राप्त होते थे, जैसे पुण्य के पुंज हों।

वे सिर पर रत्नमयी मुकुट और शरीर पर दिव्य वस्त्रों को पहने हुए ऐसे जान पड़ते थे, जैसे घूमता हुआ कोमल कल्पवृक्ष हो। वीतराग, निर्भय, खिले कमल समान मुखवाले और काम-क्रोधादि रहित वे अहमिन्द्र जिनबिम्ब के समान जान पड़ते थे। उपपाद-शय्या से उठते ही उन्होंने जो सुन्दर स्वर्गभवन आदि को देखा, उससे उन्हें थोड़ा विस्मय हुआ, परन्तु वह विस्मय अवधिज्ञान द्वारा जब उन्होंने यह पूर्वपुण्य का प्रभाव समझा, तब जाता रहा। श्रेष्ठ-सम्पदा के देनेवाले जिनधर्म की तब उन्होंने बहुत प्रशंसा की।

इसके बाद सुख देनेवाले अमृतकुण्ड में नहाकर अनेक शोभाओं से युक्त जिनमन्दिर में जाकर जलादि द्रव्यों से जिनप्रतिमाओं की उन्होंने पूजा की। अहमिन्द्र बड़े वैरागी होते हैं, इस कारण अपने सुखमय स्थानों को छोड़कर उनका अन्यत्र जाना नहीं होता। वे

वहीं रहकर जिन भगवान के पंच कल्याणकों की भक्ति सदा प्रेम से करते रहते हैं।

इन अहमिन्द्र ने पुण्य से प्राप्त दिव्य सुखों को प्रविचार रहित-बिना शरीर सम्बन्ध के तेतीस सागरपर्यन्त भोगा। वे अवधिज्ञान द्वारा लोक नाड़ी पर्यन्त चौदह राजू तक के पदार्थों को जानते थे और अपने दिव्य तेज द्वारा इतने ही स्थान को उनने आलोकित कर रखा था। वे तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे और साढ़े सोलह महीने में एक बार कुछ थोड़ा-सा सांस लेते थे। विक्रियाशक्ति से ऐसे होकर भी वे बड़े निरभिमानी थे।

उनका स्वभाव बड़ा ही कोमलता लिये हुए था। इसलिए वे विक्रिया कभी करते ही न थे। उनका दिव्य-देह सात धातुओं से रहित था। उन्हें न किसी प्रकार की कोई व्याधि थी और न कोई रोग था। जो सिद्ध-देशीय हो चुके उनके वर्णन का क्या ठिकाना है ?

कोई यह कहे कि अहमिन्द्र तेतीस सागर के इतने दीर्घकाल पर्यन्त जयन्तविमान में सुख से रहे, वहाँ वे क्या किया करते थे ? तो इस विषय में कुछ लिखा जाता है। उनके स्थान पर जो ईर्ष्या आदि को छोड़े हुए अन्य अहमिन्द्र अपने आप आते, उनके साथ वे जिनप्रणीत सात तत्त्वों का विस्तार से वर्णन करनेवाले द्वादशांग शास्त्र की चर्चा करते थे। दीर्घकालपर्यन्त इस प्रकार चर्चा से उन्हें जो सुख मिलता, इन्द्रों को उस सुख का हजारवाँ हिस्सा भी मिलना दुर्लभ है।

इसलिए भव्यजनों, सुनिये—जो निर्द्वन्द्व सुख ज्ञान के द्वारा मिलता है, वही सच्चा सुख है। बाकी विषयों से होनेवाला जो

सुख है, वह सुख नहीं किन्तु केवल दु:खरूप है। वह पवित्र सुख अहमिन्द्रों को पुण्य से मिलता है। सुप्रतिष्ठ मुनि का जीव अहमिन्द्र उसी परम सुख को भोगता है। इस प्रकार वे अहमिन्द्र सुखपूर्वक जयन्त विमान में रहे। अब उनके आगे होनेवाले जन्मवंश का वर्णन किया जाएगा।

जिन्हें इन्द्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों ने पूजा, जिनने लोकालोक का स्वरूप जाना, चारित्र धारण करने में जो सबसे श्रेष्ठ गिने गये और ध्यानाग्नि से घातियाकर्मों का नाशकर जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया, वे नेमिनाथ भगवान भव्यजनों का संसार-दु:ख शान्त करें।

इति द्वितीयः सर्गः

तीसरा अध्याय
हरिवंश का वर्णन

त्रिजगत्गुरु नेमिनाथजिन को नमस्कार कर संक्षेप से हरिवंश का वर्णन किया जाता है।

इस प्रसिद्ध जम्बूद्वीप में भारतवर्ष विशल देश है। उसके एक प्रान्त 'वर' नामक देश में सुन्दर 'कौशाम्बी' नाम की नगरी बसी हुई है। कौशाम्बी के राजा का नाम 'मधवा' था। इनकी रानी का नाम 'वीतशोका' था। इनके 'रघु' नामक एक प्रसिद्ध और सबका प्यारा पुत्र हुआ।

इसी नगरी में 'सुमुख' नाम का एक बड़ा धनी सेठ रहता था। बहुत धन होने से वह बड़ा कामी हो गया था। इधर कलिंगदेश के दत्तपुर का एक 'वीरदत्त' नामक महाजन भीलों के त्रास से भागे हुए साथियों के साथ अपनी स्त्री 'वनमाला' को लिये कौशाम्बी में सुमुख सेठ के पास आया। सुमुख ने उसे अपने यहाँ रख लिया।

एक दिन सुमुख हवा-खोरी के लिए जा रहा था। जाते हुए उसने सुन्दरी वनमाला को देख लिया। वह उस पर आसक्त हो गया। काम के बाणों ने उसके मन को बहुत ही जर्जर कर दिया। वनमाला को वश करने की इच्छा से पापी सुमुख ने एक युक्ति की। उसने वीरदत्त को बारह वर्ष के लिए स्थिर नौकरी देकर व्यापार के बहाने दूसरे देश भेज दिया, और इधर वनमाला को समय-समय पर वस्त्राभूषणादि का लोभ देकर अपने पर लुभा लिया। वह फिर उसके साथ बहुत ऐशोआराम करने लगा। जन्म

का अन्धा पुरुष जैसे अच्छे मार्ग को देख नहीं सकता, उसी तरह कामातुर मनुष्य हित-अहित को नहीं देख सकता।

इसके बाद जब बारह वर्ष बीत चुकने पर वीरदत्त वापिस कौशाम्बी को लौटा और उसने अपनी स्त्री का हाल सुना तो वह बड़ा दु:खी हुआ। बेचारा एक तो विदेशी, अकेला और उस पर जो नौकरी का आधार था, वह भी अब न रहा। उससे उसे बड़ा ही अपमानित और लज्जित होना पड़ा। उसके मन में इस घटना से बड़ा ही वैराग्य हुआ।

उसने विचारा—इस असार संसार को धिक्कार है, जिसमें यह प्राणी पंचेन्द्रियों के विषयों में उद्धत होकर मनमाना पाप करने लगता है। लोग स्त्री-पुत्रादि में व्यर्थ ही प्रेम करते हैं, जिससे पाप कमाकर वे दुर्गति में जाते हैं। इत्यादि वैराग्य भावना का विचारकर वीरदत्त ने सब परिग्रह छोड़कर 'प्रोष्ठिल मुनि' से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

उसने फिर बहुत तप किया और अन्त में संन्याससहित मरणकर सौधर्मस्वर्ग में 'चित्रांगद' नामक देव हुआ।

★ ★ ★

इधर एक दिन सुमुख सेठ और वनमाला ने 'धर्मसिंह' नाम मुनि को विधिपूर्वक आहार कराया। उसके प्रभाव से उन्हें बहुत पुण्यबन्ध हुआ। उन्होंने अपने पापों की बड़ी आलोचना की—अपने दुष्कर्म पर उन्हें बड़ी घृणा हुई। एक दिन एकाएक बिजली के गिरने से उनकी मौत हो गयी।

★ ★ ★

प्रसिद्ध भारतवर्ष के 'हरिवर्ष' नामक देश में 'भोगपुर' एक शहर था। उसके राजा 'प्रभंजन' हरिवंश के प्रधान राजा थे। उनकी रानी का नाम 'मृकंडू' था। दान के पुण्य से सुमुख सेठ का जीव इन्हीं के 'सिंहकेतु' नाम का प्रसिद्ध और गुणवान पुत्र हुआ।

इसी हरिवर्ष देश में 'शीलपुर' नाम का शहर था। उसके राजा 'वज्रघोष' थे। उनकी रानी का नाम 'सुभा' था। वीरदत्त की स्त्री वनमाला का जीव मरकर दान के पुण्य से इन राजा-रानी के यहाँ 'विद्युन्माला' नामक सुन्दर पुत्री हुई। पूर्वजन्म के संस्कार से पूर्णयौवना विद्युन्माला का विवाह सिंहकेतु के साथ हुआ।

एक दिन ये दोनों दम्पति विनोद-विलास कर रहे थे। इन्हें उस चित्रांगददेव ने जो कि विद्युन्माला के पूर्वजन्म में वनमाला का पति था, देखा। पूर्वजन्म के उन्हें अपने वैरी समझकर उसको मार डालने की इच्छा से उठकर वह आकाशमार्ग से जाने लगा।

सिंहकेतु के पूर्व भव में सुमुख सेठ का रघु राजा मित्र था। वह भी अणुव्रत के प्रभाव से सौधर्मस्वर्ग में सूर्यप्रभ नामक देव हुआ था। उसने चित्रांगद को क्रोधित देखकर कहा—हे विचारशील! तुमने जो इन दम्पति-युगल को मार डालने का विचार किया, भला कहो तो इस दुष्कर्म से तुम्हें सिवाय पापबन्ध के और क्या लाभ होगा? जानते नहीं, इस पाप से तुम्हें संसार-समुद्र में चिरकाल के लिए डूब जाना पड़ेगा। इसलिए दया करके इस दम्पति-युगल को छोड़ दीजिए।

सूर्यप्रभ के इस प्रकार पथ्यरूप वचनों को सुनकर चित्रांगद ने उनको उसी समय छोड़ दिया। यह सत्य है कि सत्पुरुषों के पवित्र

वचन सब सुख के देनेवाले होते हैं।

इसके बाद परोपकार-तत्पर सूर्यप्रभदेव, विद्युन्माला तथा सिंहकेतु को भविष्य में एक महान सम्पत्ति के मालिक होते जानकर, उन्हें धीरज देकर चम्पापुरी के वन में छोड़ आया।

चम्पापुरी का राजा 'चन्द्रकीर्ति' बिना पुत्र के मर गया था। मन्त्रियों ने किसी अच्छे पुण्यात्मा पुरुष की खोज में, जो राज-काज चलाने के योग्य हो, एक चन्दनादि से शृंगारित हाथी को छोड़ा था। पुण्य से वह उसी जंगल में पहुँचा, जहाँ सिंहकेतु और विद्युन्माला को सूर्यप्रभु छोड़ गया था। हाथी उन दोनों को अपने ऊपर बैठाकर ले गया।

मन्त्रियों ने तब जिन-पूजनपूर्वक सिंहकेतु का राज्याभिषेक कर उसे सिंहासन पर बैठा दिया और प्रेम से नमस्कार कर बड़े आदर के साथ पूछा—प्रभो! आप यहाँ क्यों और कहाँ से आये हुए थे, यह हमें बतलाइए। सिंहकेतु ने उनके उत्तर में यों कहा—हरिवंश में एक प्रभंजन नाम के राजा हो गये हैं, वे भोगपुर के स्वामी थे। मैं उन्हीं गुणी राजा का पुत्र हूँ। मेरी माता का नाम मृकण्डू था। मेरा नाम सिंहकेतु है। किसी देवता ने मुझे लाकर यहाँ छोड़ दिया।

मन्त्रियों ने यह सुनकर कि यह मृकण्डू का पुत्र है, उसका नाम भी अब से 'मार्कण्डेय' रख दिया। इस प्रकार पुण्य से प्राप्त राज्य को मार्कण्डेय ने खूब आनन्द के साथ भोगा। पुण्य से क्या नहीं होता? इन मार्कण्डेय के 'हरिगिरि' नामक पुत्र हुआ। हरिगिरि के 'हिमगिरि' हुआ। हिमगिरि के 'वसुगिरि' हुआ। इस प्रकार इस वंश में और भी बहुत से राजे हुए।

इसी तरह कुशार्थ देश के सौर्यपुर नामक शहर में हरिवंश-शिरोमणि 'सूरसेन' नामक राजा हुआ। इसका पुत्र 'सूरवीर' हुआ। यह बड़ा पराक्रमी और हरिवंशरूप आकाशमण्डल का मानों सूरज था। उस क्षत्रिय शिरोमणि सूरवीर राजा की दो रानियाँ थीं—पहली 'धारिणी' और दूसरी 'सुकान्ता'।

इनमें धारिणी के अन्धकवृष्णि और सुकान्ता के नरपतिवृष्णि नामक प्रसिद्ध पुत्र हुए। अन्धकवृष्णि की स्त्री का नाम देवी था। उसके दस पुत्र हुए। जैसे जगत का उपकार करनेवाले दश धर्म हों। उनमें अपने गम्भीरता-गुण से समुद्र को भी जीतनेवाले 'समुद्रविजय' सबसे बड़ा पुत्र था। वह प्रताप से सब शत्रुओं का जीतनेवाला, दान करने में कल्पवृक्ष समान, प्रजा का बड़ी अच्छी तरह पालन करनेवाला, सुन्दरता में मानों कामदेव, प्रसिद्धि में सुमेरु और अपनी सौम्य कान्ति में चन्द्रमा को भी जीतनेवाला था।

उस पुण्यात्मा के गुणों का क्या कहना, जिससे कि त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर भगवान जन्म लेंगे।

समुद्रविजय के बाकी नौ भाईयों के नाम ये हैं—अक्षोभ्य, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिनन्दन और वासुदेव। अन्धकवृष्णि के दो लड़कियाँ भी थीं। वे बड़ी सुन्दरी थीं। उनके नाम 'कुन्ती' और 'मद्री' थे। समुद्रविजय का विवाह शिवदेवी के साथ हुआ था। शिवदेवी पुण्य से बड़ी सुन्दरी थी। उसके अलौकिक रूप और पुण्य को देखकर स्वर्ग की देवांगनायें भी बड़ा आश्चर्य करती थीं। उस महिलारत्न की क्या प्रशंसा करना जो नेमिनाथरूपी श्रेष्ठ रत्न को उत्पन्न कर रत्नमयी

पृथ्वी की उपमा को धारण करेगी। समुद्रविजय के सिवाय अन्य आठ भाईयों की स्त्रियाँ धृति, ईश्वरा आदि हुई। ये सब भी बड़ी खूबसूरत और सुख देनेवाली थीं।

'नरपतिवृष्णि' का विवाह 'पद्मावती' नाम की किसी राजकुमारी के साथ हुआ था। उसके तीन पुत्र हुए। उग्रसेन, देवसेन और महासेन। ये तीनों भी बड़े साहसी और गुणवान थे। पद्मावती के एक लड़की थी। उसका नाम गांधारी था। इस प्रकार शौर्यपुर में सूरवीर राजा अपने पुत्र पौत्रादिक का सुख भोग करते हुए समय बिताते थे।

★ ★ ★

अब कौरव-वंशीय राजाओं का संक्षेप वर्णन किया जाता है। अब सम्पदा से भरे हुए कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर के 'शक्ति' नामक राजा हो चुके हैं। उनकी 'सवकी' नामक रानी से 'परासर' नामक पुत्र हुआ। परासर की स्त्री 'सत्यवती' हुई। वह एक धीवर राजा की लड़की थी। इनके 'व्यास' नाम का पुत्र हुआ। व्यास की स्त्री 'सुभद्रा' हुई। उसके तीन पुत्र हुए—धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर। ये तीनों भाई बड़े भाग्यशाली, पुण्यात्मा थे।

एक दिन ये तीनों जवान भाई विनोद-क्रीड़ा करते हुए सौर्यपुर में जा पहुँचे। उन्होंने राजमहल के छत के ऊपर अपनी सखी-सहेलियों के साथ हँसी-विनोद करती हुई अन्धकवृष्णि की राजकुमारी सुन्दरी कुन्ती को देखा। उसे देखकर पाण्डुकुमार मोहित हो गया। उसने मन ही मन कहा—मेरा जन्म लेना तभी सफल हो सकता है जबकि इस सुन्दरी की मुझे प्राप्ति हो।

उधर कुन्ती की भी यही दशा हुई। पाण्डु को देखकर वह भी

उस पर मोहित हो गयी। कुन्ती ने अपनी इच्छा पाण्डु पर प्रगट करने के लिये बड़ी छुपी रीति से एक ताम्बूल लेकर उस पर फेंका। ताम्बूल ठीक पाण्डु पर जाकर गिरा। पाण्डु को रोमांच हो आया। वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

यह ठीक है कि कामी पुरुष स्त्रियों द्वारा ताड़ित होकर भी खुश ही होता है, जैसे धतूरा खानेवाले को मिट्टी भी सोना जान पड़ता है। उसी दिन से पाण्डु कुन्ती को दिन-रात याद करने लगा। जैसे महामुनि परमानन्द देनेवाली मुक्ति को याद किया करते हैं।

एक दिन कोई 'वज्रमाली' नाम का विद्याधर हस्तिनापुर के बगीचे में हवा-खोरी के लिए आया। जाते समय वह अपनी रत्न की अँगूठी वहीं भूल गया। उस विद्याधर के चले जाने पर थोड़ी ही देर बाद पाण्डु घूमता हुआ इधर आ गया। उसने तेज से चमकती हुई उस अँगूठी को देखकर उठा लिया। वह अँगूठी बड़ी ही काम की चीज़ थी। उससे सब काम सिद्ध होते थे।

वह विद्याधर घर पर पहुँचा होगा कि उसे अपनी अँगूठी की याद आयी। वह उसी समय उस अँगूठी को ढूँढ़ता हुआ, उसी बाग में पहुँचा। उसे कुछ खेदखिन्न देखकर पाण्डु बोला—तुम इतनी व्यग्रता के साथ क्या ढूँढ़ रहे हो? विद्याधर बोला—कुमार, एक मेरी अँगूठी खो गयी है। यदि तुमने उसे देखा हो तो कृपाकर बतलाओ कि वह कहाँ है?

पाण्डु ने कहा—इसके पहले तुम यह बतलाओ कि उस अँगूठी में ऐसी क्या विशिष्टता है, जिससे तुम इतने व्याकुल हो रहे हो?

विद्याधर बोला—कुमार! उस अँगूठी के प्रभाव से जैसा चाहो वैसा रूप धारण किया जा सकता है और सब शत्रु अपने पाँवों पर आकर गिरने लगते हैं। सिवाय इसके अपने को छुपाया भी जा सकता है।

यह सुनकर पाण्डु बोला—भाई! यदि तुम्हारी अँगूठी का ऐसा प्रभाव है तो मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि कुछ दिनों के लिए मेरे ही हाथ में उसे रहने दो। मैं उसका प्रभाव देखूँगा। विद्याधर ने पाण्डु की प्रार्थन से वह अँगूठी उसे दे दी। सत्पुरुष प्रार्थना करे और वह चीज़ अपने पास हो तो कौन ऐसा अत्यन्त लोभी होगा जो उसे वह वस्तु न देगा?

पाण्डुकुमार उस अँगूठी के प्रभाव से अपने को छुपाकर चला और जहाँ सुन्दरी कुन्ती अपने शय्या-मन्दिर में सोई हुई थी, वहाँ पहुँचा। वह काम से पीड़ित तो हो ही रहा था, सो उसने कुन्ती से अपने आने की सूचना कर उसके साथ रति-क्रिया की। कामी पुरुष क्या नहीं करता? नौ महीने बाद जब कुन्ती के पुत्र हुआ, तब घर के लोगों ने निन्दा के डर से उस बच्चे को रत्न-कवच और कुछ गहने पहनाकर, एक सन्दूक में रख दिया। और उसी के साथ उसका परिचय देनेवाला एक पत्र रखकर सन्दूक को यमुना की धारा में बहा दिया।

लज्जा के भय से अच्छे पुरुष भी अपने पुत्र को छोड़ देते हैं। नदी की धार में पड़कर वह सन्दूक चम्पापुर के राजा सूर्य के हाथ लगी। उस सन्दूक को खोलकर देखा तो सूर्य को उसमें सब श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त और बहुमूल्य गहने पहने हुए, कोमल कल्पवृक्ष

के समान एक बालक दिखायी दिया। उसे देखकर सूर्य राजा को बहुत प्रसन्नता हुई। कारण कि उसके कोई बाल-बच्चा न था।

इसके बाद उस बालक को बड़े प्यार के साथ उसने अपनी रानी की गोद में रखकर कहा—अब से यह तुम्हारा पुत्र है। रानी ने उस बालक को देखकर और उसके कोमल कानों को सहलाते हुए उसका नाम भी 'कर्ण' ही रख दिया। इस प्रकार वह बालक पुण्य से चम्पापुर के राजा के यहाँ पहुँचकर दिनोंदिन कल्पवृक्ष की तरह बढ़ने लगा।

इधर सौर्यपुर में जब अन्धकवृष्णि को पाण्डु की यह धूर्तता जान पडी तो उसने अपना सिर बहुत ही धुना और अन्ततः अपनी कुन्ती और मद्री इन दोनों पुत्रियों का पाण्डु के साथ प्राजापत्य नामक विवाह कर दिया।

इसके बाद कुन्ती के तीन पुत्र हुए। युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन। ये तीनों ही बड़े गुणवान, शूरवीर और सबको आनन्द देनेवाले हुए। इनकी सुन्दरतादिक का क्या वर्णन किया जाये ? ये तीनों भाई मानो रत्नत्रय के समान थे। पाण्डु की दूसरी स्त्री मद्री से नकुल और सहदेव ये दो पुण्यवान पुत्र हुए। ये दोनों भाई जैसे स्वर्ग और मोक्ष के दो बड़े मार्ग हों।

इस प्रकार पाण्डु के पाँच पुत्र, पाँच पाण्डव के रूप में प्रसिद्ध हुए। ये पाँचों ही पाण्डव बड़े भाग्यशाली और सब कार्यों के करने में चतुर थे, जैसे पाँच परमेष्ठी हों।

'गांधारी' के पिता ने उसका विवाह धृतराष्ट्र से किया। गांधारी के चार पुत्र हुए—दुर्योधन, दुःशासन, दुर्द्धर्षज और दुर्मर्षण। इस

प्रकार इस कुटुम्ब में सब मिलकर सौ पुत्र हो गये। हरिवंश के राजे पुण्य से इस प्रकार सब सुख-सम्पदा पाकर बड़े आनन्द से समय बिताने लगे।

★ ★ ★

एक दिन सुन्दर चारित्र के धारक सुप्रतिष्ठ मुनि गन्धमादन नामक पर्वत पर आये। वे जिन-प्रणीत तत्त्व-समुद्र के बढ़ानेवाले, कर्म-कलंक रहित, नाना गुणरूप कला के धारी और दयाकान्ति से प्रकाशमान उज्ज्वल चन्द्रमा थे।

राजा शूरवीर अपने कुटुम्ब-परिवार के साथ उनकी वन्दना करने को गये। वहाँ बड़ी भक्ति से उनकी उनने पूजा की, स्तुति की और उनने सुख का कारण धर्म का उपदेश सुना। वैराग्य हो जाने से उनने बड़े उत्सव के साथ जिनभगवान का अभिषेक कर अपने बड़े पुत्र अन्धकवृष्णि को राज्य और नरपतिवृष्णि को युवराज-पद देकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

अब वे मन-वचन-काय की पवित्रता को बढ़ाते हुए जिनप्रणीत तप करने लगे। इस बात को बारह वर्ष बीत चुके। सुप्रतिष्ठ मुनि घूमते-फिरते फिर एक बार इसी गन्धमादन पर्वत पर आ गये। एक दिन वे प्रतिमायोग-पद्मासन से पर्वत पर ध्यान कर रहे थे। उन्हें सुदर्शन नाम के देव ने देखा। इसकी उन मुनि के साथ कोई शत्रुता होगी, सो उस पापी अधर्मी ने इन पर बहुत घोर उपद्रव किया।

सुप्रतिष्ठ मुनि सुदर्शन के उपद्रव से जरा भी न डिगे। उन्होंने बड़ी शान्ति से सब परिषहों को सहा। अन्त में घातिया कर्मों का नाश कर उन्होंने लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया।

उनके ज्ञान कल्याण की पूजा करने को स्वर्ग से देवगण आये। राजा अन्धकवृष्णि भी आया। उनकी पूजा कर उसने पूछा—हे त्रिजगद्गुरो, हे नाथ! बतलाइए कि देव ने आप पर ऐसा घोर उपद्रव क्यों किया?

★ ★ ★

सुप्रतिष्ठिजिन बोले—राजन्, इस प्रख्यात भारतवर्ष के कलिंग देश में कांचीपुरी नामक एक नगरी है। उसमें सूरदत्त और सुदत्त नाम के दो महाजन रहते थे। वे दोनों अपनी इच्छा से लंकाद्वीप में धन कमाने को गये। वहाँ से वे बहुत धन कमाकर लौटे। राज-लगान न देना पड़े, इस लोभ से उन्होंने गाँव बाहर ही एक छोटे से वृक्ष के नीचे गड्ढा खोदकर सब धन जमीन में गाड़ दिया और उस वृक्ष को पहचान कर वे अपने घर आ गये।

एक दिन एक आदमी इस ओर आ गया। उसे शराब बनाने के लिए वृक्ष के जड़ की जरूरत थी। सौभाग्य से इसी वृक्ष की जड़ वह खोदने लगा। खोदते हुए उसे वह धन दीख गया। उस सब धन को लेकर वह चलता बना।

इसके कुछ दिनों बाद वे दोनों भाई उस धन को निकालने को आये। उन्होंने खोदकर देखा तो वहाँ धन नहीं था। सूरदत्त ने सोचा कि धन सुदत्त निकालकर ले उड़ा और सुदत्त ने सोचा कि सूरदत्त निकाल ले गया। इसी सन्देह में दोनों भाई-भाई की लड़ाई ठन गयी। यहाँ तक कि दोनों ही परस्पर लड़कर मर मिटे।

दोनों क्रोध और लोभमय परिणामों से मरकर पहले नरक गये। वहाँ उन्होंने बहुत दुःख भोगा। वहाँ से बड़े कष्ट से निकलकर

विन्ध्यपर्वत की गुहा में मेंढ़े हुए। फिर आपस में लड़कर मरे। अबकी बार गंगा किनारे बैल हुए। पूर्व-जन्म के बैरानुबन्ध से यहाँ भी वे लड़े और मरकर सम्मेदशिखर पर बन्दर हुए।

★ ★ ★

इस पर्वत पर रहते हुए एक बार इन्हें तीव्र प्यास लगी। शिला पर खुदे गड्ढे में थोड़ा सा पानी भरा था, उसे देखकर ये दोनों ही वहाँ पहुँचे। एक ने एक को पानी न पीने दिया। यहाँ इनकी खूब लड़ाई हुई। एक ने एक को नखों और दाँतों से नोंचा और काटा। उनमें एक तो उसी समय मर गया और दूसरा कण्ठगत-प्राण हो रहा था।

इसी समय इस पर्वत पर सुरगुरु और देवगुरु नाम के दो आकाशचारी मुनि आ गये। उन्होंने दयाकर इस बन्दर को धर्मोपदेश देकर पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया। बन्दर ने उसे ध्यान से सुना तो मरकर सौधर्म स्वर्ग में वह चित्रांगद नामक देव हुआ। वहाँ उसने बहुत काल तक सुख भोगा।

★ ★ ★

इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष प्रसिद्ध देश है। उसके एक प्रान्त सुरम्य देश में 'पोदनापुर' नामक उत्तम शहर है। उसके राजा का नाम सुस्थित है। उनकी रानी सुलक्षणा है। उसका, वह सूरदत्त का जीव मैं सुप्रतिष्ठ नामक पुत्र हुआ। एक दिन वर्षा समय में अवसित नाम पर्वत पर गया हुआ था।

वहाँ मैंने दो बन्दरों को लड़ते देखकर मन में सोचा कि हाय! मैंने भी कभी ऐसी घनघोर लड़ाई लड़ी है। वह लड़ाई कहाँ लड़ी थी, मैं इसे याद ही कर रहा था कि मुझे जातिस्मरणज्ञान हो

गया—मैंने अपने पहले जन्म का सब हाल जान लिया। उससे मुझे बड़ा वैराग्य हुआ।

मैं उसी समय सुधर्माचार्य के पास आकर मुनि हो गया। तप करता हुआ मैं इस पर्वत पर आकर ठहरा। मेरा छोटा भाई जो सुदत्त था, वह भव-समुद्र में खूब भ्रमण कर सिन्धुनदी के किनारे मिथ्यादृष्टि मृगायण नामक तापसी की स्त्री विशाला के गौतम नामक अज्ञानी पुत्र हुआ। वह पंचाग्नि तप करके ज्योतिष्क देवों में सुदर्शन नाम देव हुआ।

पूर्व जन्म के बैर से उस अधर्मी ने मुझ पर उपद्रव किया। उस उपद्रव को शान्त भावों से सहकर मैंने शुक्लध्यान के बल से घातियाकर्मो का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इत्यादि सुप्रतिष्ठजिन द्वारा अपना हाल सुनकर उस सुदर्शन देव ने सब बैर-विरोध छोड़कर बड़े आदर के साथ जिनधर्म ग्रहण कर लिया। सत्य ही है—साधुओं की संगति क्या नहीं करती ?

यह सब वृत्तान्त सुनकर अन्धकवृष्णि को बड़ा सन्तोष हुआ। उनने जगत का हित करनेवाले उन सुप्रतिष्ठ जिन को सिर झुकाकर हाथ जोड़कर भक्ति के साथ अपना पूर्वजन्म हाल पूछा। सर्वज्ञ जिन बोले—

★ ★ ★

इस भारतवर्ष की अयोध्या नाम की नगरी में अनन्तवीर्य नामक एक महान राजा हो गये हैं। वहाँ एक सुरेन्द्रदत्त नाम का बड़ा धनी सेठ रहता था। पूर्वपुण्य से उसे सब सम्पत्ति प्राप्त थी। वह बड़ा दानी और भोगी था। जिनपूजा से उसे बड़ा प्रेम था। वह उपवास,

व्रत, आदि धर्म-कर्म में बड़ा तत्पर था।

उसे प्रतिदिन दस मोहरों से जिन पूजा करने की प्रतिज्ञा थी। अष्टमी के दिन वह इनसे दुगुनी मोहरों से पूजा करता, चतुर्दशी को चारगुनी से और अमावस्या तथा पर्व के दिन आठ गुनी से। उसके चन्द्रमा के समान निर्मल दानादि गुणों का कहाँ तक वर्णन किया जाए, कि जिन्हें देखकर अन्य जन धर्म में दृढ़ होते थे।

एक बार सुरेन्द्रदत्त की इच्छा और भी धन कमाने की हुई। उसने समुद्र द्वारा विदेश जाना स्थिर किया। इसके पास बारह वर्षों का कमाया जितना कुछ धन था, उसे वह अपने मित्र रुद्रदत्त को सौंपकर बोला—प्रिय मित्र! यह जो धन मैं तुम्हें सौंप जाता हूँ, इससे तुम मेरी तरह सदा जिनपूजा करते रहना। मेरे मौजूद न रहने की चिन्ता न करना।

इस प्रकार रुद्रदत्त को समझाकर सुरेन्द्रदत्त मन में जिनभगवान का ध्यान करता हुआ विदेश के लिए रवाना हो गया। न केवल सुरेन्द्रदतत ही विदेश गया, किन्तु उसके साथ ही उसके मित्र रुद्रदत्त का धर्म भी उसके मनरूपी घर से बाहर हो गया।

सुरेन्द्रदत्त के विदेश जाते ही रुद्रदत्त की बन गयी। उसने वेश्या-सेवन, जुआ खेलने आदि में सुरेन्द्रदत्त का धन बर्बाद कर दिया। जब उसके पास कुछ पैसा न रहा, तब वह अयोध्या में लोगों के यहाँ चोरी करने लगा। एक दिन, रात में उसे चोरी करते हुए देखकर श्येन नाम के कोतवाल ने उससे कहा—

अरे ओ दुष्ट! तू इस शहर से शीघ्र ही निकल जा। तू ब्राह्मण है, इसलिए मैं तुझे चोर और पापी होने पर भी छोड़े देता हूँ। आज

से यदि मैंने फिर कभी तुझे देख लिया तो समझ फौरन ही मरवा डाला जाएगा।

कोतवाल के इस प्रकार डरा देने से वह दुरात्मा रुद्रदत्त अयोध्या से निकलकर किसी भील की पल्ली में पहुँचा। वहाँ वह उस पल्ली के स्वामी के यहाँ नौकर हो गया। एक दिन वह कुछ भीलों को साथ लेकर अयोध्या आया और कुछ गौओं को चुराकर चला। श्येन कोतवाल ने उसे जाते हुए पकड़ लिया और उसी समय मरवा डाला। मरकर वह सातवें नरक गया।

वहाँ उसने छेदना, मारना, काटना आदि भयंकर कष्टों को सहा। वहाँ से निकलकर वह बड़ा मच्छ हुआ। फिर मरकर छठे नरक में गया। वहाँ से निकलकर सिंह हुआ। फिर पाँचवें नरक गया।

इसी प्रकार क्रम से वह दृष्टिविष जाति का सर्प होकर चौथे नरक में, सियाल होकर तीसरे नरक में, गरुड़ होकर दूसरे नरक में और फिर भेड़िया होकर पहले नरक में गया।

इस प्रकार उस ब्राह्मण ने पाप के उदय से सातों नरकों और स्थावरगति में अनेक असह्य कष्टों को सहा। यह जानकर किसी समझदार को जिनपूजा, जिनयात्रादिक में कभी अन्तराय-विघ्न न करना चाहिए।

★ ★ ★

इसी भरतक्षेत्र के कुरुजांगल देश में 'गजपुर' नाम का शहर है। उसके राजा का नाम 'धनंजय' है। वहाँ एक 'कपिष्टल' नाम का ब्राह्मण रहता है। उसकी स्त्री का नाम 'अनुंधरी' है।

रुद्रदत्त ब्राह्मण का जीव संसार में बहुत भ्रमण कर अन्त में

इस अनुंधरी ब्राह्मणी के 'गौतम' नाम का पुत्र हुआ। इस पापी के जन्म लेते ही कपिष्टल का सारा कुल नष्ट हो गया। बचा केवल गौतम। वह भी महा दरिद्री हो गया। उसके पास एक कौड़ी भी न रही। भूख-प्यास का मारा, वह हाथ में खप्पर लेकर घर-घर भीख माँगने लगे। मारे भूख के उससे चला तक न जाता था।

वह इधर-उधर गिरता-पड़ता शहर में भीख माँगता फिरता था। पहनने को उसके पास था पुराना और फटा-टूटा कपड़े का टुकड़ा। उसमें हजारों लीखें और जूएँ पड़ गयी थीं। जैसे वह पापों का स्वरूप ही बतला रहा हो। मिथ्यादृष्टियों के शास्त्रों की तरह वह साररहित हो रहा था—सारा सड़-गल गया था। बालकगण उसे लकड़ी, पत्थर आदि से मारते-पीटते और बहुत परेशान करते थे। उससे वह चिल्लाने और भागने लगता था। पैरों में जोर न होने से वह भागता-भागता ठोकरें खाकर गिर पड़ता और रोने लगता था।

अपने किये पापों की सजा भोगता हुआ, वह देओ, देओ कहकर चिल्लाता-फिरता था। शरीर उसका सारा मैला हो रहा था—उसे देखकर घृणा आती थी। मानो इस बात को वह सूचित करता था कि पाप का ऐसा स्वरूप है। इत्यादि अनेक प्रकार के दु:खों को उठाता हुआ, वह शहर में फिरता रहता था।

एक दिन 'समुद्रसेन' नाम के मुनि आहार के लिए जा रहे थे। काललब्धि के योग से उन महामुनि को गौतम ने देखा। उन्हें नंगे देखकर इसने मन ही मन सोचा—मुझसे तो ये और भी अधिक दरिद्री जान पड़ते हैं। तब देखूं कि ये अपना पेट कैसे भरते हैं ?

महामुनि की दशा देखकर इसे बड़ा आश्चर्य होने लगा। इस प्रकार विचार करता हुआ वह भी उन मुहामुनि के पीछे-पीछे चल दिया। मुनि को थोड़ी दूर जाने पर एक वैश्रवण नाम के श्रावक ने नवधाभक्तिसहित उन्हें शुद्ध आहार कराया और गौतम ब्राह्मण को भी मुनि के पास रहनेवाला समझ आहार दिया।

गौतम ब्राह्मण ने तो कभी जन्मभर में भी ऐसा भोजन न किया था, सो वह इस भोजन से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। तब अपने मुनि होने का विचार कर वह मुनि के आश्रम में आया और मुनिराज को नमस्कार कर बोला—

महाराज! आप बड़े दयावान हैं। आपकी संगति से आज मेरा भी भाग्य चमक गया। आप जल्दी से मुझे भी अपने समान कर लीजिए।

समुद्रसेन गुरु ने उसके मन की दृढ़ता देखकर सोचा कि यह भव्य है और निश्चय से कुछ दिनों में मोक्ष जाएगा। इसलिए उन्होंने उसे देवता जिसे पूजते हैं, वह जिन-दीक्षा देकर साधु बना लिया। इसके बाद उन्होंने गौतम को पढ़ाकर थोड़े ही समय में जिनागमरूप समुद्र के पार पहुँचा दिया। सत्य है, गुरु ही संसार में तारनेवाले होते हैं।

गौतम ने भी गुरुभक्ति के प्रभाव से थोड़े ही समय में सब शास्त्रों को जान लिया। एक ही वर्ष के भीतर उसने सातों ऋद्धियाँ भी प्राप्त कर लीं। वह फिर 'श्री गौतम' इस नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। धीरे-धीरे वह अपने गुरु के पद को प्राप्त होकर संसार का हितकर्ता हुआ। संसार में गुरुभक्ति से मोक्ष भी प्राप्त हो

सकता है और धन-दौलत सरीखी वस्तु का प्राप्त होना तो उसके सामने किसी गिनती में नहीं।

इसके बाद जिनप्रणीत तत्त्व के जाननेवाले 'समुद्रसेन' गुरु तो संन्यास धारण कर आत्मध्यान में लीन हो गये और अन्त में समाधि से प्राणों को छोड़कर छठे ग्रैवेयक के सुविशाल नाम विमान में अनेक गुणों के धारी और सुख भोगनेवाले 'अहमिन्द्र' देव हुए।

उनके बाद वे गौतममुनि भी आराधनाओं का ध्यान कर और संन्यासपूर्वक प्राणों को छोड़कर छठे ग्रैवेयक में अहमिन्द्र देव हुए। वहाँ उनने अट्ठाईस सागर तक खूब सुखों को भोगा। वह रुद्रदत्त ब्राह्मण का जीव ही तुम 'अन्धकवृष्णि' नाम के राजा हुए हो।

इस प्रकार सुप्रतिष्ठजिन द्वारा विस्तारसहित अपने पूर्वभवों का हाल सुनकर अन्धकवृष्णि बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उन केवलज्ञानी जिन को फिर नमस्कार कर अबकी बार अपने पुत्रों के पूर्व-जन्म का हाल पूछा तो अकारण जगद्बन्धु 'सुप्रतिष्ठजिन' ने सुख देनेवाली सर्व भाषामय वाणी द्वारा इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

★ ★ ★

इस जम्बूद्वीप के 'मंगल' नाम के देश में 'भद्रिल' नाम का एक पुर है। उसके राजा का नाम 'मेघरथ' था। उनकी रानी का नाम 'देवी' था। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था 'दृढ़रथ'। पुण्य से उसे युवराज पद मिल चुका था। यहीं एक 'धनदत्त' नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम 'नन्दयशा' था। उसके नौ पुत्र हुए। उनके नाम थे—धनदेव, धनपाल, जिनदेव, जिनपाल,

अर्हदत्त, अर्हद्दास, जिनदत्त, प्रियमित्र और धर्मरुचि। और दो पुत्रियाँ थीं। उनके नाम थे—'प्रियदर्शना' और 'ज्येष्ठा'।

एक दिन सुदर्शन नाम के बाग में 'मन्दिरस्थविर' नाम के मुनि पधारे। यह समाचार धर्मरथ की उपमा धारण करनेवाले मेघरथ और धनदत्त के पास पहुँचे। वे दोनों अपने पुत्रादि परिजनसहित मुनिवन्दना के लिए गये। मुनि को उन्होंने अतिशय भक्ति के साथ नमस्कार किया और उनसे जिनप्रणीत धर्म का उपदेश सुना।

इसके बाद मेघरथ ने अपने दृढ़रथ नाम के पुत्र को राज्य देकर संसार-भ्रमण की नाश करनेवाली जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मेघरथ को मुनि होते देखकर धनदत्त सेठ भी अपने नवों पुत्रों के साथ मुनि हो गया। अपने पति का दीक्षा लेना देखकर धनदत्त की स्त्री नंदयशा भी अपनी दोनों पुत्रियों के साथ सुदर्शना नामक आर्यिका के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गयी।

इसके बाद मन्दिरस्थविर मुनि, मेघरथ मुनि और धनदत्त मुनि ये तीनों विहार करते हुए बनारस आये। वहाँ इन्होंने घातियाकर्मों का शुक्लध्यान द्वारा नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादिक देवता जिनकी पूजा करते हैं ऐसे ये तीनों मुनिराज धर्मोपदेश करते हुए और भव्यजनों को प्रबोध देते हुए बनारस से चलकर राजगृह के जंगल में पहुँचे। वहाँ एक विशाल और पवित्र शिला पर विराजमान होकर इन्होंने जन्म-जरा-मरणरहित अक्षय मोक्ष प्राप्त किया।

कुछ दिनों बाद इसी शिला पर उन धनदेव आदि नवों मुनियों ने भी आकर संन्यास धारण किया। उन्हें देखकर उनकी माता

नन्दयशा का, जो कि अपनी दोनों पुत्रियों के साथ इधर ही आ निकली थीं, हृदय पुत्र-प्रेम से भर आया।

वह बोली—ये सब मेरे ही गुणवान पुत्र हैं। मैं चाहती हूँ कि अन्य जन्म में भी ये मेरे ही पुत्र हों। और जो ये दो मेरी प्रिय पुत्रियाँ हैं, वे भी अन्य जन्म में ही मेरी पुत्रियाँ हों। यदि जिनप्रणीत तप का कुछ माहात्म्य है तो उसका फल मैं यही चाहती हूँ। नन्दयशा ने इस प्रकार निदान कर स्वयं भी संन्यास ले लिया। समभावों से मृत्यु प्राप्त कर वे सब आनतस्वर्ग के शान्तकर नाम विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ उन्होंने बीस सागरपर्यन्त सुखों को भोगा।

नन्दयशा का जीव वहाँ से आकर यह तुम्हारी प्रिय गृहिणी सुन्दरी 'सुभद्रा' हुई और वे धनदेव आदि नवों भाई भी स्वर्ग से आकर पुण्य से तुम्हारे समुद्रविजयादिक पुत्र हुए हैं। और जो नन्दयशा की प्रियदर्शना और ज्येष्ठा नाम की दो पुत्रियाँ थीं, वे सारे संसार की सुन्दरता जिनमें इकट्ठी कर दी गयी हैं, ऐसी 'कुन्ती' और 'मद्री' तुम्हारी पुत्रियाँ हुई हैं।

इसके बाद अन्धकवृष्णि ने सुप्रतिष्ठजिन को फिर नमस्कार कर वसुदेव के पूर्व-जन्म का हाल पूछा। सुप्रतिष्ठजिन गम्भीर वाणी से बोले, जिनका भव्य-जन पर अनुग्रह करने का स्वभाव ही है।

★ ★ ★

कुरुदेश में पलाशकूट नामक नगर था। उसमें 'सोमशर्मा' नामक ब्राह्मण रहता था। पाप से वह दरिद्री था। उसके 'नन्दी' नाम का पुत्र हुआ। पूर्व कर्मों के उदय से वह भी दरिद्री, कुरूप, दु:खी हुआ। कहीं उसका आव-आदर नहीं—पास तक उसे कोई

बैठने न देता था। सत्य ही है—पापी लोगों को सम्पदा मिल भी कैसे सकती है। इसलिए भव्यजनों को पाप छोड़कर पुण्यरूपी धन कमाना चाहिए।

नन्दी के मामा का नाम 'देवशर्मा' था। उसके सात पुत्रियाँ थीं। वे सभी खूबसूरत और गुणवान थीं। नन्दी ने उन लड़कियों के साथ विवाह की इच्छा से मामा की बहुत सेवा की। परन्तु देवशर्मा ने उसे दरिद्री होने से अपनी एक भी पुत्री न देकर उन सबको दूसरों के साथ ब्याह दी।

एक दिन नन्दी नट का तमाशा देखने को कहीं गया हुआ था। तमाशगीरों की बहुत भीड़ होने से वह गिर पड़ा। लोग उसे इधर-उधर लुढ़कानें लगे और हँसने लगे, वहाँ उसे बहुत अपमान सहना पड़ा। अपने दुर्भाग्य को कोसता हुआ, मरने की इच्छा से पर्वत के शिखर पर चढ़कर उसने गिरना चाहा। परन्तु डर के मारे उसकी गिर पड़ने की हिम्मत नहीं हुई।

वह बार-बार चढ़ने-उतारने लगा। पर्वत की तलहटी में एक पवित्र स्थान पर 'शंख' और 'निर्नामिक' नाम के दो मुनि अपने गुरु के साथ बैठे हुए थे। उन मुनियों ने नन्दी की चढ़ा-उतारी करती छाया को देखकर गुरु से पूछा—

महाराज, यह छाया किसकी है ? तीन ज्ञानधारी द्रुमषेणमुनि ने अपने शिष्यों से कहा—भाई! जो तीसरे जन्म में तुम्हारा पिता होनेवाला है, यह छाया उसी की है। उन दयावान् शिष्यों ने तब नन्दी के पास जाकर कहा—

भाई! तुम इस आत्महत्यारूप पापकर्म की क्यों इच्छा कर रहे हो ?

सुनकर नन्दी बोला—मैं दुर्भाग्य से दरिद्री हुआ, इसलिए मेरे मामा ने अपनी पुत्रियों का विवाह मुझसे न कर दूसरे से कर दिया। वह अपमान मुझसे न सहा गया। इसके सिवा मैं दरिद्री भी हूँ, तब ऐसी दशा में मैं जीकर ही क्या करूँगा? यह बात सुनकर उन मुनियों ने नन्दी से कहा—

भाई! दु:ख के कारण इस पापकर्म को छोड़ दे। इससे तुझे अनन्त काल तक संसार-समुद्र में डूब जाना पड़ेगा। यदि तेरी इच्छा धन-दौलत और मान-मर्यादा के ही प्राप्त करने की है तो तू जिनप्रणीत तप धारण कर। उससे तेरे सब कार्यों की सिद्धि होगी। वह तप स्वर्ग-मोक्ष का देनेवाला है।

इस प्रकार नन्दी को समझा-बुझाकर उन्होंने उसे तप ग्रहण करवा दिया। सत्य है, तप सबका हित करनेवाला है। इसके बाद 'नन्दीमुनि' बहुत तप करके अन्त में महाशुक्र नामक स्वर्ग में देव हुए। वहाँ उन्होंने सोलह सागरपर्यन्त मनचाहा सुख भोगा। वहाँ से आकर यह तुम्हारा वसुदेव नाम सुन्दर, भाग्यशाली, लब्धप्रतिष्ठित, सम्पदावान, शूरवीर-शिरोमणि और सब गुणों की खान पुत्र हुआ है। तीन खण्ड के बड़े-बड़े राजे और महाराजे इनकी सेवा करेंगे। ऐसे नारायण और प्रतिनारायण का यही महा-पुरुष जनक होगा।

इस प्रकार सुप्रतिष्ठजिन द्वारा सबके पूर्व-जन्म का हाल सुनकर अन्धकवृष्णि को बड़ा वैराग्य हो गया। मोक्ष प्राप्ति के लिए वे उत्सुक हो उठे। इसके बाद उन्होंने अपने गुणवान बड़े पुत्र समुद्रविजय को महाभिषेकपूर्वक राज्यभार दे दिया और आप दान-पूजादिक धर्म-कार्यों को करके सब धन-दौलत को घास के तिनके के

समान छोड़कर बहुत से राजाओं के साथ सुप्रतिष्ठजिन के पास सब सिद्धियों की देनेवाली जिनदीक्षा ग्रहण कर गये।

इसके बाद रत्नत्रय विराजमान अन्धकवृष्णि मुनि ने खूब पवित्र तप किया। अन्त में संन्यास दशा में आत्मध्यान कर शुक्लध्यान द्वारा उन शूरवीर मुनि ने घातियाकर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार सुरासुर-पूज्य होकर अत्यन्त शुद्धात्मा अन्धकवृष्णि जिन ने बाकी के अघातिकर्मों को भी जड़मूल से उखाड़कर जन्म-जरा-मरणरहित श्रेष्ठ मोक्षगति को प्राप्त किया। वे सिद्ध, बुद्ध, निरंजन अन्धकवृष्णिजिन मुझे और भव्यजनों को शाश्वती लक्ष्मी-मोक्ष दें।

सद्धर्मरूपी अमृत के प्रवाह से पापों को बहाकर जिन्होंने दूर फेंक दिया है; जो संसार-सागर से जनों को पार करने में सदा तत्पर और श्रेष्ठ ज्ञानरूप कान्ति के धारक सूरज हैं, लोक और परलोक के जाननेवाले हैं और श्रेष्ठ सुख सम्पदा के देनेवाले हैं—ऐसे श्री नेमिनाथजिन सत्-पुरुषों को मनचाही वस्तु दो।

इति तृतीयः सर्गः।

चौथा अध्याय
वसुदेव का देशत्याग और स्त्री-लाभसहित आगमन

हरिवंश-शिरोमणि सौरीपुर के राजा समुद्रविजय अपने प्रिय भाईयों के साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगे। काम, क्रोध, मद, मान आदि छहों शत्रुओं पर उन्होंने विजय लाभ कर लिया था। तीन राज-शक्तियों से वे युक्त थे। कलासहित चन्द्रमा जैसा आकाश-मण्डल में शोभता है, समुद्रविजय राज-विद्याओं से उसी तरह शोभा को पाते थे।

उनके राज्य में प्रजा वर्णाश्रमधर्म की पालन करनेवाली थी। अपने-अपने धर्म-कर्म पर वह निर्विघ्नता के साथ चलती थी। वह बड़ी सुखी थी। इस प्रकार जिनप्रणीत धर्म-कर्म को नित्य करते हुए समुद्रविजय आदि का समय बड़े सुख से बीतता था।

अन्धकवृष्णि का दूसरा पुत्र जो वसुदेव था, वह बीसवाँ कामदेव था जो बहुत खूबसूरत और भाग्यशाली था। वह मस्त हाथी पर बैठकर जब शहर में घूमने को निकलता, तब बड़ा सुन्दर दीख पड़ता था। उस पर चँवर ढुरा करते थे। जिसमें मोतियों की माला लटक रही है, वह छत्र उसके सिर पर रहता था। उसके चारों ओर ध्वजाओं की श्रेणी बड़ी शोभा देती थी। चारों प्रकार की सेना उसके आगे-पीछे चलती थी।

सुन्दर गहने और वस्त्रों से भूषित वह बड़ा ही सुन्दर दीख पड़ता था। रास्ते में याचकजनों को प्रसन्न करता हुआ वह चलते

हुए कल्पवृक्ष के समान निर्मल यश का गान करते जाते थे और उसे वह सुनता था। अपने प्रताप से उसने सूर्यमण्डल को जीत लिया था। कान्ति से वह चन्द्रमा के समान निर्मल और कुवलय-पृथ्वी को (चन्द्रपक्ष में कोकाबेली को) प्रसन्न करनेवाला (चन्द्रपक्ष में प्रफुल्लित करनेवाला) था।

उसके आगे बजते हुए नगाड़े, ढोल, झाँझ आदि बाजों के शब्दों से दिशाएँ बहरी हो जाती थीं—कुछ सुनाई न पड़ता था। कपूर, केसर आदि सुगन्धित वस्तुओं के जल से सींची जमीन सुगन्ध से महक उठती थी। खिले हुए फूलों के हारों से वह बड़ी शोभा प्राप्त करता था। उसके आसपास जो और राजकुमार रहते थे, उनसे वह देवकुमार सा जान पड़ता था। उसे देखकर लोगों को बड़ा प्रेम होता था। स्त्रियों का हृदय उस पर मोहित हो जाता था। पुण्यवान जनों को देखकर किसे प्रेम नहीं होता।

इस प्रकार वह कौतुहल से जब तक शहर की चीजों को देखता हुआ घूमा करता था, उस समय काम से उत्सुक की गई स्त्रियाँ उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसे देखने को बड़ी निर्भयता के साथ दौड़ी आती थीं। जैसे नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं।

दौड़ती हुई कई स्त्रियाँ पग-पग पर गिर पड़ती थीं। जैसे मिथ्यादृष्टियों की युक्तिहीन कृति-शास्त्र अपने पक्ष का समर्थन न कर सकने के कारण गिर जाते हैं-कमजोर हो जाते हैं।

कितनी मस्त स्त्रियाँ उसे देखने को घर बाहर होकर इतनी जल्दी चली मानों दोनों किनारों को तोड़कर नदी चली। दौड़ती हुई कितनी स्त्रियों के वस्त्र तक गिर पड़े, उनकी उन्हें खबर भी न

हुई। मानों वे ज्वर से इतनी कमजोर हो गयी कि अपने वस्त्रों को भी न सम्हाल सकीं। कितनी स्त्रियाँ अपने घर का सब काम-काज छोड़कर ही उसे देखने को निकल भागीं। सत्य ही है—मूर्खों की बुद्धि परवस्तु पर बड़ी मोहित हो जाती है।

कई स्त्रियाँ उसके देखने की जल्दी के मारे हाथों में पहनने के गहनों को पाँवों में और पाँवों के पहनने के हाथों में पहनकर ही चल दी। कोई स्त्री अपने बच्चे को छोड़कर घर में पाले हुए बन्दर के बच्चे को ही गोद में लेकर निकल भागी। ठीक ही है—काम मूर्खों की क्या हालत नहीं कर देता।

कोई कामातुर स्त्री काजल को ललाट पर ही लगाकर अपनी मूर्खता को प्रगट करती हुई दौड़ी गयी। कोई उत्सुक स्त्री केसर-चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं को अपने शरीर पर न लगाकर उनके एवज में कीचड़ ही को शरीर पर पोतकर चल दी। कुछ स्त्रियाँ इधर-उधर दौड़ रही थीं, कुछ वसुदेव को मनभर देख रही थीं, कोई उस पर फूल बरसा रही थी और कोई अहा क्या सुन्दरता! कैसा मधुर-मनोहर यौवन! इत्यादि वसुदेव को देख-देखकर बातें कह रही थीं।

जिसके रूप की बड़े-बड़े सत्पुरुष भी प्रशंसा करें, उस चित्तचोर का रूप देखकर बेचारी स्त्रियाँ मोहित हो जाऐं तो क्या आश्चर्य? अन्य साधारण जन की सुन्दरता भी जब मन में मोह उत्पन्न कर देती है, तब एक कामदेव की सुन्दरता के अवतार की रूप-मधुरिमा क्या नहीं करेगी?

अपनी स्त्रियों की ऐसी चेष्टाएँ देखकर पुरजन बड़े दुःखी

हुए। उन्होंने जाकर राजा से प्रार्थना की—महाराज! आप प्रजापालक हैं। कृपाकर हमारी प्रार्थना सुनिए। अपने वसुदेवजी बड़े खूबसूरत हैं–कामदेव हैं। इसलिए जब वे शहर में घूमने को निकलते हैं तो हमारे गृहों की स्त्रियाँ उन पर मोहित हो जाती हैं। उनका मन बड़ा चंचल हो जाता है। वे घर का सब काम–धन्धा छोड़कर कुमार की सुन्दरता देखने को दौड़ी जाती हैं।

ऐसी दशा में हमारे खान–पान, घर–गृहस्थी के कामधन्धों की बड़ी अव्यवस्था हो चली है। प्रभो! इससे हम लोग बड़े दु:खी हो गये हैं। आप इस प्रकार कोई उपाय कीजिए।

'आगे से ऐसा न होगा' इस प्रकार उन लोगों को सन्तुष्ट कर समुद्रविजय ने उन्हें लौटा दिया।

समुद्रविजय का वसुदेव पर अत्यन्त प्यार था। उन्होंने सोचा यदि मैं इसे स्पष्ट कहकर रोकता हूँ तो यह मन में बड़ा दु:खी होगा। तब उन्होंने वसुदेव को एकान्त में बुलाकर समझाया—भैया! तुम जो वक्त–बे–वक्त शहर में घूमा करते हो और गर्मी–सर्दी का कुछ विचार नहीं करते, देखो, उससे तुम्हारा फूल सा कोमल शरीर कैसा कुम्हला गया है?

इसलिए आज से तुम इस तरह घूमने न जाया करो और यदि तुम घूमने को जाना ही चाहो तो अपने राजमहल का कितना सुन्दर बाग है? उसमें नाना तरह के फल–फूल हैं, क्रीड़ा–विनोद करने को सरोवर, बावड़ियाँ हैं, अच्छे–अच्छे सुन्दर महल, जिनमें रत्नों की पच्चाकारी का काम हो रहा है। तुम अपने साथी सामन्त–राजकुमारों और मंत्रिकुमारों के साथ वहीं घूमने जाया करो और वहाँ मनमाना खेलकूद किया करो।

गुणवान वसुदेव ने समुद्रविजय की बात को मान लिया। कौन बुद्धिमान गुरुजन का आज्ञाकारी नहीं होता ? अब से वसुदेव अनेक शोभाओं से युक्त और उत्तम-उत्तम वस्तुओं से भरे-पूरे अपने घर के पासवाले बाग में ही क्रीड़ा करने को जाने-आने लगा।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। वसुदेव का 'निपुणमति' नामक एक नौकर था। वह बड़ा लम्पटी, दुर्बुद्धि और स्वेच्छाचारी था। उसने एक दिन मौका देखकर वसुदेव से कहा—

'कुमार! जानते हो राजा ने तुम्हें कितने अच्छे शुद्ध कैदखाने में बन्द कर बाहर जाने से रोक दिया है!' दुर्जन पापी लोगों का यह स्वभाव ही होता है कि वे पीठ पीछे सत्पुरुषों को भी अपने समान दुर्जन बतलाते हैं।

वसुदेव ने कहा—क्यों रे, भला मेरे साथ राजा ने ऐसा क्यों किया ? निपुणमति बोला—

देव! आपकी सुन्दरता को सब आँखें बड़े प्यार से देखती हैं। यही कारण है कि जब आप घूमने को निकलते थे, तब शहर की स्त्रियाँ विह्वल होकर और घर के सब काम-काज छोड़कर आपको देखने के लिए दौड़ आती थीं। इस तरह वे बड़ी निरंकुश हो गयी थीं। रोज-रोज की इस विडम्बना से दु:खी होकर महाजन लोगों ने राजा से प्रार्थना की। राजा ने तब इस उपाय से आपका शहर में घूमना रोक दिया।

नौकर का कहना कहाँ तक ठीक है, इस बात की जाँच करने को वसुदेव राजमन्दिर से बाहर होने लगा। दरवाजे पर पहरा देनेवाले सिपाही ने उसे रोककर कहा—

देव! महाराज ने आपका बाहर जाना-आना रोक रखा है। इसलिए आप बाग में ही घूमिये-फिरिए। यह सुनकर वसुदेव को बड़ा दु:ख हुआ। इस दु:ख के मारे वह एक दिन किसी से कुछ न कह-सुनकर साहस कर राजमहल से निकल गया।

सुन्दर सौरीपुर को छोड़कर छुपा हुआ, वह भयंकर मसान में पहुँचा। वहाँ राक्षस लोग इधर-उधर घूम रहे थे। चोर लोग शूली पर चढ़े हुए थे। कुत्ते और सियाल भोंक रहे थे। सैकड़ों मुर्दे पड़े हुए थे। जलती हुई चिताओं के धुएँ से दम घुटा जा रहा था। वहाँ एक धग-धग जलती हुई चिता देखकर वसुदेव ने अपने सब आभूषणों को उसमें डालकर एक पत्र लिखा। उसमें लिखा था—

'अपकीर्ति के भय से वसुदेव अग्नि में गिरकर स्वर्गलोक चला गया।'

इस पत्र को घोड़े के गले में बाँधकर और उसे कहीं छोड़कर वह कहीं निकल गया।

इधर सूरज भगवान उदयाचल पर आये। उधर सौरीपुर का सुन्दर सूरज आज राजमहल पर न दिखायी दिया। द्वारपाल ने जाकर राजा से कहा—महाराज! आज रात को राजकुमार राजमहल से एकाएक न जाने कहाँ निकल गये। सुनकर राजा का हृदय काँप गया। उन्होंने उसी समय नौकरों को चारों ओर दौड़ाया। शहर, जंगल, नदी, वन आदि सब जगह उन्होंने कुमार को ढूँढा, परन्तु कहीं उसका पता न चला।

जो लोग उस भयंकर मसान की ओर गये थे, उन्होंने एक मुर्दे को आभूषण सहित जलते देखा और वहीं वसुदेव के घोड़े को

घूमते हुए देखा। इसके बाद उनकी नजर घोड़े के गले में बँधे हुए कागज पर पड़ी। वे उस घोड़े को पकड़कर राजा के पास ले गये। राजा से सब हाल कहकर वह पत्र उन्होंने राजा को दिया। पत्र पढ़ा गया। उसमें लिखा था—

'महाराज! आप चिरकाल तक बढ़ें, आपकी प्रजा बहुत प्रसन्न रहे और भौजाई शिवदेवी सपरिवार आनन्द भोगें। प्यारा न होने के कारण वसुदेव ने अब से यम-मन्दिर की शरण लेना ही उत्तम समझा। इसलिए वह आपसे सदा के लिए विदा ग्रहण करता है। -हतभाग्य-वसुदेव।'

पत्र सुनकर समुद्रविजय इत्यादि को बड़ा शोक हुआ। वे सब मिलकर मसान में गये। उस मुर्दे को गहने सहित खाक हुआ देखकर सब रोने-पीटने लगे, शोक करने लगे।

प्यारे कुमार, हाय! तूने यह क्या दुःखदायी कर्म कर डाला! तेरे बिना आज हमारा सब उत्साह दूर ही से चल दिया, पानी न बरसने पर जैसे प्रजा का उत्साह चला जाता है। शिवदेवी ने भी बड़ा ही दुःख किया। कुमार! तुम्हारे बिना हमारा सब महल सूना हो गया-उसकी वह शोभा ही न रही। जैसे चाँद बिना रात की, आँख बिना मुँह की और कमल बिना सरोवर की शोभा नहीं रहती।

इस प्रकार शोकाकुल होकर सबने बहुत रुदन किया। इस समय किसी निमित्तज्ञानी ने उन लोगों से कहा—प्रभो! आप व्यर्थ शोक न कीजिए। वसुदेव मरे नहीं हैं। वे कहीं चल दिये हैं। सौ वर्ष बाद वे अनेक लाभ और सम्पत्तिसहित लौटेंगे और आप लोगों को आनन्दित और सुखी करेंगे।

उन निमित्तज्ञानी के इस प्रकार वचन सुनकर सबको बड़ा ही सन्तोष हुआ। अच्छे वचन सुनकर कौन सुखी नहीं होता? तपा हुआ लोहे का गोला जैसे जल से ठण्डा हो जाता है, उसी तरह उस नैमित्तिक के वचनों से सब शान्त हो गये। समुद्रविजय तब नौकरों को वसुदेव के ढूँढ़ने को भेजकर कुछ निश्चिन्त से हुए।

★ ★ ★

इधर वसुदेवकुमार अपनी इच्छा के अनुसार घूमता-फिरता तथा मन में सुख के खजाने जिनभगवान का ध्यान करता 'विजयपुर' के बाग में पहुँचा। वहाँ वह एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गया। कुमार के पुण्य से उस वृक्ष की न हिलती-डुलती छाया को भक्ति से उसके अतिथि-सत्कार के लिए खड़ी सी जानकर उस बाग का माली अपने राजा के पास गया और सिर झुकाकर बोला—

महाराज! निमित्तज्ञानी का कहा सच हुआ। आज बाग में एक महापुरुष आये हुए हैं। उनके आते ही सूखे सब झाड़ कुलीन बहू की तरह नाना प्रकार के फल-फूलों से फल उठे हैं। जान पड़ता है, आपके पुण्य से खींचे हुए ही वे गुणवान, नर-शिरोमणि महात्मा यहाँ आये हैं। महाराज! उनकी सुन्दरता का क्या बखान करूँ, मानों वे पुण्य के पुंज ही हैं।

वनमाली के मुँह से यह खुश खबर सुनकर विजयपुर नरेश बड़े ठाटबाट से बाग में आये। उस साक्षात्कामदेव वसुदेव को देखकर राजा बड़े प्रसन्न हुए। कुमार को बड़े आनन्द से वे फिर शहर में लाये। उनके श्यामला नाम की एक पुत्री थी। उन्होंने वसुदेव के साथ उनका ठाटबाट से विवाह कर दिया। सत्य ही

कहा है—पुण्यवानों को क्या प्राप्त नहीं होता ?

श्यामला के साथ प्रसन्नमना वसुदेव ने बहुत दिनों तक मनचाहा सुख भोगा और जिन भगवान की खूब सेवा भक्ति की। कुछ दिनों बाद आनन्दी वसुदेव यहाँ से भी चल दिया। थोड़े दिनों में वह 'देवदारु' नाम के वन में पहुँचा। वह वन नाना प्रकार के खिले हुए फूलो, पके हुए फलों और निर्मल पानी के भरे सरोवरों से युक्त था। मानों जिन भगवान की भक्ति करने को पृथ्वी देवी ने उत्तम अर्घ हाथों में उठा रखा है।

वहाँ मीठे पानी का भरा 'पद्म' नाम का सरोवर मुनिजन के निर्मल मन के समान जान पड़ता था। उस सरोवर में वसुदेव ने एक नीले रंग का हाथी देखा। वह हाथी अपने पावों के आघात से पृथ्वी दल-मल रहा था। सूँड़ में पानी भर-भरकर वन को सींच रहा था। अपनी भीम गर्जना से उसने मेघों को जीत लिया था, कानरूपी पंखों की तेज हवा से सब झाड़ों को हिला दिया था और बड़े-बड़े दाँतों की चोटों से शिलाओं पर वह जोर-जोर से आघात कर रहा था।

उसे देखकर वसुदेव ने कहा—मेरे सामने आ न! वसुदेव का इतना कहना हुआ कि वह हाथी क्रोध से लाल-लाल आँखें करके वसुदेव के सामने दौड़ा। वसुदेव हाथी के वश करने की विद्या में बड़ा होशियार था ही, सो उसने कभी हाथी की बांयीं ओर, कभी दाहिनी ओर तथा कभी आगे और कभी पीछे आने-जाने, कभी उसके पाँवों में होकर निकल जाने, कभी पत्थरादिक से मारने, कभी धोखा देने, कभी मर्मभेदी वचन कहने, कभी लड़ने के लिए

ललकारने और कभी उसके दाँतों पर चढ़ जाने आदि अनेक तरह से शिथिल कर सहज में उस महान मस्त हाथी को पुण्य की सहायता पाकर अपने वश कर लिया। जैसे जिन भगवान संसार को मथनेवाले काम को वश कर लेते हैं।

उस नीले हाथी पर बैठे हुए वसुदेव ने नीलगिरि पर स्थित सूरज की शोभा को धारण किया। वसुदेव को उस हाथी पर बैठा देखकर एक विद्याधर उसे विजयार्द्धक पर्वत के सम्पदा से भरे-पूरे 'किन्नरगीत' नामक नगर में ले गया। उसका राजा 'अशनिवेग' नाम का विद्याधर था। उसे नमस्कार कर वह विद्याधर बोला—

महाराज! इस वीर पुरुष ने बात की बात में एक भयंकर वन-हस्ती को जीत लिया है। आपकी आज्ञा से मैं इस गुणवान, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त और पुण्यवान महात्मा को यहाँ लाया हूँ। सुनकर और वसुदेव को देखकर अशनिवेग बड़ा हर्षित हुआ। जैसे घर में धन का खजाना आने से प्रसन्नता होती है।

अशनिवेग की 'शाल्मलिदत्ता' नाम की एक पुत्री थी। राजा ने बड़े उत्साह के साथ उसका विवाह वसुदेव से कर दिया और दहेज में उसे बहुत सी धनदौलत दी। वसुदेव ने अपनी इस नई प्रिया के साथ भी बहुत सुख भोगा।

वसुदेव यहाँ से भी जाने की तैयारी में था कि एक दिन शाल्मलिदत्ता के मामा का लड़का 'अंगारवेग' जो वसुदेव पर क्रोध के मारे जल रहा था, सोते हुए वसुदेव को उठाकर आकाशमार्ग से चला।

शाल्मलिदत्ता ने उसे जाते देख लिया। सो वह भी तलवार

लेकर उसके पीछे दौड़ी। यह उसे मारने ही को थी कि अंगारवेग डर के मारे वसुदेव को छोड़कर भाग गया। शाल्मलिदत्ता ने तब वसुदेव को 'पर्णलध्वी' नामक विद्या के सहारे चम्पापुरी के तालाब के बीच में बसे हुए द्वीप में उतार दिया।

वसुदेव ने उस द्वीप के निवासियों से पूछा—भाई! इस द्वीप से पार होने का रास्ता कहाँ है और यह कौन पुरी है? वसुदेव की ये बातें सुनकर वे लोग हँसने लगे और बोले—भाई! तू आकाश से तो नहीं गिरा है, जो इस पुरी का मार्ग पूछ रहा है।

श्री वासुपूज्यजिन के जन्म से पवित्र जगत्प्रसिद्ध 'चम्पापुरी' है; तू नहीं जानता क्या?

वसुदेव ने कहा—भाई! आप लोगों ने ठीक कहा कि मैं आकाश ही से गिरा हुआ हूँ। इसी कारण मैंने आपसे इस पुरी का रास्ता पूछा है। यह सुनकर उन लोगों ने वसुदेव को चम्पापुरी का रास्ता बतला दिया। वसुदेव तालाब से निकलकर पवित्र चम्पापुरी में आया।

यहाँ 'चारुदत्त' नाम एक बड़ा धनी सेठ रहता था। उसके 'गन्धर्वदत्ता' नाम की एक बड़ी सुन्दरी पुत्री थी। वीणा बजाने में वह बड़ी विदुषी थी। अपनी विद्या का उसे बड़ा अभिमान था और इसीलिए उसने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो मुझे वीणा बजाने में हरा देगा, वही मेरा स्वामी होगा; अन्य जन नहीं।

'मनोहर' नामक एक गानविद्या का बड़ा भारी विद्वान यहाँ रहता था। वसुदेव इसी के पास आकर ठहर गया। गन्धर्वदत्ता की प्राप्ति की इच्छा से बहुत से लोग इस विद्वान के पास वीणा बजाने

का अभ्यास करने को आया करते थे। अपना हाल किसी पर प्रगट न होने देकर वसुदेव ने एक दिन उन लोगों से कहा—मेरी भी इच्छा है कि मैं वीणा बजाना सीखूँ।

यह कहकर उसने एक वीणा को हाथ में उठा लिया और धूर्तता से उसे इधर-उधर से तोड़ डाला। वसुदेव की यह मूर्खता देखकर उन लोगों ने हँसकर कहा—यह बड़ा अच्छा वीणा बजानेवाला आया! सचमुच ही यह कन्या को वीणा बजाने में जीतकर वर लेगा!

इन लोगों की बात पर वसुदेव को कुछ हँसी सी आ गयी, परन्तु उसे उसने बाहर न आने दिया। वह उसी गुप्तरूप से वहाँ रहकर वीणा बजाने का अभ्यास करने लगा।

इसी तरह कुछ दिन बीतने पर गन्धर्वदत्ता का स्वयंवर रचा गया। बड़ी-बड़ी दूर से विद्याधरों तथा अन्य राजाओं के यौवनप्राप्त राजकुमार गन्धर्वदत्ता की प्राप्ति की आशा से आये। सत्य ही है—आशा बहुत बड़ी चीज़ है।

स्वयंवरमण्डप में गन्धर्वदत्ता के साथ वीणा बजाने को एक के बाद एक राजकुमार उतरा। विदुषी गन्धर्वदत्ता ने बात की बात में उन सबको हरा दिया। जब सब राजकुमार हारकर बैठ गये, तब सब कलाओं में पारंगत वसुदेव अपने गुरु से पूछकर गन्धर्वदत्ता के पास आया।

वसुदेव को देखकर गन्धर्वदत्ता बड़ी सन्तुष्ट हुई। पुण्यवान के आने पर किसे प्रीति नहीं होती? इसके बाद वसुदेव ने गन्धर्वदत्ता से कहा—

एक अच्छी निर्दोष वीणा दीजिए। गन्धर्वदत्ता की तीन चार वीणायें जो उसके नौकरों के पास थीं, नौकरों ने उन वीणाओं को गन्धर्वदत्ता के पास दे दिया, उन वीणाओं को देखकर वसुदेव बोला—

इनमें तो एक भी वीणा अच्छी नहीं है। ये सब सदोष हैं। देखो, इस वीणा की तन्त्री (दण्ड) में बाल लग रहे हैं, इसकी तूँबी में ये कीलें लगी हुई हैं, इसके दण्ड में ये पत्थर के टुकड़े हैं। इत्यादि वीणागत दोषों को सुनकर गन्धर्वदत्ता ने आश्चर्य के साथ वसुदेव से कहा—

हे सब वस्तुओं की परीक्षा करने में कुशल! अच्छा बतलाओ तो वह निर्दोष वीणा कैसी होनी चाहिए जो तुम्हारे मन को हर सके।

वसुदेव बोला—अच्छा सुनो, मैं अपनी मनचाही वीणा के मँगाने का उपाय बतलाता हूँ। हस्तिनापुर में मेघरथ नामक एक राजा हो गये हैं। उनकी रानी का नाम पद्मावती था। उनके दो सुन्दर पुत्र हुए। उनके नाम थे विष्णुरथ और पद्मरथ। कोई कारण पाकर मेघरथ राजा तो अपने विष्णुकुमार पुत्र के साथ जिनदीक्षा ले मुनि हो गये। राज्य तब पद्मरथ करने लगे। एक बार आसपास के राजाओं ने उन पर चढ़ाई कर दी। उससे वे बड़े दु:खी हुए।

उनका बली नाम का मन्त्री बड़ा बुद्धिमान और राजनीतिकुशल था। उसने साम-भेद आदि उपायों से शत्रुओं को समझा-बुझाकर लौटा दिया। मन्त्री की इस बुद्धिमानी से पद्मरथ राजा बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मन्त्री से मनचाही वस्तु के माँग लेने को कहा।

मन्त्री ने राजा से कहा—महाराज! जब मुझे जरूरत पड़ेगी तब मैं आपसे माँग लूँगा। सीधे स्वभाववाले राजा ने 'तथास्तु' कहकर मन्त्री के कहने को मान लिया। सत्पुरुष दूसरों के उपकार को नहीं भूल जाते। इसके बाद एक दिन अकम्पनाचार्य अपने मुनिसंघ को साथ लिए और जिनप्रणीत धर्मामृत की वर्षा से भव्यजनों को सन्तुष्ट करते हुए हस्तिनापुर के जंगल में आये। वहाँ वे जीव-जन्तु रहित एक छोटे से पर्वत पर ठहरे।

उन्होंने वहाँ आतापन योग धारण कर लिया। भव्यजन रोज-रोज आकर उनकी अच्छे-अच्छे द्रव्यों से पूजा करते थे। खूब धन व्यय कर जिनधर्म की प्रभावना करते थे। पद्मप्रभ राजा के मन्त्री बली को इन्हीं आचार्य ने पहले एक बार विद्वानों की सभा में स्याद्वादादि विषय पर शास्त्रार्थ कर हरा दिया था। उस समय बली मन्त्री को बड़ा शर्मिन्दा होना पड़ा था। इस समय उन्हीं अकम्पनाचार्य को आया सुनकर उस दुराचारी ने उन्हें मार डालने की इच्छा से पद्मरथ राजा के पास जाकर कहा—

प्रभो! आपके भण्डार में मेरा एक 'वर' है। उसे याद कर मुझे सात दिन का राज्य दीजिए। राजा ने मन्त्री के माँगे अनुसार उसे सात दिन का राज्य दे दिया।

राज्य पाकर उस दुष्ट मन्त्री ने उस पहाड़ के सब ओर, जिस पर कि अकम्पनाचार्य ध्यान कर रहे थे, होम कराना आरम्भ कर दिया। मन्त्री की आज्ञा से ब्राह्मण लोग वेदों का पाठ पढ़ते हुए पशुओं को मार-मारकर उन्हें होमने लगे। इस तरह उन्होंने लाखों जीवों को होम दिया। इन मारे हुए जीवों का जो शेषभाग बचा हुआ

था, उसे उन लोगों ने खाया और झूठे सकोरे, पत्तल तथा जूठन वगैरह को उस मुनिसंघ पर फैंककर उसे बड़ा कष्ट पहुँचाया। होम में जलते हुए जीवों के दुर्गन्धित धुएँ से आकाश छा गया। मुनियों पर उससे बड़ा दुस्सह उपसर्ग हुआ। परन्तु जिनप्रणीत तत्त्व के जाननेवाले, शान्ति के समुद्र उन मुनियों ने उस कष्ट को बड़े धीरज के साथ सहा। वे अपने योग में निश्चल बने रहे।

उस समय तीन ज्ञानधारी 'मेघरथमुनि' और 'विष्णुकुमारमुनि' एक पहाड़ की गुफा में बैठे हुए थे। रात का समय था। उस समय आकाश में श्रवण नाम नक्षत्र को काँपते हुए देखकर विष्णुमुनि ने अपने पिता मेघरथमुनि से पूछा—

भगवन! हवा से हिलते हुए पीपल के पत्ते की तरह आज यह श्रवणनक्षत्र किस कारण से ऐसा हिल-डुल रहा है? सुनकर ज्ञानी मेघरथमुनि बोले—

सुनो, इस समय हस्तिनापुर में पापी बली मन्त्री, अकम्पनाचार्य और उनके संघ पर अत्यन्त घोर उपसर्ग कर रहा है और साधुओं का कष्ट सभी को सन्ताप-कष्ट का कारण है। आकाश में भी श्रवणनक्षत्र कम्पित हो रहा है। यह सुनकर विष्णुकुमार मुनि ने फिर पूछा—

प्रभो! किस उपाय से मुनिसंघ का यह कष्ट दूर हो सकता है? मेघरथस्वामी बोले—

तुम्हें विक्रियाऋद्धि प्राप्त है, उसके द्वारा यह उपसर्ग बहुत शीघ्र मिट सकेगा, जैसे सूरज के उदय होते अन्धकार मिट जाता है। इसके बाद विष्णुमुनि उन साधुओं की भक्ति तथा प्रीति के वश

हो उसी समय पद्मरथ राजा के पास पहुँचे।

उन्हें देखकर पद्मरथ ने नमस्कार किया और प्रार्थना की—प्रभो! ऐसा कौन कार्य है जिसके लिए आपको यहाँ आने का कष्ट उठाना पड़ा। आज्ञा कीजिए, मैं आपका अनन्यदास सेवा में हाजिर हूँ। उत्तर में विष्णुमुनि बोले—

तुम्हारा मन्त्री संसार-त्यागी मुनियों को दुस्सह कष्ट क्यों दे रहा है? तुम उसे इस कार्य से रोको। इस पर पद्मरथ ने कहा—

मुनिनाथ! मुझे इस पापी दुष्ट ने वचन बद्धकर ठग लिया। सो मैं सात दिन के लिए अपना सब राज्याधिकार इसे दे चुका हूँ। इसलिए मैं इसे रोक नहीं सकता। सूर्य से रोके गये अन्धकार की तरह इसे रोकने को तो आप ही समर्थ हैं।

पद्मरथ के वचन सुनकर विष्णुमुनि उठे और 'वामन ब्राह्मण' का रूप बनाकर वेदध्वनि द्वारा विद्वानों के मन को मोहित करते हुए बली मन्त्री के पास पहुँचे। आशीर्वाद देकर वे बली से बोले—

राजन! तुझे महान दानी सुनकर मैं यहाँ तक आया हूँ। इसलिए मुझे मेरा मनचाहा दान देकर सन्तुष्ट कर।

विष्णुमुनि की वेदध्वनि से प्रसन्न होकर बली उनसे बोला—नाथ! मैंने तुम्हें 'वर' दिया, तुम्हें जो चाहना हो, वह माँग लीजिए। मैं देने को तैयार हूँ।

वामनरूप धारी विष्णुमुनि बोले—राजन्! मुझे तीन पाँव जितनी जमीन की जरूरत है। कृपाकर वह दीजिए। इस पर बली मन्त्री ने

कहा—ब्राह्मण राज! यह आपने क्या माँगा? कुछ अच्छी वस्तु माँगते। अस्तु, तुम्हें इतनी जमीन की ही जरूरत है तो यही सही। अपनी इच्छा अनुसार उसे आप माप लीजिए।

यह कहकर बली ने हाथ में जल लेकर संकल्प छोड़ दिया। विष्णुमुनि ने तब विक्रियाऋद्धि के प्रभाव से अपना रूप बहुत ही बढ़ाकर एक पाँव तो मानुषोत्तर पर्वत पर और दूसरा पाँव मेरु पर्वत पर रखा।

तीसरा पाँव रखने को जब स्थान न रहा, तब उनने क्रोध से उसे आकाश मण्डल में घुमाना शुरु किया। उससे सुर, असुर, राजे-महाराजे बड़े संकट में पड़े—सारी पृथ्वी में हलचल मच गयी। तब देवता, विद्याधर, राजे, महाराजे आदि मिलकर विष्णुमुनि के पास आये और प्रार्थना करने लगे—

हे करुणा के समुद्र! हम क्षुद्रों पर दया करके क्रोध को छोड़ दीजिए और अपने पाँवों को उठा लीजिए।

उस समय देवताओं ने गीत संगीत, वीणा गान आदि द्वारा मुनि की स्तुति की। मुनि ने अपने पाँवों को उठा लिया।

कुमारी! उस समय देवताओं ने मुनि-पाद पूजने के लिए विद्याधर राजों और नर-राजों की घोषा, सुघोषा, महाघोषा, वसुन्धरा और घोषवती नामक वीणाओं में से दो-दो वीणायें प्रदान कीं।

इसके बाद विष्णुमुनि पापी बली से बोले—

दुष्ट! तूने मुझसे व्यर्थ ही माँग लेने को कहा। बतला, अब मैं अपना तीसरा पाँव कहाँ रखूँ? उसे कुछ उत्तर न देते देखकर मुनि

ने कुछ कड़ी बातें कहकर उसे उचित दण्ड दिया और बड़ी भक्ति से मुनियों का उपसर्ग दूरकर परमानन्द देनेवाला वात्सल्य-प्रेम प्रगट किया।

बली की यह सब लीला देखकर पद्मरथ राजा को बड़ा क्रोध आया। वे उसे मार डालने को तैयार हो गये। विष्णुमुनि ने राजा को ऐसा करने से रोक दिया। अपने सदृश नीच पर भी मुनि की इतनी दया देखकर बली भक्ति की प्रेरणा से उनके पाँवों में गिर पड़ा।

विष्णुमुनि तब उसे श्रेष्ठ जिनधर्म की दीक्षा देकर प्रभावना करके अपने स्थान चले गये। कुमारी! उन वीणाओं में जो घोषवती नामक वीणा थी, वह तुम्हारे घर में वंशपरम्परा से चली आ रही है, उसे लाकर मुझे दो। वही वीणा सबके चित्त को हरनेवाली है।

वसुदेव के द्वारा वीणा की कथा सुनकर गन्धर्वदत्ता मन में बहुत ही सन्तुष्ट हुई। इसके बाद गन्धर्वदत्ता का इशारा पाकर उसके आदमियों ने वही घोषवती नामक वीणा लाकर वसुदेव को दे दी।

वसुदेव ने उस सिद्धिविधायिनी वीणा को लेकर बहुत ही बढ़िया सुन्दर संगीत किया। उसका वीणागान सुनकर लोग बहुत आनन्दित हुए। सबने उसकी गानविद्या की बड़ी तारीफ की।

यह देखकर सन्तुष्ट हुई कुमारी गन्धर्वदत्ता ने सब गुण-कुशल वसुदेव के गले में रत्नमाला डाल दी। पुण्यवानों और गुणवानों को सब ही जगह सुख-सम्पत्ति, यश-कीर्ति, जय-विजय आदि का लाभ हुआ करता है।

चारुदत्त सेठ भी बहुत प्रसन्न हुआ। उसने फिर गन्धर्वदत्ता का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया। यहाँ रहकर वसुदेव ने गन्धर्वदत्ता

के साथ खूब सुख भोगा। कुछ दिनों बाद वह यहाँ से फिर विजयार्द्धपर्वत पर चला गया। वहाँ सम्पदा से भरी विद्याधर श्रेणी में कोई सात-सौ विद्याधर कन्याएँ थीं। उन सबको भी ब्याह कर वसुदेव पीछे भारतवर्ष में आ गया।

★ ★ ★

अरिष्टपुर में तब 'हिरण्यवर्मा' नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'पद्मावती' था। उनके 'रोहिणी' नाम की एक बड़ी सुन्दर और भाग्यवती कन्या थी। उसके स्वयंवर के लिए वहाँ बहुत से राजकुमार आकर जमा हुए थे। वसुदेव उन सबको पढ़ाने लग गया। जब रोहिणी का स्वयंवर रचा गया, तब जरासंघ आदि बड़े-बड़े राजा, जो अपने प्रताप से पृथ्वी में सूर्य के समान गिने जाते थे, आये।

स्वयंवर के दिन सब राजागण आकर सुशोभित हुए। सोलहों शृंगार की हुई रोहिणी भी हाथ में वरमाला लिये 'वर' पसन्द करने को मण्डप में आयी। वह एक ओर से सब राजागण को देख गयी। परन्तु उनमें उसे कोई पसन्द न आया। अन्त में उसकी नजर पड़ी इस सर्वगुण-सम्पन्न वसुदेव पर। रोहिणी उसे देखकर मन ही मन बड़ी सन्तुष्ट हुई और पास जाकर उसने उसके गले में वह रत्नमयी माला पहना दी।

यह देखकर राजगण में बड़ी सुगबुगाहट होने लगी। असहनशील जरासंघ राजा ने तब समुद्रविजय वगैरह राजाओं को रोहिणी के हरण की आज्ञा की। इसके पहले कि वे रोहिणी के हरण करने को तैयार हों, रोहिणी के पिता हिरण्यवर्मा राजा से

कहा गया—तुमने यह बहुत ही अनुचित किया जो त्रिखण्ड के राजाओं को छोड़कर गर्व से एक विदेशी के गले में अपनी पुत्री को वरमाला डालने दी। कहीं मालती फूलों की सुगन्धित माला एक बन्दर के गले में शोभा देगी ?

इसलिए राजा जरासंघ जब तक तुम्हारे विरुद्ध न हो, उसके पहले अपनी कन्या को लाकर तुम हमें सौंप दो। नहीं तो वृथा मारे जाओगे। उन राजाओं के दुस्सह वचनों को सुनकर हिरण्यवर्मा बोला—

माननीय राजागण! आप लोग जरा ध्यान से सुनिये।

देवता जिनके चरणों की पूजा करते हैं, उन आदिजिन ने इस हितमार्ग का उपदेश किया है कि 'कन्या अपनी इच्छा से पसन्द कर जिसे वरमाला पहना दे, वही उसका स्वामी है।'

मैंने भगवान के इन्हीं वचनों को मान दिया है। दूसरों की प्रेरणा से उकसाये गये आप लोग चाहे इन वचनों को मानें या न मानें। परन्तु याद रखिये मैं आप लोगों के इन कठोर वचनों से डरनेवाला नहीं हूँ। जुगनू के भय से सूरज क्या उदय होना छोड़ देगा ? इसलिए मैं अपनी कन्या को, जिसे उसने वरा है, उसे छोड़कर, अन्य जन को कदापि नहीं दे सकता।

जरासंघ ने हिरण्यवर्मा के कहने पर कुछ ध्यान न देकर सब राजाओं को युद्ध करने की आज्ञा दे दी। इस ओर सारा राजमण्डल और हिरण्यवर्मा के पक्ष में केवल शूरवीर-शिरोमणि वसुदेव थे।

वसुदेव राज-मण्डल की कुछ परवाह न कर सोने के रथ पर चढ़कर युद्ध भूमि में उतरा और अपने बन्धुओं से लड़ने लगा।

उसे यह ज्ञान न था कि इस युद्ध में मैं अपने भाईयों के साथ लड़ रहा हूँ, सो वह बड़े भयंकर बाणों को उन पर छोड़ने लगा। थोड़ी देर बाद उसे मालूम हो गया कि वह अपने भाईयों से लड़ रहा है। तब वह उस ओर से समुद्रविजय के जो बाण आते उन्हें अपनी बाण विद्या की कुशलता से बीच में ही काट डालता और आप जो बाण छोड़ता वे बड़े धीरे से छोड़े जाते थे। बन्धुपन का वह पूरा ख्याल रखता था।

इस पर वह कौतुहल से कुछ देर तक लड़ता रहा। इसके बाद उसने सुख देनेवाले मित्र के समान अपने नाम का बाण छोड़ा। वह जाकर समुद्रविजय के पाँवों के आगे पड़ा। समुद्रविजय ने उसे उठाकर उसमें लगे पत्र को पढ़ा। पत्र में लिखा हुआ था—

लोगों के कहने में आकर आपने जिसे कैद कर दिया था, वह रात को उस कैद से निकलकर क्रोधवश कहीं चल दिया था। वही आपका प्यारा छोटा भाई वसुदेव सौ वर्ष कहीं बिताकर पुण्य से वापिस आपके पास आ गया है। प्रभो! अपने प्रिय भाई के अपराध क्षमाकर उसे छाती से लगाईए।

पत्र पढ़कर वसुदेव के आठों भाइयों को परम आनन्द हुआ। उन्होंने सोचा–सचमुच ही वसुदेव आ गया है, और हिरण्यवर्मा की राजकुमारी रोहिणी ने प्रेम से वरमाला पहनाकर जिसे वरा है, वही अपना वसुदेव है। यह विचारकर उन सबने उसी समय युद्ध रोक दिया।

वे वसुदेव के पास जाने ही को थे कि इतने में स्वयं वसुदेव ही दौड़ा आकर अपने भाइयों के पाँवों पर गिरने लगा। भाइयों ने

उसे गिरने से रोककर झट से छाती से लगा लिया। वे आनन्दित होकर बोले—

भैया! आज हमारी सब इच्छा पूरी हो गयी। तुझे देखकर हमारा पुण्यवृक्ष फल उठा। सारा यादववंश ध्वजा की तरह शोभित हुआ। चन्द्रमा से अलंकृत किये गये आकाशमण्डल के समान तूने अकेले ने ही उसे विभूषित कर दिया। तुझे पाकर आज हम सचमुच बलवान हो गये।

सौरीपुर आज वास्तव में शूरवीर से मण्डित हुआ। इत्यादि मन को प्रिय मधुर मनोहर वचनों को सुनकर सूरज की किरणों से खिले हुए कमल के समान वसुदेव बड़ा प्रसन्न हुआ।

इसके बाद वसुदेव ने और और बन्धुओं को भी भक्ति से नम्र होकर नमस्कार किया—विनय किया। रोहिणी ने जिसे 'वरा' वह कौन है, इनका परिचय सबको हो गया। इस वृत्तान्त से सब ही को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद महान उत्सव के साथ रोहिणी का वसुदेव से विवाह कर दिया गया। इसके सिवा वसुदेव ने जो पहले और बहुत सी विद्याधर-राजाओं और नर-राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह किया था, वे सब भी गुणवती सुन्दरी कन्यायें ला-लाकर कुमार को सौंप दी गयीं।

इसके बाद ये सब भाई वसुदेव को साथ लिये बड़े ठाट-वाट से सौरीपुर पहुँचे। वहाँ अब इन सब भाईयों का समय पूर्व पुण्य के उदय से बड़े आनन्द-उत्सव से जाने लगा।

कुछ दिनों बाद रोहिणी के गर्भ रहा। जिन 'शंख' नाम मुनि का ऊपर पहले जिक्र आ चुका है, वे महाशुक्र नाम स्वर्ग से

रोहिणी के गर्भ में आये। नौ महीने बाद शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न में रोहिणी ने उन्हें जन्म दिया। 'पद्म' नाम नवमें बलदेव यही हैं। जन्म समय ये एक उज्ज्वल पुण्य पुंज से जान पड़े। ये सब श्रेष्ठ लक्षण, कला और गुणों से युक्त थे। सत्पुरुषों को चन्द्रमा के समान प्रसन्न करनेवाले थे।

इस प्रकार पुण्य के प्रभाव से समुद्रविजय वगैरह पुत्र-पौत्रादिक का सुख-भोग करते हुए राज्य करने लगे। पुण्य सुख का कारण है। वह पुण्य जिन-पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवासादि द्वारा प्राप्त किया जाता है।

जो सब गुणों के समुद्र हैं, देवता जिन्हें नमस्कार करते हैं, त्रिभुवन को जो सुख देनेवाले हैं, सब पापों के नाश करनेवाले हैं, निर्मल केवलज्ञान जिन्हें प्राप्त है और जो अपनी वचनरूपी किरणों से सूरज की तरह मिथ्यान्धकार को नाश करनेवाले हैं, वे श्री नेमिनाथ जिन सब जीवों की रक्षा करें।

इति चतुर्थः सर्गः।

पाँचवाँ अध्याय

कंस-कृष्ण का जन्म, कृष्ण द्वारा चाणूरमल्ल की मृत्यु

जगत का हित करनेवाले श्री नेमिनाथ जिन को नमस्कार कर यथागम कंस का वृत्तान्त लिखा जाता है।

फूले-फले नाना प्रकार के वृक्षों से युक्त गंगा और गन्धवती नामक नदी के सुन्दर संगम में तापसियों की एक छोटी सी पल्ली थी। उसमें सब तापसियों का स्वामी 'वशिष्ठ' नाम का तापसी रहता था। वह एक दिन पंचाग्नि-तप में बैठा हुआ था। उस समय वहाँ 'गुणभद्र' और 'वीरभद्र' नाम के दो आकाशचारी मुनि आये।

वशिष्ठ को पंचाग्नि-तप में बैठा देखकर उन्होंने कहा—यह तप महा कष्ट देनेवाला और अज्ञानी जन का चलाया हुआ है। उनके इन वचनों को सुनकर वशिष्ठ को बड़ा क्रोध आया। वह उनके सामने खड़ा होकर बोला—तुमने जो मुझे अज्ञानी कहा वह किस तरह ? बतलाओ।

उनमें बड़े गुणभद्र मुनि बोले—देखो, इस अज्ञानी ज्वाला में कितने जीव आ-आकर गिरते हैं और बेचारे मर जाते हैं। इन लकड़ियों में कितने जीव होंगे ? तुम जो रोज रोज नहाते हो, उससे तुम्हारी इन जटाओं में छोटी-छोटी कितनी मछलियाँ फँसकर जान गँवा चुकी हैं। बतलाओ फिर तुम्हारी दया कहाँ गयी ? और धर्म का मूल जीव दया बतलायी गयी है। तब जहाँ दया नहीं, वहाँ धर्म भी नहीं। और धर्म के बिना स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति नहीं। इस कारण

हे सीधे स्वभाव के धारक! तुम्हारा यह तप अज्ञान-तप है और हिंसा के सम्बन्ध से कर्मबन्ध का कारण है।

हिंसारहित तो है श्री जिनप्रणीत धर्म और उसी द्वारा भव्यजन स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करते हैं। इत्यादि अनेक दृष्टान्तों से वशिष्ठ तापसी को गुणभद्रमुनि ने समझाया। उनका समझाना वशिष्ठ के ध्यान में आ गया, सो वह उसी समय तापस वेष को छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गया।

इसके बाद वशिष्ठ मुनि ने बहुत ही दु:सह तप करना आरम्भ किया। वे एक महीना के उपवास करने लगे। उन्होंने महान आतापन योग करना शुरु किया। तप के प्रभाव से वश हुई सात व्यन्तर देवियाँ नुपूरों का मधुर मनोहर शब्द करती हुईं, उनके पास आईं और नमस्कार कर बोलीं—

प्रभो! तप के बल से हम आपको सिद्ध हुई हैं। हमें बतलाइए कि हम क्या करें? उनकी सुन्दरता देखकर वशिष्ठ मुनि ने उनसे कहा—

इस समय तो मुझे कोई ऐसा काम नहीं दीख पड़ता, जिसके लिए मैं तुम्हें कष्ट दूँ। दूसरे जन्म में मैं तुमसे काम लूँगा, उस समय अवश्य आना। इस समय तुम जाओ। वे देवियाँ वशिष्ठ मुनि को नमस्कार कर वहाँ से चली गयीं।

इसके बाद वशिष्ठ मुनि घोर तप करते हुए मथुरा के जंगल में पहुँचे। वहाँ आतापनयोग धारण कर एक पर्वत पर वे ध्यान करने लगे। तप करते उन्हें एक महीना हो गया। उन्हें एक महीना के उपवास देखकर मथुरा के राजा 'उग्रसेन' ने सारे शहर में डौंडी पिटवा दी—

'इन तपस्वी मुनि को मैं ही दान दूँगा, शहर में और कोई दान न दे।'

इसके बाद महीना के उपवास पूरे कर वशिष्ठ मुनि आहार के लिए मथुरा में गये। कर्मयोग से उसी दिन राज-महल में आग लग गयी। मुनि उसे देखकर निराहार लौट गये और फिर एक महीना का योग धारण कर तप करने लगे। योग पूरा होने पर वे फिर आहार के लिए मथुरा में आये। उस दिन 'महायाग' नामक राजा का हाथी सांकल तोड़कर भाग निकला और लोगों को कष्ट देने लगा। राजा आज इस हाथी के पकड़वाने में लग गये। इस कारण वे मुनि को आहार देना भूल गये और दूसरों के लिए आहार देने की राजा की ओर से सख्त मनाही होने से और लोग भी वशिष्ठ मुनि को आहार न करा सके।

मुनि इस समय भी अन्तराय समझ लौट गये और फिर एक महीना का उन्होंने योग धारण कर लिया। योग पूरा कर वे फिर आहार के लिए मथुरा में गये।

अबकी बार उग्रसेन पर जरासंघ का पत्र आया था। उसमें कुछ ऐसे समाचार थे, जिनसे उग्रसेन को बड़ा चिन्तित होना पड़ा। इस कारण उन्हें मुनि के आहार की याद न रही। मुनि भूख-प्यास के कष्ट में बड़ी क्षीण हो गये थे। ऐसी अवस्था में बिना आहार किये ही उन्हें लौटते हुए देखकर उनकी कष्टमय दशा पर लोगों को बड़ी दया आयी। वे परस्पर में बातें करने लगे।

इन महामुनि को न तो राजा स्वयं दान देता है और न दूसरों को ही देने देता है। न जाने राजा को क्या सूझा है ? ये व्रती, तपस्वी महामुनि व्यर्थ ही कष्ट पा रहे हैं।

उन लोगों के वचनों को सुनकर पापकर्म के उदय से वशिष्ठ मुनि को मन में बड़ा ही कष्ट हुआ। क्रोध से उनका हृदय तप उठा। उस क्रोध के वेग से अन्धे बनकर तत्त्वज्ञानरहित वशिष्ठ मुनि ने निदान कर डाला कि—

'दुर्मति उग्रसेन ने जो मेरे लिए दान में विघ्न किया है, उसका बदला चुकाने को मेरा जन्म, इस महातप के प्रभाव से इसी के यहाँ हो और मैं इसका राज्य छीनकर इसे उचित दण्ड दूँ।'

इसके साथ ही वशिष्ठ मुनि गश खाकर जमीन पर गिर पड़े और मरकर उग्रसेन की रानी पद्मावती के गर्भ में आये। इस वैरानुबन्ध से रानी को दोहला भी ऐसा ही हुआ। उसकी इच्छा हुई कि मैं राजा की छाती चीरकर उसका माँस भक्षण करूँ।

इस आर्त्तध्यान से वह बड़ी दु:खी हुई, परन्तु राजा से वह अपने दोहले का हाल कह न सकी। वह इस चिन्ता से दिन पर दिन दुबली होने लगी। मन्त्रियों को किसी तरह रानी के मन की बात मालूम हो गयी, तब उन चतुर मन्त्रियों ने अपनी बुद्धि से एक कृत्रिम उग्रसेन बनाकर रानी का दोहला पूरा किया।

इसके कुछ दिनों बाद पद्मावती ने पुत्र-रूपी शत्रु जना। उग्रसेन पुत्र मुँह देखने को गये। उन्होंने देखा—उनका पुत्र ओठों को दाँतों से काट रहा है और भयंकर-क्रूर मुँह बनाकर दोनों हाथों की मुट्ठियों को बाँध रहा है। उसकी वह भयानकता देखकर उग्रसेन ने सोचा—यह बालक अत्यन्त दुष्ट है, इसको रखना उचित नहीं।

यह विचारकर उन्होंने उसे एक कांसी के सन्दूक में बन्द कर दिया और उसी में उस बालक का परिचय करानेवाला पत्र लिखकर

रख दिया। इसके बाद वह सन्दूक यमुना नदी की धार में बहा दी गयी। सत्य ही है—जिसका मूल अच्छा न हो उसे सत्पुरुष छोड़ देते हैं।

वह सन्दूक बहती-बहती कौशाम्बी में पहुँच गयी। वहाँ एक कलालिन रहती थी। उसका नाम मन्दोदरी था। उसने उस सन्दूक को निकाल लिया। खोलकर देखा तो उसमें उसे एक बालक दीख पड़ा। वह बालक कांसी के सन्दूक में से निकला, इस कारण उसका नाम उसने 'कंस' रख दिया। वह उस बालक को बड़े प्यार से पालने लगी।

कंस धीरे-धीरे बड़ा होकर खेलने-कूदने जाने लगा। वह स्वभाव ही से बड़ा क्रूर था, सो दूसरों के लड़कों को थप्पड़, लात, पत्थर आदि से मारने-पीटने लगा। सत्य है, क्रूर जन जहाँ-जहाँ जाते हैं, वे वहीं तपे हुए लोहे के गोले की तरह दूसरों को कष्ट दिया करते हैं। जिन बालकों को कंस मारता-पीटता था, उनके रोज-रोज के रोने-धोने और कंस की शैतानी को देखकर मन्दोदरी बड़ी दु:खी हुई। आखिर बहुत ही तंग आकर उसने कंस को घर से निकाल दिया।

कंस कौशाम्बी से चलकर सौरीपुर पहुँचा। वहाँ वह वसुदेव का नौकर हो गया।

इस समय इस प्रकरण को यही छोड़कर इसी से सम्बन्ध रखनेवाला कुछ थोड़ा सा दूसरा प्रकरण यहाँ लिखा जाता है।

★ ★ ★

उस समय राजगृह में त्रिखण्ड-चक्रवर्ती जरासंघ राज्य करता था। सुरम्य नामक देश के प्रसिद्ध शहर पोदनापुर के राजा 'सिंहरथ' की जरासंघ के साथ शत्रुता थी। सिंहरथ सदा उससे प्रतिकूल रहता था। वह जरासंघ के हृदय में कांटे की तरह चुभा करता था। उससे दु:खी होकर एक दिन त्रिखण्डेश जरासंघ ने सभा में बैठे हुए वीरों से कहा—

'सिंहरथ बड़ा ही दुष्ट है। वह मेरी आज्ञा को कुछ भी नहीं गिनता—मैं उससे बड़ा तंग आ गया हूँ। जो बहादुर वीर रण में उसे बाँधकर मेरे पास लावेगा, उसे मैं अपना आधा राज्य देकर अपनी प्रिय पुत्री जीवंयशा भी ब्याह दूँगा।'

यह कहकर उसने इसी आशय का एक-एक पत्र और राजाओं के पास भी भेजा। एक पत्र समुद्रविजय के पास भी आया।

वसुदेव इस पत्र को देखकर समुद्रविजय के पास गये। उन्हें भक्ति से नमस्कार कर सिंहरथ पर चढ़ाई करने की उनसे आज्ञा ली।

इसके बाद वे कंस को साथ लिए चतुरंग-सेनासहित पोदनापुर की रणभूमि में जाकर दाखिल हुए। वीर-शिरोमणि वसुदेव सिंह के मूत्र की भावना दिये गये-घोड़े जिस रथ के जुते हुए हैं, ऐसे रथ पर सवार होकर दुर्गम संग्राम में आगे-आगे बढ़ते गये। सिंहरथ के साथ उन्होंने घोर युद्ध कर उसकी सब सेना को मार डाला।

इस तरह उन्होंने दुष्ट सिंहरथ को पराजित कर कंस से उसके बाँध लेने को कहा। इसके बाद वे सिंहरथ को जरासंघ के सामने लाकर नमस्कार कर बोले—

प्रभो! यह आपका शत्रु सिंहरथ आपके सामने उपस्थित है।

त्रिखण्डाधीश जरासंघ ने सन्तुष्ट होकर वसुदेव से कहा—महाभाग! तूने आज चन्द्रमा से भूषित आकाशमण्डल की तरह सारे यादववंश को भूषित कर दिया। सूरज जैसे कमलों को विकसित करने में समर्थ है, उसी तरह इस कार्य में तुझसे शूरवीर ही समर्थ थे। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं तुझे अपना आधा राज्य और जीवंयशा पुत्री को, जो कलिन्द सेना में उत्पन्न हुई है और अपनी सुन्दरता से देवांगनाओं को जीत लिया है, देने को तैयार हूँ। तू इसे स्वीकार कर।

जीवंयशा में कुछ ऐब था। उसका वसुदेव को ज्ञान था। इसलिए उस चतुर ने जरासंघ को नमस्कार कर कहा—महाराज! आपके बलवान शत्रु को मैंने नहीं बाँधा है, किन्तु मेरे इस नौकर कंस ने बाँधा है, उसके पुरुषार्थ से प्राप्त किये गये दूसरे के यशोधन को मैं नहीं छीनना चाहता। आप जो कुछ देना चाहते हैं, वह सब इसे दीजिए। कार्य और अकार्य के विचार करने में सत्पुरुष कभी मोह को प्राप्त नहीं होते।

जरासंघ ने तब कंस की ओर देखकर उससे उसके वंश का परिचय देने की इच्छा प्रगट की।

कंस बोला—'देव! कौशाम्बी में मन्दोदरी नाम कलालिन रहती है, वही मेरी माता है। मेरा स्वभाव तीव्र होने के कारण मैं अपने खेलकूद के साथियों को बड़ी तकलीफ दिया करता था, उन्हें मारपीट भी देता था। लोगों ने उसके पास जाकर मेरी वे सब शिकायतें कीं। रोज-रोज के मेरे इन लड़ाई-झगड़ों से अत्यन्त तंग

आकर मुझे उसने घर से निकाल दिया। वहाँ चलकर मैं सौरीपुर आ गया और यहाँ इस महाभाग का शरण लाभकर धुनर्विद्या का अभ्यास करने लगा। इसके बाद आपकी आज्ञा पाकर जब ये युद्ध के लिए तैयार हुए, तब इनके साथ मैं भी गया। युद्ध में आपके शत्रु पर विजय प्राप्त कर मैंने उसे बाँध लाकर आपके सामने हाजिर किया।'

जरासंघ ने यह सब सुनकर उसके चेहरे की ओर देखा। देखकर उसने मन ही मन कहा—ऐसा तेजस्वी वीर नीच-कुल में नहीं पैदा हो सकता। इसे अवश्य क्षत्रिय होना चाहिए। लोगों का भव्य चेहरा ही उनके कुलादिक का परिचय दे देता है। और क्षत्रियों के सिवा ऐसी वीरता का काम दूसरों से बन भी नहीं सकता।

इतना विचार कर जरासंघ ने उसी समय अपना नौकर कौशाम्बी में मन्दोदरी के पास भेजा। मन्दोदरी उस नौकर को देखकर मन में बड़ी घबराई। उसने सोचा—जान पड़ता है, उस पापी ने वहाँ भी कुछ न कुछ बखेड़ा किया है। वह उस सन्दूक को लेकर राजा के पास पहुँची और उसे राजा के सामने रखकर बोली—

महाराज! कंस मेरा पुत्र नहीं, किन्तु इस सन्दूक का है। मुझे यह सन्दूक नदी की धार में बहती हुई मिली थी। इस कांसी की सन्दूक में से यह निकला, मैंने इसका नाम भी इसी कारण कंस ही रख दिया था। मैंने इसको कुछ दिनों तक पाल-पोसकर बड़ा किया। बालपन से ही यह बड़ा दुष्ट था। लोगों के बाल-बच्चों को मारा-पीटा करता था। लोकनिन्दा के डर से तब मैंने इसे अपने घर से निकाल दिया।

यह सब सुनकर जरासंघ ने उस सन्दूक को खोला। उसमें एक पत्र निकला। उसमें लिखा हुआ था—'राजा उग्रसेन की रानी पद्मावती से इसका जन्म हुआ है। पिता ने अपने लिए इसे कष्ट का कारण समझकर छोड़ दिया।'

कंस का यह हाल सुनकर त्रिखण्डाधीश जरासंघ को बड़ी खुशी हुई। फिर उसने बड़े ठाठ के साथ कंस से जीवंयशा की शादी कर कहा—

मेरे इतने बड़े राज्य का तुम जो हिस्सा पसन्द करो, उसे अपनी खुशी से ले लो। कंस ने जब सुना कि मेरे पिता ने मुझे नदी में बहा दिया था, तब उसे उग्रसेन पर बड़ा क्रोध आया। उसी का बदला चुकाने के अभिप्राय से उसने जरासंघ से मथुरा का राज्य ले लिया।

इसके बाद उसने अपने पिता से युद्ध किया। जब उग्रसेन की सेना का बल घट गया और भागी, तब कंस ने हाथी के महावत को मारकर उस पर बैठे हुए उग्रसेन को पकड़ लिया, और उनकी रानी पद्मावतीसहित उन्हें नागपाश से बाँधकर लोहे के पींजरे में डाल दिया, और उस पींजरे को उसने शहर के बाहर के फाटक पर रखवा दिया।

वन में उत्पन्न हुई अग्नि जैसे वन ही को जला डालती है, कुपुत्र उसी तरह अपने पिता को ही जला डालनेवाला होता है।

पिता का राज्य पाकर कंस एक बार बड़े गौरव के साथ वसुदेव को मथुरा में लाया। कंस ने इसके पहले अपने मामा की लड़की देवकी को भी वहीं मंगवा लिया था। वह सुन्दरता में

देवांगना जैसी थी। इसके बाद उसने बड़े उत्सवपूर्वक देवकी का विवाह वसुदेव से कर दिया। वसुदेव देवकी के साथ मनचाहा सुख भोगते हुए सुख के कारण जिनप्रणीत धर्म का पालन करने लगे। उनके दिन बड़े आनन्द से बीतने लगे।

अपने भाई के द्वारा ही पिता का इस प्रकार अपमान देखकर कंस के छोटे भाई 'अतिमुक्तक' को बड़ा वैराग्य हुआ। वे दीक्षा लेकर मुनि हो गये। जिसे देवता पूजते हैं, उस जिनप्रणीत कठिन तप को वे करने लगे।

एक दिन वे आहार करने को मथुरा के राजमहल में गये हुए थे। उस समय जवानी की मद से मस्त हुई कंस की रानी जीवयंशा देवकी का वस्त्र लिए अतिमुक्तक मुनि के पास आयी और मधुर-मधुर मुस्काती हुई बोली—योगिराज! इस वस्त्र द्वारा देवकी अपने मनोगत भावों को आप पर जाहिर करती हैं।

जीवयंशा की यह हँसी देखकर उन्हें क्रोध हो आया। वे बोले—अरी ओ मूर्ख! ऐसी हँसी करके क्यों वृथा पाप बाँधती है? सुन, जिस देवकी की तू खिल्ली उड़ा रही है, थोड़े दिनों बाद उसी का पुत्र तेरे पति के प्राण लेगा। मुनि के वचनों को सुनकर जीवयंशा ने क्रोध के मारे उस वस्त्र के दो टुकड़े कर डाले।

मुनि बोले—और सुन! जैसे तूने इस वस्त्र के दो टुकड़े कर डाले हैं, उसी तरह देवकी का पुत्र तेरे पिता के दो टुकड़े करेगा। इसके बाद जीवयंशा उस वस्त्र को जमीन पर डालकर पाँवों से रोंदने लगी।

यह देखकर मुनि बोले—इसी तरह देवकी का पुत्र भी तीन

खण्ड पृथ्वी को पादाक्रान्त करेगा। इस प्रकार होनहार कहकर भविष्यवेत्ता अतिमुक्तक मुनि आहार किये बिना ही लौट गये। जो मूर्ख पुरुष अभिमान में मस्त होकर तपस्वी साधुओं को कष्ट देते हैं, वे फिर पाप के उदय से अत्यन्त दुस्सह दु:खों को भोगते हैं।

इसलिए जो जिन प्रणीत तत्त्व के जानकार विद्वान लोग हैं, उन्हें कभी अभिमान न करना चाहिए। जीवयंशा, मुनि की उन बातों को सुनकर बड़ी दु:खी हुई। उसने जाकर वे सब बातें अपने स्वामी से कह दी। अपनी प्रिया द्वारा उन सब बातों को सुनकर मौत से डरे हुए कंस ने सोचा—मुनि के वचन तो कभी झूठे नहीं हो सकते, तब इसके लिए मुझे कोई उपाय करना ही चाहिए। यह सोचकर वह सुदीर्घ समय तक जीने की आशा कर वसुदेव के पास गया और नमस्कार कर बोला—

हे प्रभो! हे सत्यवचनरूप समुद्र के बढ़ानेवाले चन्द्रमा! जब मैंने सिंहरथ को युद्ध में बाँधा था, तब आप पुण्यात्मा ने मुझे एक 'वर' दिया था। हे देव! उसकी मुझे अब जरूरत है। आप उसे याद कर कृपा कर दीजिए न? प्रभो! मेरी स्त्री से कष्ट दिये गये अभिमानी अतिमुक्तक योगी ने निर्मयाद वचनों द्वारा कहा है कि—

'तेरा पति देवकी के पुत्र से मारा जाएगा।' इसलिए मैं उससे उत्पन्न पुत्रों को मार डालना चाहता हूँ। मुझे वचन दीजिए कि प्रसूति के समय उसे आप मेरे घर पर भेज दिया करेंगे। सच है आशावान् प्राणी दूसरों के दु:खों को नहीं देखता। वह दुर्जन राक्षस की तरह सदा अपना स्वार्थ-मतलब ही देखा करता है।

वज्र की सांकल से बाँधे हुए सिंह की तरह वसुदेव वचनरूपी

सांकल से बँध गये, और उन्हें फिर कंस का कहना स्वीकार कर लेना ही पड़ा।

यह सब हाल सुनकर देवकी बड़ी दु:खी हुई। वह वसुदेव से बोली—नाथ! आपके और बहुत सी स्त्रियाँ हैं, और उनसे पैदा हुए पुत्रों की भी कमी नहीं है। तब आपके लिए तो कोई दु:ख की बात नहीं। दु:ख है मुझे—क्योंकि एक तो प्रसूति का ही कितना कष्ट होता है, उसे मैं अच्छी तरह जानती हूँ। दूसरे मेरी आँखों के सामने मेरे ही पुत्र शत्रु द्वारा मारे जायेंगे। पुत्रों के इस दु:ख को, नाथ! मैं न सह सकूँगी। इसलिए मुझे आज्ञा दीजिए, जिससे मैं जिनदीक्षा ग्रहण कर लूँ। हाय! घर-वास बड़ा ही दु:खरूप है। यह सुनकर वसुदेव, देवकी से बोले—

प्रिये! यदि मैं कंस को अपने पुत्र मारने न देता हूँ तो मेरी प्रतिज्ञा टूटती है, और मारने देता हूँ तो दुस्सह दु:ख उठाना पड़ता है। इससे तो उत्तम यह है कि हम तुम दोनों इन पंचेन्द्रिय के विषयों को छोड़कर सवेरे जिनदीक्षा ग्रहण कर लें। फिर दुष्ट कंस किसके पुत्रों को मारेगा? प्रिये! ऐसा करने से मुझे कुछ दु:ख न होगा।

इस प्रकार निश्चय कर वे उस दिन घर ही में सुख से रहे। दूसरे दिन भाग्य से अतिमुक्तक मुनि इन्हीं के घर आहार के लिए पधारे। उन्हें देखते ही देवकी और वसुदेव बड़ी भक्ति से उठकर उनके सामने गये और बारबार नमस्कार कर नवधाभक्ति के साथ उन्होंने मुनिराज को प्रासुक आहार कराया।

आहार के बाद आशीर्वाद देकर मुनि वहीं विराज गए। उन्हें

बड़े प्रेम से नमस्कार कर वसुदेव और देवकी ने पूछा—

प्रभो! हमें दीक्षा मिल सकेगी या नहीं?

जिनप्रणीत तत्त्व को जाननेवाले ज्ञानी मुनि कहा—

इस देवकी रानी के सात पुत्र निश्चय करके होंगे। उनमें तद्भव मोक्षगामी छह पुत्र तो पुण्य से दूसरे स्थान पर पलकर बड़े होंगे और सातवाँ जो कृष्ण नामक पुत्र होगा, वह 'नववाँ नारायण' होगा। वह कंस और जरासंघ को मारकर त्रिखण्डेश—अर्द्धचक्री का पद प्राप्त करेगा।

इतना कहकर अतिमुक्तक मुनि अपने आश्रम को चले गए। इस भविष्य को सुनकर वसुदेव और देवकी को बड़ा सन्तोष हुआ।

इसके बाद कुछ काल बीतने पर देवकी ने तीन बार में चरमशरीरी तीन श्रेष्ठ युगल प्रसव किये। इन्द्र की आज्ञा से नैगम नामक देव उन युगलों को भद्रिलपुर में 'अलका' नामक एक महाजन स्त्री के यहाँ रख आया और उसके मरे हुए युगलों को उसने छुपी रीति से देवकी के यहाँ लाकर रख दिया। उन मेरे पुत्रों को देखकर कंस ने मन ही मन कहा—बेचारे ये मुर्दे मुझे क्या मारेंगे? मुनि का कहा झूठा हुआ। इस पर भी उसके मन में थोड़ा-सा खटका-भय बना ही रहा। उसने निर्दयता से उन मरे युगलों को भी शिला पर दे मारा। अरेरे! मूर्खों की चेष्टा को धिक्कार है।

इसके कुछ समय बाद देवकी के फिर गर्भ रहा। जिन निर्नामिक नाम के मुनि का पहले वर्णन आ गया है, वे अबकी बार महाशुक्र

नाम स्वर्ग से आकर देवकी के गर्भ में आये। देवकी ने अबकी बार सातवें महीने में ही और अपने ही घर पर ही लक्षण युक्त और शत्रुओं का नाश करनेवाले नवमें कृष्ण नामक नारायण को सुख से प्रसव किया। वसुदेव और बलदेव ने देवकी के साथ विचार कर निश्चय किया कि इस बालक का पालन-पोषण 'नन्द' नामक ग्वाले के यहाँ होना अच्छा है। ऐसा करने से कंस को इस बात का पता भी न पड़ेगा।

इसी निश्चय के अनुसार वसुदेव और बलदेव रात ही को उस बालक को छतरी की आड़ में छुपाये हुए अपने महल से निकले। पुण्ययोग से उस अन्धेरे में इन्हें प्रकाश की भी सहायता मिल गई। पुरदेवी, जिसके सींगों पर दीपक जल रहे हैं, ऐसे बैल का रूप लेकर इनके आगे-आगे होकर चलने लगी। पुण्य से प्राणियों का कौन उपकार नहीं करता ?

ये दोनों थोड़ी देर बाद शहर किनारे के फाटक पर पहुँचे। देखते हैं तो फाटक के किवाड़ बन्द हैं। परन्तु आश्चर्य है कि उस बालक के पांवों का स्पर्श होते ही वे किवाड़ भी उसी समय खुल गए। जैसा पहले जन्म में किया है, उसके अनुसार सभी साधन अपने आप ही मिल जाते हैं। दरवाजे पर ही उग्रसेन का पींजरा रखा हुआ था। उन्होंने किवाड़ खुलते देखकर कहा—

इतनी रात में दरवाजे के किवाड़ किसने खोले हैं ? सुनकर बलदेव बोले—महाभाग! आप जरा चुप रहिए। ये किवाड़ उस महात्मा ने खोले हैं जो आपको इस बन्धन से मुक्त करेगा।

सुनकर उग्रसेन बोले—'एवमस्तु'। इसके बाद उन्होंने 'चिरं

जीवात्' कहकर उस बालक को आशीर्वाद दिया। यहाँ से आगे इन्हें बीच में यमुना नदी पड़ी। बालक के पुण्य से यमुना ने भी उन्हें जाने का रास्ता दे दिया। आश्चर्य है—जड़ाशय (मूर्ख-नदीपक्ष में जल से भरी) नदी ने भी इन्हें जाने का रास्ता दे दिया। पुण्यवानों की कौन सहायता नहीं करता? इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

वे नदी लांघकर आगे बढ़े तो सामने ही इन्हें नन्दगोप आता दिखायी दिया। वह उसी समय पैदा हुई अपनी लड़की को हाथ में लिए हुए आ रहा था। उसे देखकर इन्होंने पूछा—भाई! इतनी रात में तुम कहाँ जा रहे हो? नन्द उन्हें प्रणाम कर बोला—

प्रभो! आपकी चाकरनी मेरी स्त्री ने पुत्र के लिए इस पुरदेवी की चन्दन, फूल इत्यादि से पूजा की थी; परन्तु आज रात को पुत्र की जगह उसके यह पुत्री हुई। उसने क्रोधित होकर मुझसे कहा—लो, इस लड़की को वापस देवी की भेंट कर आओ। मुझे उसकी इस कृपा की जरूरत नहीं। इसलिए मैं उसके कहने के अनुसार इस लड़की को देवी के यहाँ रख आने को आया हूँ।

यह सुनकर वसुदेव और बलदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद उन्होंने नन्द से अपना सब हाल कहकर कहा—भाई! इस होनेवाले त्रिखण्डेश बालक को तो तुम लो और अपनी कन्या को हमें दे दो। ऐसा कहकर उन्होंने उस बालक को नन्द के हाथों पर रख दिया और आप उस लड़की को लेकर छुपे हुए मथुरा में आ गए। लड़की को उन्होंने देवकी को सौंप दिया। पुण्यवानों को सुबुद्धि झट पैदा हो जाती है।

उधर नन्द भी उस पुत्र को लेकर अपने घर पहुँचा। उसने अपनी स्त्री से कहा—प्रिये! यह लो देवता ने तुम्हारी भक्ति पर प्रसन्न होकर तुम्हें यह श्रेष्ठ पुत्ररत्न दिया है। यह कहकर नन्द ने उस बालक को यशोदा की गोद में रख दिया। उस श्रेष्ठ लक्षणयुक्त सुन्दर बालक को देखकर यशोदा तो मुग्ध हो गयी। वह हर्षित होकर बोली—

सचमुच देवता ने मुझ पर प्रसन्न होकर ही यह पुत्र दिया है। वह बड़े प्यार से उसका लालन-पालन करने लगी। भौली स्त्रियों के मन में कोई विशेष विचार पैदा नहीं होता।

इधर दुष्ट कंस देवकी के पुत्री हुई सुनकर उसी समय उनके घर पर आया। लड़की को देखकर उस निर्दयी ने अपने हाथों से उस बेचारी की नाक काट डाली। दुष्ट पुरुष दुष्कर्म करने में सदा तत्पर रहते हैं।

मोहवश होकर देवकी ने उस लड़की का लालन-पालन किया और उसे बड़ी की। माता अपनी लड़की का हित ही करती है। जब वह लड़की बड़ी होकर जवान हुई और उसने अपनी नाक कटी देखी, तब उसे बड़ी उदासीनता हुई। फिर वह 'सुव्रता' नाम की आर्यिका के पास जिनदीक्षा ले गयी और एक सफेद वस्त्र पहने वह विन्ध्यपर्वत के घोर जंगल में जिनभगवान का हृदय में ध्यान करती हुई कायोत्सर्ग से तप करने लगी।

वह मेरु के समान ध्यान में स्थिर खड़ी हुई थी। भीलों ने उसे कोई देवता समझकर उसकी फूलों से पूजा की। पूजा करके भील लोग तो चले गए। इतनें में एक सिंह ने उसके सारे शरीर को खा

लिया था, परन्तु उसके हाथों की सिर्फ तीन उँगलियाँ बच गयी थीं। उस देश के भीलों ने उन उँगलियों को देवता समझ पूजा।

कुछ दिनों में वे उँगलियाँ नष्ट हो गयीं तो उन्होंने लोहे और लकड़ी का उँगलियों जैसा आकार बनाकर और उसकी अपने-अपने गाँवों में स्थापना कर वे उसे पूजने लगे। उन मूर्खों की चलायी, वह त्रिशूल-पूजा आज भी होती देखी जाती है।

★ ★ ★

उधर नन्द के घर में कृष्ण का यशोदा तथा और-और अड़ोस-पड़ोस में रहनेवाली व ग्वालिनों के हाथों द्वारा बड़े लाड़-प्यार से लालन-पालन होने लगा। बढ़ता हुआ वह बालक कृष्ण पुण्य से कामरूपी वृक्ष के पौधे के समान शोभा पाने लगा। ग्वालिनों के मनरूपी कमलों को प्रफुल्लित करनेवाला वह बाल-सूरज काले रंग के मणि के समान जान पड़ने लगा। (कृष्ण का श्यामवर्ण प्रसिद्ध है।)

इधर कृष्ण तो दिन-दिन बढ़ता हुआ अपने नये-नये खेलों से लोगों के मन को मोहने लगा और उधर कंस की राजधानी मथुरा में नक्षपात, कम्प, दिशादहन, उल्कापात आदि भयंकर उपद्रव होने लगे। इन उत्पातों से कंस डरा। उसने वरुण नामक निमित्तज्ञानी को बुलाकर पूछा—आप होनहार को जान सकते हैं, तब बतलाओ कि ये जो उपद्रव हो रहे हैं, इनका क्या फलाफल है ?

निमित्तज्ञानी ने साररूप में यह कहा कि 'राजन्! तुम्हारा महान शत्रु उत्पन्न हो गया है। निमित्तज्ञ के वचन सुनकर कंस बड़ा चिन्तातुर और दु:खी हुआ। भयंकर शत्रु के पैदा होने पर किसे

चिन्ता नहीं होती ? कंस को चिन्ता से घिरा देखकर वे पूर्व जन्म की सातों देवियाँ, जो कंस के पूर्व जन्म में वशिष्ठ मुनि के तप के प्रभाव से सिद्ध हुई थीं, उसके पास आयीं और बोलीं—

प्रभो ! हम आपकी दासियाँ हाजिर हैं। बतलाइए, हम आपकी क्या सेवाा करें ? उत्तर में कंस ने कहा—बड़ा अच्छा हुआ जो इस समय तुम आ गयीं। अच्छा अब जाओ, और जहाँ मेरा शत्रु पैदा हुआ हो, उसे जान से मार डालो ! उन्होंने विभंगावधि ज्ञान द्वारा कंस के शत्रु कृष्ण को जान लिया।

उनमें से पहले 'पूतना' नामक देवी यशोदा का रूप लेकर नन्द के घर गयी और अपने स्तनों में विष रखकर कृष्ण को दूध पिलाने लगी। इतने में किसी दूसरी देवी ने उस पूतना के स्तनों में इतनी सख्त तकलीफ पहुँचाई कि उसे न सह सकने के कारण पापिनी पूतना, प्रभात की ताड़ना पाकर नष्ट हुई रात्रि की तरह भाग खड़ी हुई।

दूसरी देवी गाड़ी का सा रूप धारण कर कृष्ण को मारने दौड़ी। कृष्ण ने उसे पाँवों की ठोकर से मार भगाया। एक दिन यशोदा कृष्ण की कमर में रस्सी बाँधकर पानी भरने चली गयी। कृष्ण अपनी बाल-सुलभ चंचलता से उसे निकाल 'माँ' 'माँ' पुकारता हुआ लोगों के मन को हरने लगा।

उस समय दो देवियाँ बड़े ऊँचे अर्जुन वृक्ष का रूप लेकर कृष्ण को मारने के लिए उस पर गिरने लगीं। कृष्ण ने उन दोनों वृक्षों को जड़ से उखाड़कर तिनके की तरह कहीं फैंक दिया।

इसके बाद एक देवी तालवृक्ष का रूप लेकर कृष्ण के सिर

पर ताल फलों को पटकने लगी। निर्भय कृष्ण उन फलों को गेंद की तरह हाथों में झेलकर रास्ते में उनसे खेलने लगा।

इसी समय एक दूसरी देवी गधी का रूप लेकर कृष्ण को मारने को आई। कृष्ण ने उसे पाँवों से दबाकर उस तालवृक्ष को उखाड़ा और निर्दयता से उस गधी-देवी को ऐसा मारा कि वे दोनों देवियाँ चिल्लाकर बिजली की तरह भाग गईं।

इसके बाद एक देवी घोड़ा बनकर कृष्ण को मारने के लिए आई। कृष्ण ने उसका गला पकड़कर मरोड़ दिया। कृष्ण के हाथ से जान बचाकर वह देवी भी भाग गयी।

इस प्रकार निष्फल प्रयत्न होकर वे सब देवियाँ कंस से जाकर बोलीं—प्रभो! आपके शत्रु को मार डालने की हममें ताकत नहीं है। इतना कहकर वे सब बिजली की तरह अदृश्य हो गयीं। ठीक ही है—पुण्यवान पुरुष का देवता भी कुछ नहीं कर सकते।

रास्ते में कृष्ण की ये सब लीलाएँ देखती हुई गाँव की स्त्रियाँ नदी पर पानी भरने चली जा रही थीं। उन्होंने कृष्ण की माता यशोदा से कहा—यशोदा! तू तो कृष्ण को बड़े जोर से बाँधकर पानी लेने यहाँ आयी और वहाँ वह वृक्ष, गधे, घोड़े आदि द्वारा कष्ट पा रहा है। यह सुनते ही यशोदा बड़ी घबरायी। वह 'बेटा' 'बेटा' चिल्लाती हुई झट से दौड़ी आयी और कृष्ण को देखते ही उठाकर उसने छाती से लगा लिया। घर ले जाकर बड़े आदर-प्यार से वह उसे रखने लगी।

सब देवताओं को जीतनेवाला कृष्ण एक दिन गली में खेल रहा था। उस समय क्रोध से जले हुए कंस का भेजा हुआ 'अरिष्ट'

नाम का देव कृष्ण को मारने आया। वह दुष्ट के समान एक ऊँचे बैल का भयानक रूप बनाकर महा क्रूर गर्जना करता हुआ कृष्ण के मारने को दौड़ा। कृष्ण ने उसकी गर्दन पकड़कर मरोड़ दी। दाँतरहित हाथी की तरह वह बात की बात में मुर्दा-सा हो गया। कृष्ण के सामने ऐसा बलवान बैल भी निर्बल बन गया, यह आश्चर्य है। सत्य है, बलवानों से कष्ट पाकर कौन अभिमान को नहीं छोड़ देता?

उस गर्जना करते हुए महाभीम बैल को कृष्ण द्वारा पराजित देखकर लोगों को बड़ा शोर मच गया। इस हल्ले को सुनकर यशोदा किसी भारी डर की शंका से 'क्या हुआ' 'क्या हुआ' करती दौड़ी आयी। कृष्ण को देखकर उसने कहा—बेटा! तू रोज-रोज इन गधे, घोड़े, बैल आदि के साथ क्यों ऊधम किया करता है? राति-दिन इन झगड़े-टंटों को अब तो छोड़ दे। अरे, तू राक्षस तो नहीं है?

कृष्ण के इस प्रकार विक्रम की सब ओर खूब चर्चा होने लगी। उसे सुनकर वसुदेव और देवकी की कृष्ण को देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। वे एक दिन गोमुखी नाम उपवास का बहाना बनाकर बलदेव को साथ लिए गोकुल गए।

वहाँ जाकर उन्होंने कृष्ण को देखा कि वह गर्दन मरोड़े बैल को पकड़े हुए स्थिर खड़ा हुआ है। उन्होंने बड़े प्यार से कुलभूषण कृष्ण को फूलों की माला पहनाई और विशाल भाल पर तिलक कर उसे दिव्य आभूषण पहनाये। इतना करके देवकी उसकी प्रदक्षिणा करने लगी। उस समय पुत्र-मोह से उसके स्तनों से दूध झरने लगा। वह दूध कृष्ण के माथे पर पड़ा। बलदेव इत्यादि ने

यह देखकर, कि कहीं सब बातें प्रगट न हो जायें, इस डर के मारे, कहा—

इसने आज उपवास किया है, जान पड़ता है, उसकी अशक्ति के कारण यह मूर्छित हो गयी है। इतना कहकर उन्होंने एक दूध का भरा घड़ा देवकी पर डाल दिया। उससे देवकी के स्तनों से दूध झरने की बात किसी को न जान पड़ी। बड़े पुरुष पुण्य-उदय से चतुर हुआ करते हैं।

इसके बाद उन्होंने और बहुत से ग्वाल तथा कृष्ण को वस्त्र आदि प्रदान कर भोजन कराया और इसके बाद स्वयं खा-पीकर वे मथुरा को लौट आये।

कृष्ण दूज के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा। लोग उसे देखकर बड़ा प्यार करते थे। एक दिन खूब पानी बरस रहा था। गोकुल की गायें उससे बड़ी घबरा रहीं थीं। यह देखकर श्रीकृष्ण ने 'गोवर्द्धन' नामक पर्वत उठाकर उन गौओं पर उसका छाता सा बना दिया। कष्ट में फँसे हुए जीवों की रक्षा करना सत्पुरुष का काम ही है। इन सब बातों से कृष्ण की यशरूपी बेल सारे संसार-रूप मण्डप पर छाकर खूब ही फैल गई।

★ ★ ★

मथुरा में जिनमन्दिर के पास पूरब की ओर एक देवी का मन्दिर था। एक दिन कृष्ण के पुण्य से उसमें नागशय्या, शंख और धनुष ये तीन देव-रक्षित रत्न उत्पन्न हुए। उनसे डरकर कंस ने नैमित्तिक को पूछा—

इनकी उत्पत्ति भविष्य के सम्बन्ध में क्या कहती है ? सुनकर

उसी वरुण नाम के नैमित्तिक ने कहा—सुनिए महाराज! जो इस नागशय्या पर सोकर एक हाथ से बड़े जोर से शंख पूरेगा और दूसरे हाथ से धनुष चढ़ायेगा, वह आपका प्राण-हारी शत्रु है। इसमें कोई सन्देह नहीं। और वही अर्द्धचक्री जरासंघ को भी मौत के मुख में भेजेगा।

नैमित्तिक के वचनों को सुनकर दुर्बुद्धि कंस चिरकाल तक जीने की आशा से स्वयं इन तीनों बातों के करने को तैयार हुआ। परन्तु उनमें वह सफलता लाभ न कर सका। पुण्य के बिना असाध्य काम में किसी को सिद्धिलाभ नहीं होता। इस काम को न कर सकने के कारण कंस को बड़ा अपमानित होना पड़ा। अपने ऐसे बड़े शत्रु को जानने के लिए कंस ने डोंड़ी पिटवाई कि—

'जो वीर शास्त्रानुसार इन तीनों बातों को सिद्ध कर देगा, उसके साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह कर दूँगा।'

इस समाचार को सुनकर बड़ी-बड़ी दूर के राजे लोग आये। राजगृह से चक्रिपुत्र सुभानु अपने भानु नाम के पुत्र के साथ बड़े ठाठ-बाट से रवाना हुआ। रास्ते में उसने एक सरोवर पर ठहरने का विचार किया। उस सरोवर में गोदावन नाम एक महान सर्प रहता था। ग्वालों ने सुभानु से कहा—इस तालाब का पानी कृष्ण के सिवा कोई नहीं ले जा सकता है।

यह सुनकर उसने गौकुल से कृष्ण को बुलाकर वहीं पड़ाव डाल दिया। समय पाकर कृष्ण ने सुभानु से पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं? उत्तर में सुभानु ने कृष्ण से कहा—मथुरा में जिनमन्दिर के पास एक पूर्वदिग्देवी का मन्दिर है। उसमें नागसेज, धनुष और

शंख ये तीन देवता-रक्षित महारत्न उत्पन्न हुए हैं। जो वीर-शिरोमणि नागसेज पर चढ़कर एक हाथ से तो धनुष चढ़ायेगा और दूसरे हाथ से शंख पूरेगा, कंसराज उसे अपनी लड़की ब्याह देंगे।

इस काम के लिए बहुत से राजे लोग मथुरा पहुँचे हैं और मैं भी वहीं जा रहा हूँ। सुनकर कृष्ण बोला—तो प्रभो! क्या हम लोग भी इस काम को कर सकेंगे? सुभानु ने कृष्ण की अलौकिक सुन्दरता देखकर मन में विचारा—यह कोई साधारण बालक नहीं जान पड़ता। बड़ा ही पुण्यवान महात्मा है। इसके बाद उसने कृष्ण से कहा—भैया! तुम्हें भी उस कार्य में अवश्य शामिल किया जाएगा। तुम हमारे साथ चलो। यह कहकर सुभानु कृष्ण को साथ लिए मथुरा पहुँचा।

नियत समय पर राजेगण उपस्थित हुए। क्रम-क्रम से वे नागसेज पर चढ़ने आदि के लिए तत्पर हुए। परन्तु उनमें से एक भी सफल प्रयत्न नहीं हुआ।

इसके बाद कृष्ण की बारी आयी। वह सबके देखते-देखते बड़ी निर्भयता के साथ नागसेज पर चढ़ गया और धनुष चढ़ाकर शंख भी पूर दिया। उसके धनुष चढ़ाने और शंख पूरने के बिजली के समान भयंकर शब्द से पृथ्वी काँप गई। पर्वत कम्पायमान हो गए। समुद्र ने मर्यादा छोड़ दी। डर के मारे बड़े-बड़े वीरों के प्राण मुट्ठी में आ गए। प्रजा बड़ी घबरा गई। सिंह, हाथी सदृश पशु भय से इधर-उधर भागने लगे।

कृष्ण की यह वीरता देखकर किसी भावी शंका से सुभानु ने आँखों के इशारे से उसे चले जाने के लिए कह दिया। कृष्ण सुभानु

का इशारा पाकर उसी समय गोकुल को चल दिया। कुछ लोगों ने जाकर कंस से कहा—महाराज! राजगृह के राजकुमार सुभानु ने नागसेज पर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया, और शंख भी पूर दिया।

कुछ लोगों ने कहा—नहीं महाराज, यह सब काम नन्द के लड़के ने किया है। कंस यह सब सुनकर भी अपने शत्रु को न जान पाया। उसने तब यह बात चलाई कि—जिस महा साहसी ने यह काम किया है, वह किस कुल का है, किसका लड़का है, कहाँ रहता है और उसका क्या नाम है? मैं उसे अपनी लड़की ब्याहूँगा। वह जहाँ हो, उसका पता लगाया जाए।

इतना कहकर उस मूर्ख ने अपने नौकरों को सब ओर ढूँढ़ने को भेजे। सत्य है, पापियों के मन में कुछ और होता है और वचन में कुछ और ही होता है।

इधर जब नन्द को जान पड़ा कि मथुरा में कृष्ण ने नागसेज पर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया और शंख भी पूर दिया। पुत्र के इस कर्म से नन्द बड़ा घबराया। राजा के डर से वह अपनी गौओं को लेकर कहीं अन्यत्र चल दिया।

रास्ते में एक जगह कंस की आज्ञा से महल बनाया जा रहा था। वहँ एक बड़ा भारी पत्थर के खम्भे को कुछ लोग उठा रहे थे। वह बहुत ही अधिक वजनी होने से उनसे न उठ सका। यह देखकर वीर कृष्ण ने उसे बात की बात में गेंद की तरह उठा दिया।

कृष्ण की इस वीरता से लोग बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने वस्त्र वगैरह देकर कृष्ण का बड़ा मान किया। लोग पूज्यवान् का मान करें, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। कृष्ण को ऐसा महा

पराक्रमी वीर जानकर नन्द को भी बड़ी प्रसन्नता हुई।

वह मन में यह विचारकर कि ऐसे पुत्र के रहते मुझे अब कोई भय नहीं है, पीछे गोकुल लौट गये और निडर होकर सुख से रहने लगा। एक पुत्र द्वारा भी क्या पिता को सुख नहीं होता ? होता है।

कुछ दिनों बाद कंस को यह ज्ञात हो गया कि यह सब काम कृष्ण ने किया है। परन्तु फिर भी थोड़ा बहुत जो सन्देह खटकता रहता है, वह भी दूर हो जाए, इसके लिए उसने नन्द से आज्ञा की कि 'महानाग नाम सरोवर के हजार दलवाले कमलों को शीघ्र ही मंगवाओ।'

यह समाचार लेकर एक सिपाही नन्द के पास पहुँचा। सिपाही के द्वारा राजा का यह फरमान सुनकर नन्द को बड़ा खेद हुआ। उसने कहा—राजे लोग तो प्रजा के पालन करनेवाले कहे जाते हैं, परन्तु आज पाप के उदय से वे ही प्रजा के मारनेवाले हो गये। इसके बाद उसने कृष्ण से कहा—

बेटा! जाओ और महानाग सरोवर से कमल लाकर अपने राजा को दो। पिता की आज्ञा सुनकर कृष्ण ने कहा—पिताजी! यह तो कोई बड़ी बात नहीं। आप चिन्ता नहीं कीजिए। मैं अभी कमलों को ले आता हूँ। यह कहकर कृष्ण चल दिया। नागसरोवर पर जाकर वह निर्भयता से उसमें घुस गया।

पानी में कृष्ण को उतरा देखकर उसमें रहनेवाला क्रूर नाग क्रोध से फुँकार करता हुआ कृष्ण को खाने को दौड़ा। उनकी चलती हुई दो जबान को देखकर काल से भी कहीं वह भयंकर जान पड़ता था। जहर को उगलता हुआ उसका मुँह बड़ा विकराल

हो रहा था। फण पर की मणि के प्रकाश से चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया था। उसकी दोनों आँखें लाल सुर्ख हो रही थीं। उसके दाँत बड़े तीखे थे। उसकी दाढ़ बड़ी वक्र थी। देखकर यह भान होने लगा था कि प्राणों को हरनेवाला वह काल तो यह नहीं है।

ऐसे नाग को अपने सामने आता देखकर सिंह के समान प्रचण्ड बली और लक्ष्मी के होनेवाले भावी स्वामी कृष्ण ने कमर से पीला वस्त्र निकालकर और उसे पानी में भिगोकर नाग के सिर पर निर्भयता से उस वस्त्र की वज्र के समान मार मारी।

कृष्ण के पुण्य से उस मार से डरकर वह नाग किसी बिल में जाकर घुस गया। फिर बड़ी देर तक पानी में खेलकूद कर कृष्ण, कमलों को शत्रु-कुल की तरह उखाड़कर ले आया।

नन्द ने उन कमलों को कंस के पास भेज दिया। कंस उन कमलों को देखकर बड़ा दु:खी हुआ। जैसे किसी ने उसके हृदय में कील ठोंक दी है। अब उसे यह निश्चय हो गया कि नन्द का पुत्र ही मेरा शत्रु है। उसने सोचा—देखें, वह क्षुद्र मेरे आगे कहाँ तक जीता रहता है ? उस उद्धत को तो मैं बात की बात में काल के घर पहुँचा दूँगा।

इस प्रकार विचार कर कंस ने एक दिन नन्द के पास अपने सिपाही के द्वारा कहला भेजा कि 'शीघ्र ही यहाँ एक पहलवानों का बड़ा भारी दंगल होनेवाला है। उसमें तुम भी अपने पहलवानों को साथ लेकर जल्दी आना।'

दंगल का नाम सुनते ही नन्द अपने कृष्ण सरीखे महा पहलवानों को साथ लिए बड़ी निर्भीकता के साथ गोकुल से निकला। सिंह

के ऐसा जिसका बल है, उस पुत्र के रहते पिता को किसका भय ? कृष्ण और उसके साथ ग्वाल-गण काले रंग के थे। रास्ते में वे मस्त हुए शब्द करते चले जा रहे थे—जान पड़ता था काले मेघ गर्जना करते जा रहे हैं, उनमें लंगोट बाँधे हुए, चन्दनादि से चर्चित और कान्ति से जिसका शरीर चमक रहा है, वह कृष्ण वीर-लक्ष्मी का स्वामी सा जान पड़ता था।

वे सब लड़ाई की इच्छा से ताल ठोकते हुए और आकाश में उछल-कूद करते हुए निर्भयता के साथ मथुरा में आकर दाखिल हो गए। उनके परस्पर के कोलाहल को सुनकर इसी समय रुद्रघोष नामक मदमस्त हाथी खंभे को उखाड़कर भाग खड़ा हुआ। लोगों को कष्ट पहुँचाता, वह कृष्ण वगैरह के सामने दौड़ा। उस समय सिंह के समान निर्दय श्रीकृष्ण ने हाथी के सामने जाकर अपने बल से उसका एक दाँत उखाड़ लिया और फिर उसी दात से एक ऐसी जोर की हाथी के मारी कि उससे वह उसी समय भाग गया।

कृष्ण ने स्याद्वादियों द्वारा एक ही वाक्य से जीते गये कुवादियों की तरह एक ही प्रकार से उस हाथी को जीत लिया। उसकी इस वीरता से सन्तुष्ट हुए ग्वालों को कृष्ण, 'शहर में घुसते ही पहले मुझे जय मिल गई', यह कहता हुआ कंस की सभा में पहुँचा।

सभा में कंस की आज्ञा से चाणरमल्ल आदि प्रसिद्ध पहलवान लड़ने की इच्छा से पहले ही से आ चुके थे। कृष्ण को कंस की इस दुष्टता का पता पड़ गया था। इसलिए वह बड़ी सावधानी से अपने लोगों के साथ एक ओर बैठ गया।

कंस की आज्ञा पाकर जब दोनों ओर के पहलवान लड़ने को

तैयार हुए, उस समय बलदेव छल से कृष्ण को लड़ने के लिए ललकार कर अखाड़े में उतरा। कपट से कृष्ण के साथ लड़ता हुआ बलदेव कृष्ण के कान में यह कहकर, कि कंस को मारने के लिए बड़ा अच्छा समय उपस्थित हुआ है, चूकना नहीं, शीघ्र अखाड़े से बाहर हो गया।

उस समय लंगोट बाँधे हुए कृष्ण की ओर के वीर ग्वालगण कठोर ध्वनि करते हुए यम के समान जान पड़ने लगे। नाना बाजों के शब्दों के साथ रंगभूमि में वे उछलने लगे–कूदने लगे–जान पड़ा वे अपने पाँवों के आघात से पृथ्वी को नीचे की ओर दबा रहे हैं।

कृष्ण वर्ण, अत्यन्त ऊँचे और शरीर पर केसर–चन्दन लगे हुए वे वीरगण इधर–उधर घूमते हुए हाथी के समान जान पड़ते थे। आवर्ततन, निवर्तन, वल्गन, प्लवन आदि नाना प्रकार की कसरतों से बड़े उद्धत हो रहे थे।

कृष्ण सरीखे वीर नायक को पाकर मानो उन्होंने संसार के सब पहलवानों को नीचा दिखा दिया। इस प्रकार लड़ने की इच्छा कर वे तैयार खड़े हुए थे। उधर कंस की ओर के 'चाणूरमल्ल' आदि बड़े–बड़े पहलवान वीर भी अपने विरोधियों से लड़ने की गर्ज से सजे हुए तैयार खड़े थे।

उस समय उन अनेक वीर पहलवानों से सुशोभित रंगभूमि में वीर–शिरोमणि कृष्ण लंगोट बाँधकर उतरा। उस समय की उसकी शोभा देखते ही बनती थी। उसने पहले अनेक पहलवानों को हराकर विजयलाभ किया था। उसकी कमर में बँधा हुआ पीला वस्त्र एक सुन्दर भूषण सा जान पड़ता था। अपने चमकते दिव्य तेज से वह दूसरा सूरज सा था।

उसका शरीर वज्रसरीखा और बड़ा उन्नत था। उछलता हुआ और नीचे गिरता हुआ वह बिजली गिरने के समान दिखाई देता था। सिंहनाद करता हुआ, वह ठीक सिंह सा भासता था। क्रोधरूपी अग्नि से वह जल रहा था।

अखाड़े में उतरकर कृष्ण ने चाणूरमल्ल को लड़ने के लिए ललकारा। कृष्ण की ललकार सुनते ही वह अखाड़े में उतरा। सामने आते ही कृष्ण ने उसे, हाथी को उठाये हुए सिंह की तरह उठाकर बड़े जोर से जमीन पर दे मारा और देखते-देखते उसे आटे की तरह पीस दिया। बेचारा उसी समय काल के घर पहुँच गया।

अपने मल्ल को मरा देखकर कंस के क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। मौत की प्रेरणा से वह स्वयं तब कृष्ण को मारने को उठा। उसे सामने आता हुआ देखकर महाबली कृष्ण ने एक कांसे के बर्तन की तरह उसकी टांग पकड़कर क्रोध से उसे खूब आकाश में घुमाया—मानो वह उसकी यम के लिए बलि दे रहा है।

इसके बाद कृष्ण ने उसे ऐसा जमीन पर पटका कि वह उसी समय मर गया। बात की बात में कृष्ण ने कंस को मार डाला। राग-द्वेष कर कौन जन नष्ट नहीं हो जाता? इसलिए हे भव्यजनों! राग-द्वेष को दूर ही से छोड़कर सुख देनेवाले जिनप्रणीत धर्म में अपनी बुद्धि को लगाओ।

कृष्ण की वीरता से देवता लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कृष्ण का जय-जयकार कर उस पर फूलों की वर्षा की। उस समय आनन्द से फूले हुए बलदेव ने भी कृष्ण की जयध्वनि कर बड़े प्यार से सबके देखते हुए कृष्ण को छाती से लगा लिया।

वसुदेव ने तब मौका पाकर सब राज-गण के बीच में खड़े होकर कहा—राजगण! जिस वीर-शिरोमणि ने अपनी वीरता से आप लोगों को आश्चर्य में डाला है, वह शूरवीर कृष्ण मेरा पुत्र है। पृथ्वी से उत्पन्न हुए रत्न की तरह मेरी प्रिया देवकी से इस नर-रत्न की उत्पत्ति हुई है। शत्रु के भय से इसका लालन-पालन बड़ी गुप्त रीति से गोकुल निवासी नन्द ग्वाल के घर हुआ है। यह शत्रु-कुल का नाश करनेवाला, मित्ररूपी कमलों को सूरज की तरह प्रफुल्ल करनेवाला और पृथ्वी के महा भार को उठा लेने में एक श्रेष्ठ बैल के समान है।

इस प्रकार सब राजाओं को कृष्ण का परिचय कराकर वसुदेव ने उसे स्वीकार किया। इस मनोहर सम्बन्ध को सुनकर सब राजगण ने वसुदेव और कृष्ण को बड़ी भक्ति से नमस्कार किया और उत्तम-उत्तम वस्त्र, आभूषण, आदि से उनका सम्मान किया। पुण्यवान का आदर कौन नहीं करता?

इस प्रकार अनन्त यश लाभकर महामना कृष्ण जिन-चरण-कमल-भ्रमर उग्रसेन महाराज के पास गया। बड़े मधुर शब्दों से उन्हें उसने धीरज दिया और बन्धन-मुक्त कर फिर उत्सव के साथ पीछे उन्हें मथुरा के राज्य सिंहासन पर बैठा दिया। सत्य है—सत्पुरुष कल्पवृक्ष के समान सदा परोपकार करनेवाले ही हुआ करते हैं।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने अपने पिता नन्द तथा अन्य ग्वालगण को वस्त्र, धन-दौलत आदि देकर उनका सत्कार किया। उनके दरिद्रता आदि कष्ट को दूर किया। प्रिय और मधुर वचनों से पिता को उसने मंगलवाद दिया कि 'जब तक मैं सब शत्रुओं का जड़मूल से

नाश न कर दूँ, तब तक मेरा हित करनेवाले आप लोग सुख से रहें।'

इस प्रकार उनका खूब आदर-सत्कार कर कृष्ण ने उन्हें विदा किया। सत्पुरुष बिना कारण ही जब परोपकार करते हैं, तब जिन्होंने उनका जन्म से लालन-पालन किया है, उन्हें वे कैसे भूल सकते हैं ?

इसके बाद कृष्ण अपने पिता वसुदेव, भाई बलदेव तथा और-और प्रिय बन्धुओं के साथ बड़े ठाठ से शौरीपुर के लिए रवाना हुआ। बन्दीजन उसका यश गाते हुए जा रहे थे। उसके चारों ओर सेना चल रही थी। कृष्ण के आगमन समाचार सुनकर प्रजा ने सौरीपुर को खूब सजाया। घर-घर पर धुजाएँ टांगी गईं। सारे शहर में आनन्द-उत्सव होने लगे। कृष्ण ने पहुँचकर समुद्रविजय आदि गुरुजन को बड़ी भक्ति से नमस्कार किया।

अब कृष्ण बड़े सुख से रहने लगा। उत्सव-आनन्द के साथ उसके दिन बीतने लगे। जिनप्रणीत शुभकर्म द्वारा उत्पन्न किया गया थोड़ा भी पुण्य जब अनन्त सुख को देता है, तब जो मन-वचन-काय से निरन्तर शुभ कर्म करते हैं, उनके सुख का तो क्या ठिकाना है ?

देवगण जिनके चरणों को पूजते हैं, जो भव्यजनों को मनचाही वस्तु देनेवाले और संसार-सागर से पार करने में जो जहाज के समान हैं; जो बाल ब्रह्मचारी और जिनकी महिमा जगविख्यात हैं, वे श्रेष्ठ केवलज्ञान से प्रकाशित त्रिजगद्गुरु 'नेमिजिन' सत्पुरुषों को मनोवांछित दो।

इति पंचमः सर्गः।

छठा अध्याय
जरासंध की मृत्यु और नेमिजिन का गर्भावतरण

नेमिजिन को नमस्कार कर उनका चरित्र जिस प्रकार हुआ और उसे गणधर ने जैसा कहा, उसी के अनुसार मैं भी कहता हूँ। बुद्धिवान जन उसे सावधान होकर सुनें।

कंस के मर जाने से जीवयंशा को दावानल से घबराई हुई हिरणी की तरह बड़ा ही दु:ख हुआ, वह सब अलंकारों को फैंककर कुकवि के मुँह से निकली हुई कथा की तरह घर से निकल गयी। रास्ते में वह गिरती-पड़ती अपने पिता जरासंध के पास पहुँची। उसे देखकर वह रोने लगी। उसे इस प्रकार दु:खी देखकर जरासंघ ने कहा—बेटी! तू ऐसी दु:खी क्यों है? बतला, तुझे दु:ख देनेवाला कौन है?

जीवयंशा बोली—पिताजी! सुनिए। मैं सब हाल आपसे कहती हूँ। वसुदेव का एक कृष्ण नाम का लड़का है। वह बड़ा बलवान है। जन्म से उसका लालन-पालन बड़ी छुपी रीति से नन्द के यहाँ हुआ है। पिताजी! बचपन में ही उस काल के समान भयंकर मूर्ति ने पूतना नामक देवी के स्तनों को निर्दयता से काटकर उसे भगा दिया। शकट का रूप धारण करनेवाली दूसरी देवी को अपने पाँवों से उछालकर हरा दिया। मायामयी वृक्ष का रूप धारण करनेवाली देवी को उसने जड़ से उखाड़ फैंक दिया। गधी नाम देवी को उसने पाँवों के नीचे दबाकर मसल दिया। दो देवियाँ उसकी चंचलता देखकर डरकर भाग गईं। उसने दो बड़े-बड़े

बैलों की गर्दन मरोड़कर उन्हें जीत लिया। पानी की बरसात से अत्यन्त घबराई हुई गौओं की उसने स्वयं उठाये हुए गोवर्द्धन पर्वत को उन पर छत्रीसा खड़ा कर रक्षा कर ली। उसने नाग-सेज पर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया और शंख भी पूर दिया।

उसके शब्द से भूतल चल-विचल हो गया। जिसने अपनी बलवान भुजाओं से एक बड़े भारी खम्भे को सहज में उठाकर शूरवीरों द्वारा वस्त्र, आभूषण वगैरह लाभकर बड़ा भारी मान पाया; जिसने काल के सदृश बड़े भारी नाग को जीतकर नाग-सरोवर से सहस्त्रदल कमल प्राप्त किये, जिसने चाणूरमल्ल सरीखे भारी पहलवान को मौत के मुख में फैंक दिया; उस बलवान यादव-वंश की कीर्ति फैलानेवाले कृष्ण ने, सिंह जैसे हाथी को मार डालता है, उसी तरह आपके जमाई को रणभूमि में मार डाला है।

अपनी पुत्री द्वारा यह सब हाल सुनकर, जरासंध क्रोधरूपी आग से तप गया। उसने उसी समय अपने पुत्रों को बुलाकर यादवों पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। पिता की आज्ञा पाकर उसके मदमस्त पुत्रों ने जाकर सौरीपुर को चारों ओर से घेर लिया।

इधर कृष्ण की ओर से समुद्रविजय आदि वीर योद्धा भी वीरश्री से विभूषित होकर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-सेना को लेकर मथुरा के बाहर निकले। दोनों सेना में बड़ा देर तक घनघोर युद्ध हुआ। कितने ही मर-कट गये। कितने कण्ठगत प्राण हो गये। जो शूरवीर थे, उन्होंने अपनी वीरता मरते दम तक बतलाई और जो कायर-डरपोक थे, वे युद्धभूमि को छोड़कर भाग गये।

इस घोर युद्ध में कृष्ण ने अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं को मार

भगाकर जयश्री लाभ की। इस युद्ध में मारे गये वीर जो जिन भगवान के सेवक थे, वे तो संन्यास धारण कर स्वर्ग में गये और कितने दुर्बुद्धि आर्त-रौद्रध्यान से रण में जन-संहार कर पाप के उदय से दुर्गति में गये। युद्ध में हारकर जरासंध के लड़के सिंह के शब्द से भागे हुए हाथी की तरह भाग गये।

अपने पुत्रों को इस प्रकार अपमानित होकर आये हुए देखकर अबकी बार जरासंध ने अपने अपराजित नाम पुत्र को लड़ने के लिए भेजा। क्रोध से लाल आँखें किए हुए अपराजित ने जल्दी से सौरीपुर पहुँचकर उसे घेर लिया। उसने अबकी बार समुद्रविजय आदि यादववंशीय बड़े-बड़े राजाओं के साथ कोई ३४६ लड़ाईयाँ लड़ीं, पर तब भी उसे विजय न मिली।

उसे भी आखिर युद्धभूमि से अपमानित होकर भाग जाना पड़ा। पुण्यहीनों को लक्ष्मी और जय कहाँ? इसलिए बुद्धिमानों को पुण्य के कारण जिनप्रणीत दान, पूजा, व्रत, उपवास आदि शुभकर्म कर पुण्य का संचय करना चाहिए।

अपराजित को भी असफलता प्राप्त किए हुए लौटा देखकर जरासंध ने अबकी बार काल के समान कालयवन नाम के पुत्र को लड़ाई पर भेजा। पिता की आज्ञा पाकर कालयवन क्रोध से लाल आँखें करता हुआ बड़ी भारी सेना के साथ यादवों से लड़ने को चला। जासूस द्वारा यह समाचार पाकर यादवराजाओं ने इस विषय पर विचार करने के लिए अपने मन्त्रियों की एक सभा बुलाई। उसमें मन्त्रियों ने कहा—

महाराज! बलवानों के साथ विरोध हो जाने पर दो तरह से

शांति हो सकती है या तो शत्रुओं की शरण चले जाना या देश त्याग देना। इसमें पहली बात का प्रतिकार हो सकता है, परन्तु उसके लिए हमारे पास उचित साधन नहीं है। इसलिए हमें तो इस हालत में देशत्याग ही उचित जान पड़ता है। अपना कृष्ण भी अभी बालक है—युद्ध करने में समर्थ नहीं है। इसलिए यह लड़ाई लड़ने का समय नहीं।

इस प्रकार उन अनुभवी मन्त्रियों के वचनों को सुनकर समुद्रविजय वगैरह ने विचार किया। उन्हें मन्त्रियों का ही कहना उपयुक्त जान पड़ा। राजे लोग मन्त्रियों के बताये मार्ग पर चलते ही हैं। कृष्ण ने जब मन्त्रियों की यह सलाह सुनी, तब उस वीर-शिरोमणि ने उनसे कहा—

हे देव! हे मथुराधीश!! मैं जरूर बालक हूँ, परन्तु तो भी समर्थ हूँ। बहुत कहने से लाभ क्या? परन्तु आप मुझे छोड़कर देख लीजिए कि मैं अकेला ही चन्द्रमा के समान शत्रुरूपी अन्धकार का नाश कर डालता हूँ या नहीं? आपकी चरण-कृपा से मैं कार्य करने में बालक नहीं हूँ।

इस प्रकार बोलता हुआ कृष्ण- (ऐसा) जान पड़ा (मानो) वह शत्रुरूपी हाथियों के सामने सिंह के समान गर्जना कर रहा है। उसी समय बलदेव ने कृष्ण से कहा—इसमें कोई शक नहीं कि तू शत्रुओं के नाश करने में समर्थ है। इस समय त्रिलोक में तेरे समान दूसरा मनुष्य नहीं है। किन्तु मेरे हितकारी वचन सुन।

इस समय सिंह सदृश तुझे शत्रुओं पर शान्ति ही धारण करना चाहिए। इस प्रकार युक्ति से समझाकर बलदेव ने आग्रह से कृष्ण

को युद्ध करने से रोक दिया। बलवान कृष्ण को भी बलदेव ने विचलित कर दिया।

इस प्रकार निश्चय कर दूरदर्शी यादवगण सौरीपुर, हस्तिनापुर और मथुरा को छोड़कर पाण्डवों के साथ चल दिए। उनके साथ उनका सारा परिवार, वीरगण, हाथी, घोड़े, रथ, धन-दौलत, हीरा-मोती, सेना आदि सभी उपयोगी सामग्री थी। उनके इस दल-बल के साथ चलने से पृथ्वी काँप उठी। वे निकलकर जब कुछ दूर चले गए, तब कुलदेवी ने उनकी रक्षा के लिए रास्ते में आग की एक बड़ी भारी ढ़ेरी लगा दी। उसमें सैकड़ों ज्वालाऐं निकलने लगीं।

इस प्रकार यादवकुल की रक्षा का उपाय कर देवी ने दूसरी ओर मायामयी कुछ रोती हुई स्त्रियों को बैठा दिया। वे रो-रोकर शोक करने लगीं। उन स्त्रियों में स्वयं देवी भी एक बूढ़ी स्त्री का रूप लेकर बैठ गयी।

जरासंध का लड़का कालयवन क्रोधित यम की तरह यादवों पर चढ़ाई करने आया। उसे जब ज्ञात हुआ कि यादव लोग मथुरा छोड़कर चले गये, तब उसने उनका पीछा किया। वह उन रोती हुई स्त्रियों के पास पहुँचकर देखता है तो एक बड़ी भारी आग का ढ़ेर जल रहा है और कुछ स्त्रियाँ उसके आस-पास बैठी हुईं बड़े जोर-जोर से रो रही हैं।

हे यादवराज! हे सब राजाओं में श्रेष्ठ महाराज समुद्रविजय! हाय! आज तुम्हारी यह क्या कष्टदायक दशा हो गई? हे प्रजापाल स्तिमितसागर! हे हिमवन महाराज! हे विजय और अचल प्रभो! प्रजा-पालन में धीर हे धारण! और पूरण महाराज, हे अभिनन्दन

राज! हे गुणोज्ज्वल वसुदेव! हे छल कपटरहित बलदेव! हे पूतना के शत्रु कृष्ण महाराज! हे उग्रसेन महाराज! हे देवसेन राजन्! गुणरूपी रत्नों की खान पृथ्वी के समान हे महासेन! हे महीनाथ! और सारी पृथ्वी का पालन करनेवाले हे पाण्डवराज! हाय! आज आप नररत्नों की यह क्या दुखदाई हालत हो गयी? सब सुखों के देनेवाले आप लोगों को अब हम कहाँ देखेंगी? हाय आज हमारी सब आशा नष्ट हो गयी। हम बड़ी दुखिनी हो गयीं।

इस प्रकार वे स्त्रियाँ यादव-पाण्डवों का नाम ले-लेकर महा शोक कर रही थीं। कालयवन को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उसने उन स्त्रियों के पास आकर पूछा—तुम क्यों रोती हो? और कौन इस अग्नि में जल मरे हैं?

यह सुनकर वह बूढ़ी देवी बोली—चक्रवर्ती जरासंध को अपने पर क्रोधित देखकर और कोई शरण न देखकर यादव लोग अपने बाल-बच्चों सहित इस आग में गिरकर खाक हो गये। जो सत्पुरुष परोपकारी होते हैं, वे किसी न किसी प्रकार दूसरों का हित ही करते हैं। यह हाल सुनकर कालयवन ने समझा कि शत्रुगण मेरे ही डर से मौत के मुँह में पड़े हैं। वह बड़े अभिमान के साथ वापस लौटा।

पिता के पास पहुँचकर उसने कहा—देव! आपके डर के मारे सब यादवगण अपने कुटुम्ब-परिवार सहित सूखे वृक्ष की तरह आग में जलकर मर गये। जिनप्रणीत धर्म से उल्टा चलनेवाला जरासंध यह वृत्तान्त सुनकर बहुत हर्षित हुआ। दुष्ट जन दूसरों को दुःख देने में ही प्रसन्न होते हैं।

इधर यादवगण, सेना और राज-ठाट-बाट सहित चलते हुए कुछ दिनों में समुद्र के सुन्दर किनारे पर पहुँचे। कृष्ण ने देखा कि समुद्र अपने निर्घोषरूपी शब्द द्वारा पुकार कर कल्लोलरूपी हाथों के इशारे से हम लोगों को बुला रहा है और कहता है—हे मनुष्यरूपधारी देवताओ! हे समुद्रविजय महाराज! आओ और मेरे सुख देनेवाले किनारे पर ठहरो। आप लोग तो पुण्य के साधन हैं।

इसके बाद यादव-कुल-भूषण समुद्रविजय की आज्ञा से उस लम्बे-चौड़े, सत्पुरुषों के मन के समान निर्मल और नाना प्रकार के सुन्दर फल-फूलों से शोभा धारण किए हुए वृक्षों से युक्त, समुद्र के किनारे पर पड़ाव डाल दिया गया। राजा लोगों के बड़े-बड़े ऊँचे पंचरंगी डेरे वहाँ तान दिए गये। उन पर धुजाएँ फहराने लगीं। उनमें जो सफेद डेरे थे, वे ऐसे जान पड़ते थे—मानों उन राजाओं के यश के ढ़ेर हैं।

समुद्रविजय आदि यादव कुछ दिन उस समुद्र-किनारे पर रहकर किसी दुर्गम गढ़ इत्यादि स्थान की खोज में लगे। यहाँ रहते इन्हें कुछ दिन बीत गये। एक दिन विचार कर समुद्रविजय ने कृष्ण से कहा—बेटा! तुम बड़े पुण्यवान हो। तुम जिस वस्तु की मन में इच्छा करते हो, वह तुम्हें उसी समय प्राप्त हो जाती है। तब तुम ऐसा कोई उपाय करो न, जिससे समुद्र अपने को रास्ता दे दे। कृष्ण ने यादवेश्वर समुद्रविजय को नमस्कार कर 'तथास्तु' कहा।

इसके बाद वह आठ उपवास की प्रतिज्ञा लेकर दर्भासन पर विधिपूर्वक मन्त्र जपने लगा। उसके पुण्य से रात में एक नैगम नामक देव घोड़े का रूप लेकर कृष्ण के पास आया और बोला—

प्रभो! सब सम्पदा के देनेवाले जिन भगवान को नमस्कार कर आप मेरी सुखदाई पीठ पर बैठकर चलिए। आपके पुण्य से तब समुद्र में बारह योजन-प्रमाण एक सुन्दर शहर बस जाएगा। इतना सुनकर वीर-शिरोमणि कृष्ण आनन्द से उठा और नाना बाजों के शब्द तथा जय-जयकार के साथ उस रत्नमय खोगीर और ढुरते हुए चंवर से सुन्दर शोभा धारण किए हुए घोड़े पर सवार होकर चला।

उस दिव्य घोड़े पर बैठा हुआ कृष्ण ऐसा जान पड़ा मानो नाना प्रकार के आभूषणों को पहने लक्ष्मी का भावी 'वर' जा रहा है। नाना प्रकार के बाजों की ध्वनि के साथ उस देवमयी घोड़े ने समुद्र में प्रवेश किया। समुद्र में बड़ी ऊँची-ऊँची अनन्त लहरें उठने लगीं। उनसे जल के हाथी घबरा गये। आकाश में चाँद-तारे न दिखाई पड़ने लगे। महान शब्द होने लगा।

कृष्ण के पुण्य से इतना विशाल समुद्र उसी समय दो भागों में बँट गया। यादवों के जाने को उसमें रास्ता हो गया। उस रास्ते में वह दिव्य अश्व इस तरह जाने लगा, जैसे पृथ्वी पर आराम के साथ लोग चला करते हैं। उस घोड़े के पीछे-पीछे यादवों का सारा सैन्य भी बड़े आनन्द और निर्विघ्नता से चला।

उस समय भावी तीर्थंकर 'श्रीनेमिजिन' और कृष्ण के पुण्य से सौधर्मस्वर्ग के इन्द्र ने कोई खास चिह्नों द्वारा जग-हितकारी जिन-भगवान का पवित्र आगमन जानकर कुबेर से कहा—कुबेर, यक्षेश! सुनो-प्रसिद्ध जम्बुद्वीप के पवित्र और श्रेष्ठ सम्पदा से भरे-पूरे भारतवर्ष में जो समुद्र का एक छोटा हिस्सा है उसमें,

हरिवंश-शिरोमणि, दानी, उदार और विचारवान् समुद्रविजय महाराज सकुटुम्ब-परिवार आये हुए हैं। उनकी रानी महासती शिवदेवी बड़ी सुन्दरी, भाग्यवती, पुण्यवती और सरस्वती की तरह विदुषी हैं। छह महीने बाद उसके गर्भ में जगत के स्वामी भावी तीर्थंकर श्री नेमिजिन वैजयन्त विमान से आयेंगे। उनके जन्म से सारे संसार में आनन्द-सुख बढ़ेगा। इसलिए तुम जल्दी से उस समुद्र पर, जिसने स्वयं रास्ता देकर उन महापुरुषों का आदर किया है, जाओ और उनके लिए वहाँ एक पुरी बनाओ, जिसे देखकर संसार आश्चर्य करने लगे और वह भव्य जनों को जन्म देनेवाली तथा लोगों को शान्ति देनेवाली हो।

इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने 'तथास्तु' कहा—

इसके बाद वह कुछ देवों को साथ लेकर उस समुद्र पर आया।

कुबेर ने पहले ही काँच का जिसका तल है ऐसी बड़ी चौड़ी और निर्मल पृथ्वी बनाई। इसके बाद उसने एक हजार शिखरोंवाला, बड़ा ऊँचा सोने का जिनमन्दिर बनाया। उस पर सुन्दर ध्वजाएँ लगाईं। भव्यजनों के मन को प्रसन्न करनेवाले और संसार भ्रमण हरनेवाले उस मन्दिर में कुबेर ने स्वर्ग-मोक्ष की कारण जिनप्रतिमाएँ विराजमान कीं।

इतना करके उसने बारह योजन-प्रमाण परम-पवित्र द्वारिका नामक पुरी रची। जिस पुरी को जिनभक्ति के वश हो कुबेर ने रचा, उस पुरी का मुझ सरीखे तुच्छ कैसे वर्णन कर सकते हैं? गढ़, कोट, खाई, दरवाजे और घर-घर टांगे गये तोरणों से वह पुरी

स्वर्ग को भी हंस रही थी। उसकी चारों दिशा में जो सरोवर, वावड़ियाँ, बाग आदि बनाये गये थे, उनमें देव-देवांगना आकर क्रीड़ा-विनोद किया करते थे।

उसमें ऊँचे सुन्दर और नाना फलों से सुन्दरता धारण किए हुए वृक्ष कल्पवृक्ष सदृश जान पड़ते थे। उसमें निर्मल जल के भरे तालाब ऐसे ज्ञात होते थे मानो जहाँ-तहाँ भव्यजनों के पुण्यों की खानें हैं। द्वारिका के ठीक बीच में बड़ा ऊँचा और जिसमें नाना प्रकार के रत्न, मोती, माणिक आदि जवाहरात द्वारा पच्चीकारी का काम हो रहा है, ऐसा राजमहल बनाया गया था।

इस राजमहल से लगाकर बड़ी ऊँची सात सात मंजिलवाली घरों की श्रेणियाँ बनायी गयीं थीं। उन सबमें भी रत्नों का काम बना हुआ था। वे पंचरंगी ध्वजाओं और तोरणों से ऐसी शोभित होती थी—मानों लोगों के पुण्य से देवों को बुला रही हैं। उनके रत्नमयी आँगन में केशर का तो कीचड़ था, कपूर की रज धूल थी और चन्द्रकान्तमणि से बहा पानी था।

वहाँ के बाजार कपूर, अगुरु, केशर, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं से सदा भरे रहते थे। अच्छे-अच्छे रेशमी वस्त्र और दिव्य मोती-माणिक आदि जवाहरात से वे सदा लोगों के मन को खुश करते थे। द्वारिका सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तुओं से युक्त चौराहों से पुण्यवान पुरुषों को सब सुखों की खान जान पड़ती थी। इत्यादि श्रेष्ठ ऐश्वर्य-वैभव से द्वारिका युक्त थी।

उसमें जिनप्रणीत धर्म-कर्म में तत्पर और चित्त प्रसन्न करनेवाले सत्पुरुष थे और सुन्दर वस्त्राभूषण पहनकर लोगों के मन को

हरनेवाली, शीलवती पवित्र स्त्रियाँ थीं। परम सुख देनेवाली इस पुरी में यादवेश्वर समुद्रविजय ने अपने वीर स्तिमितसागर आदि भाई, निष्कपट बलदेव, बुद्धिमान तथा शत्रुओं का नाश करनेवाले कृष्ण और अन्य यादवगण आदि बन्धु-बान्धवों के साथ बड़े गाजे-बाजे और चारण लोगों द्वारा किये गये जय-जयकार को सुनते हुए प्रवेश किया।

वे वहाँ सुख से रहने लगे। पुण्य से उन्हें सब मनचाही वस्तुएँ प्राप्त हुईं। उनका वे परम आनन्द से उपभोग करने लगे।

इसके बाद काश्यप-गोत्र में जन्मे हुए, हरिवंश-शिरोमणि इन समुद्रविजय महाराज की गुणवती रानी शिवदेवी के महल पर प्रतिदिन रत्नों की वर्षा कर कुबेर बड़ी भक्ति से उसकी पूजा-आदर-सत्कार करने लगा। जो भावी तीर्थंकर की माता होनेवाली है, उसे कौन न पूजेगा ? शिवदेवी के आँगन में जो रत्नवर्षा होती थी—जान पड़ता था कि होनेवाले पुत्र के पुण्यों की वह सुख देनेवाली वर्षा है।

इसी समय अपना कर्तव्य पूरा करने को श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी तथा और भी बहुत सी देवियाँ शिवदेवी के गर्भ-शोधन आदि क्रियाएँ करने निमित्त आयीं। बड़े प्रेम और भक्ति से उन्होंने जगदम्बा शिवदेवी की सेवा की। इस प्रकार छह महीने तक वे देवियाँ शिवदेवी की सेवा करती रहीं।

कार्तिक सुदी छट-उत्तराषाढ़-नक्षत्र की रात को गुणोज्ज्वला शिवदेवी अपने महल में रत्न के पलंग पर सोई हुई थीं। समय प्रायः रात का अन्तिम भाग था। उस समय उसने कोई सोलह स्वप्न देखे। वे सब स्वप्न यहाँ भी लिखे जाते हैं—

पहले स्वप्न में उसने जिससे मद झरता है, ऐसे कैलास के समान सफेद ऐरावत हाथी को; दूसरे में तीखे सींगों से पृथ्वी को खोदते हुए और सुन्दर शब्द करते हुए श्रेष्ठ बैल को; तीसरे में आकाश में उछलते हुए, सुन्दर कान्ति के धारण करनेवाले और गर्जना करते हुए अतीव सफेद मेघ के समान जान पड़नेवाले बड़े भारी सिंह को और चौथे में निर्मल पानी के भरे हुए सोने के घड़ों से नहाती हुई लक्ष्मी को देखा।

पाँचवें में आकाश में लटकती हुई और भ्रमर जिन पर गूँज रहे हैं, ऐसी दो कल्पवृक्षों के फूलों की मालाओं को; छठे में अपनी कान्ति से जगत में उत्तमत्ता का मान पाये हुए और सबका हित करनेवाले सुपुत्र की तरह सारे संसार को प्रकाशित करनेवाले कलापूर्ण चन्द्रमा को; सातवें में अपनी किरणों से विश्व को प्रकाश करनेवाले और स्याद्वादी विद्वान की तरह मिथ्यान्धकार को नाश करनेवाले सूरज को और आठवें में निर्मल पानी में विलास करती हुई दो मछलियों को उस महादेवी शिवदेवी ने देखा।

नवमें में जिन पर केसर-चन्दन लगा है और मुँह पर एक-एक सुन्दर कमल रखा हुआ है, ऐसे घर में आई हुई निधि की तरह दो भरे घड़ों को; दसवें में बहुत बड़े, निर्मल पानी के भरे हुए सत्पुरुषों के मन के समान पवित्र सरोवर को; ग्यारहवें में चमकते हुए रत्नों से पूर्ण, शब्द करते हुए और अपनी लहरों से मुनि की तरह मल को साफ करनेवाले समुद्र को, और बारहवें में सोने के बने हुए और जिस पर नाना प्रकार रत्नों की पच्चीकारी का काम हो रहा है, ऐसे मेरु के श्रेष्ठ शिखर के समान ऊँचे सिंहासन को देखा।

तेरहवें में रत्नों से जड़े हुए और मोतियों की मालायें जिस पर लटक रही हैं, ऐसे देव-देवांगनाओं में शोभित इन्द्र के स्वर्गीय विमान को; चौदहवें में पृथ्वी को चीरकर निकले हुए और धरणेन्द्र वगैरह से युक्त धरणेन्द्र के आते हुए उन्नत, सुन्दर भवन को; पन्द्रहवें में जिसकी उज्ज्वल कान्ति की शिखाऐं सब ओर फैल रही हैं और दिशारूपी स्त्रियों के मुख-कमल को प्रसन्न करनेवालीं पंचरंग रत्न-राशि को तथा सोलहवें में जिसमें सैकड़ों ज्वालाऐं निकल रही हैं, अतएव जो कर्म-शत्रुओं के नाश करनेवाले भावी पुत्र के प्रताप के समान जान पड़ती हैं, ऐसी अग्नि को देखा।

इस प्रकार इन सोलह स्वप्नों को देखने के बाद अन्त में शिवदेवी ने अपने मुँह में प्रवेश करते हुए हाथी को देखा। उसी समय जयन्त-विमान के अहमिन्द्र ने, जिसका वर्णन पहले आ गया है, माता शिवदेवी के कमल समान कोमल गर्भ में प्रवेश किया। त्रिलोक पर कृपा करनेवाले भगवान सब प्रकार के कष्टरहित सुख से गर्भ में स्थित रहे।

प्रात:काल हुआ। चारण लोग जय-जयकार करने लगे। प्रात: काल के बाजे बजना आरम्भ हुए। शिवदेवी जागृत हुईं। प्रसन्नता के साथ उठकर शौच-मुखमार्जन के बाद उसने मंगल स्नान किया। दिव्य वस्त्राभरण पहने। केशर-चन्दन लगाया। फूलों की माला पहनी। इसके बाद वह अपने ऊपर चंवर ढोरती हुई दासियों से मण्डित होकर महाराज के पास गयी।

महाराज सिंहासन पर विराजे हुए थे। राजगण उनकी सेवा में लगे हुए थे। खिले हुए कमल-समान प्रसन्न मुँह शिवदेवी महाराज को नमस्कार कर उनके दिये आधे सिंहासन पर बैठ गयीं।

इसके बाद उसने रात में जो स्वप्न देखे थे, उन सबको महाराज से कहकर कहा—प्राणेश्वर! रात के अन्तिम समय में मैंने इन स्वप्नों को देखा है, कृपाकर आप इनका फल कहिए।

यह सुनकर आगम के ज्ञाता, बुद्धिमान समुद्रविजय महाराज मन में कुछ विचारकर बोले—अच्छा प्रिये! इन स्वप्नों का फल मैं तुम्हें कहता हूँ, उसे सुनो—

हाथी के देखने का फल यह है कि तुम्हारा पुत्र सर्वोत्तम ज्ञानी, तीर्थंकर होगा। उसकी स्वर्ग के देवगण पूजा करेंगे। बैल को देखने का फल यह है कि वह संसार में सबसे श्रेष्ठ होगा, जगत का ज्ञान देनेवाला गुरु होगा और उसे संसार के सभी बड़े लोग पूजेंगे।

सिंह के देखने का फल यह है कि वह अनन्तशक्ति का धारक होगा। बल में उसके समान अब तक न कोई हुआ है और न होगा। लक्ष्मी के देखने का फल यह है कि वह बड़ा महिमाशाली होगा। उसके जन्म लेते ही स्वर्ग के देवगण मेरु पर्वत पर ले जाकर उसका महान अभिषेकोत्सव करेंगे। फूलों की माला देखने का फल यह है कि धर्मतीर्थ के प्रचार से उसकी उज्ज्वल कीर्तिरूपी बेल बहुत फैल जाएगी।

पूर्ण चन्द्रमा के देखने का फल यह है कि वह चन्द्रमा के समान संसार को आह्लादित करनेवाला और शान्ति का कर्ता होगा। सूरज के देखने का फल यह है कि वह कोटि सूर्य के समान प्रभाववाला और लोगों को प्रिय होगा। जल में सुख से क्रीड़ा करते हुए मछली युगल को देखने का फल यह है कि वह सदा उत्तम-उत्तम सुखों का भोगनेवाला होगा।

पूर्ण कुम्भ के देखने का फल यह है कि वह बड़े भारी धन-वैभव का स्वामी होगा। सरोवर के देखने का फल यह है कि वह एक हजार आठ श्रेष्ठ लक्षणों का धारी होगा। लहराते हुए समुद्र के देखने का फल यह है कि वह लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञानी होगा। सिंहासन के देखने का फल यह है कि वह त्रिलोक—साम्राज्य की लक्ष्मी का भोगनेवाला और जगत का हितकारी होगा। देव-विमान के देखने का फल यह है कि वह स्वर्ग से आयेगा और बड़ा सुन्दर तथा पुण्य से लोगों का मनोरंजन करनेवाला होगा।

नाग-भवन के देखने का फल यह है कि वह गर्भ में ही तीन ज्ञान का धारक और त्रिलोकशिरोमणि होगा। रत्न-राशि के देखने का फल यह है कि वह श्रेष्ठ गुणों का धारी होगा। अग्नि के देखने का फल यह है कि वह तपरूपी आग से कर्मरूपी ईंधन को भस्म कर मोक्ष में जाएगा।

मुँह में प्रवेश करते हुए हाथी के देखने का फल यह है कि वह अहमिन्द्र स्वर्ग से आकर तुम्हारे पवित्र, कोमल और निर्मल गर्भ में ठहरा है।

स्वामी द्वारा इस प्रकार स्वप्न का फल सुनकर महारानी शिवदेवी बहुत सन्तुष्ट हुईं।

इसी समय अपने-अपने चिह्नों को धारण किये हुए स्वर्ग से देवगण आ गये। उन्होंने शिवदेवीसहित समुद्रविजय महाराज को रत्नमयी सिंहासन पर बैठाकर देव, विद्याधर, राजे, महाराजे, और देवांगनाओं के साथ तीर्थ के जल से भरे हुए, सोने-रत्नों के कलशों से बड़ी भक्तिपूर्वक उनका अभिषेकोत्सव किया और श्रेष्ठ वस्त्राभूषण भेंटकर उनकी स्तुति की—

महाराज ! आप त्रिलोक के पिता के भी पिता हैं, अतएव बड़े पवित्र हैं। आप निर्मल गुणरूपी रत्नों के समुद्र हैं। प्रभो ! आपके समान इस लोक में दूसरा कोई नहीं है, कारण आपके पुत्र भावी तीर्थंकर और तीन जगत के महान गुरु हैं। सब पर्वतों में सुमेरु पर्वत और समुद्रों में क्षीरसमुद्र जैसे महान और प्रसिद्ध हैं, उसी तरह हे समुद्रविजय महाराज ! हे देव ! आप सब क्षत्रिय राजाओं में तिलक समान हैं और हे माँ शिवदेवी ! संसार की सच्ची माता आप ही हैं। कारण आप जिस पुत्र को पैदा करेंगी, वह जगत का हितकर्ता और संसार-समुद्र का पार करनेवाला होगा। हे शुभानने ! जैसे मोती सीप से पैदा होता है, उसी तरह आपसे तीर्थंकर जिन उत्पन्न होंगे।

इस प्रकार उन देवताओं ने उनकी स्तुति कर नृत्य किया, उन्हें प्रणाम किया। इस तरह वे जिन भगवान की गर्भावतार क्रिया समाप्त करके पुण्य प्राप्त कर बड़े आनन्द के साथ अपने-अपने लोक को चले गए।

कुबेर इसके बाद भी नौ महीने तक शिवदेवी के यहाँ रत्नवर्षा करता रहा। इसके सिवा इन्द्र की आज्ञा से स्वर्ग की देवियाँ सोलहों शृंगार किये जगन्माता शिवदेवी की सेवा करती रहीं। जिनका जो जो नियोग था-जिनके जिम्मे जो काम था, उन्हें वे बड़े प्यार से कराती थीं।

कितनी देवियाँ शिवदेवी को पवित्र जल से स्नान कराती थीं; कितनी उसके पाँवों को धोया करती थीं; कितनी उसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनाती थीं; कितनी सुगन्धित केसर-चन्दन का उसके लेप करती थीं; कितनी उसे अच्छे-अच्छे बहुमूल्य आभूषण

पहनाकर शृंगारती थीं; कितनी उसे भोजन कराती थीं; कितनी उसे बड़े प्रेम से पान वगैरह देती थीं; कितनी उसकी सेज बिछा देती थीं; कितनी उसके बैठने को आसन वगैरह ला दिया करती थीं— जैसी-जैसी शिवदेवी की इच्छा होती थी, उसे जानकर वे उसी प्रकार की वस्तु उनके लिए ले आती थीं।

कोई उसे काँच दिखाती थी, कोई उस पर छत्र किए खड़ी रहती थी, कोई आनन्द के साथ कथा-वार्ता कहकर उसके चित्त को खुश करती थी और कोई उसे हँसी-दिल्लगी में उलझाये रहती थी।

इस प्रकार सदा वे देवियाँ गुण-रत्नों की खान सुन्दरी शिवदेवी की बड़े प्रेम और भक्ति से आराधना करती थीं। निर्मल काँच में पड़े हुए प्रतिबिम्ब की तरह भगवान को गर्भ में रहने से माता शिवदेवी को कोई कष्ट न हुआ। स्फटिक-बिल्लौर के भवन में रखी हुई कपूर की राशि की तरह भगवान माता के गर्भ में मणि के समान बड़े सुख से रहे।

भगवानतीर्थंकर नामकर्म के प्रभाव से गर्भ में ही तीन ज्ञान के धारक थे, बड़े महिमाशाली थे और पवित्रता की एक मूर्ति थे। इस प्रकार पुण्य से शिवदेवी के गर्भ में भगवान नौ महीने तक सुखपूर्वक रहे।

जिनके गर्भ में स्थित रहते इन्द्रों ने देवताओं के साथ आकर निरन्तर सोने और रत्नों की वर्षा की, जिनके माता-पिता को अमृत से स्नान कराया और श्रेष्ठ वस्त्राभरण भेंटकर जिनका मान बढ़ाया वे नेमिजिन रक्षा करें।

इति षष्ठः सर्गः।

सातवाँ अध्याय

देवों द्वारा नेमिनाथजिन का जन्म-महोत्सव

शुद्ध रत्न-भूमि जैसे सुन्दर रत्न को उत्पन्न करती है, उसी तरह शिवदेवी ने श्रावण सुदी छठ को चित्रा नक्षत्र में तीन ज्ञान विराजमान, परमानन्दमय-मोक्ष के देनेवाले और श्रेष्ठ गुणों की खान पवित्र नेमिनाथजिन को उत्पन्न किया। कवि की बुद्धि जैसे सब लक्षणों से युक्त श्रेष्ठ काव्य को जन्म देती है, उसी तरह शिवदेवी ने इन श्रेष्ठ लक्षणों के धारक नेमिजिन को जन्म दिया।

भगवान का दिव्य शरीर सब लक्षणों और व्यंजनों-प्रगट चिह्नों से युक्त था-जान पड़ता था, जैसे देवताओं ने भक्तिवश हो उस सुन्दर शरीर की फूलों से पूजा की है। भगवान के जन्म से त्रिभुवन में एकाएक आनन्द छा गया। लोगों को वाणी से न कहा जानेवाला सुख हुआ। सुखरूप 'तीर्थंकर' नाम पुण्य-वायु से देवताओं के आसन हिल गये। मानों वे इस बात की सूचना करने लगे कि त्रिलोकनाथ जिन को पृथ्वी पर रहते हुए ऊपर बैठना योग्य नहीं है।

उनके मुकुट अपने आप झुक गये—मानों वे यह कहते हैं कि तुम जिन भगवान के महल पर जाओ। नेमिजिन के जन्म से भव्यजन की प्रवृत्ति की तरह सब दिशाएँ निर्मल और सुखरूप हो गयीं।

भगवान के जन्म से स्वर्ग के कल्पवृक्षों को भी बड़ी भारी खुशी हुई। सो वे अपने आप फूलों की वर्षा करने लगे। स्वर्ग में घण्टा बजने लगा—मानों वह त्रिलोक में जिनजन्म की सूचना दे रहा है। ज्योतिष्क देवों के विमानों में सिंहनाद होने लगा-जान पड़ा, वह जिन

के आकस्मिक जन्म की घोषणा कर रहा है। व्यन्तरदेवों के यहाँ नगाड़े बजने लगे–मानों वे अपने इन्द्रों को भगवान के श्रेष्ठ जन्म की खबर दे रहे हैं। नागभवनों में शंख–ध्वनि होने लगी–मानो उसने नागकुमारों को नेमिजिन के जन्म की सूचना कर दी।

इस प्रकार अपने अपने स्थानों में प्रगट हुए चिह्नों द्वारा जिनजन्म जानकर सब देवगण ने परम आनन्द के साथ 'हे देव! आपकी जय हो, आप खूब फलें–फूलें' इत्यादि कहकर भगवान को परोक्ष में नमस्कार किया। और इसके बाद वे जिन के यहाँ आने को तैयार हुए। उस समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने ऐरावत हाथी को सजाया। उस हाथी का मुनिजनों ने जैसा वर्णन किया है, वैसा थोड़े में यहाँ भी लिखा जाता है—

वह हाथी बहुत ऊँचा और बड़े जोर की गर्जना करनेवाला था। बहुत शीघ्रता से चलनेवाला और बहुत मोटी सूँडवाला था। चलते समय वह कैलाश पर्वत के समान जान पड़ता था। गले में जिसके दो बड़े–बड़े घण्टे लटक रहे हैं और लाख योजन लम्बा–चौड़ा वह ऐरावत जब जोर से चिंघाड़ता था, तब जान पड़ता था कि मेघों को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहा है।

उसके बत्तीस मुँह थे। एक–एक मुँह में आठ–आठ दाँत थे। एक–एक दाँत पर निर्मल पानी का भरा सुन्दर तालाब था। जैनतत्त्व के जाननेवाले मुनिजनों ने उस एक–एक तालाब में एक–एक कमलिनी बतलाई है। उस एक–एक कमलिनी पर बत्तीस–बत्तीस कमल थे। एक–एक कमल तीस–तीस पत्तों से युक्त था। पत्ते–पत्ते पर एक–एक जिनभक्ति तत्पर देवांगना बड़े हाव–भाव–

विलास-विभ्रम के साथ नृत्य कर रही थीं। उनका नृत्य देखकर देवों का मन भी मोहित हो जाता था।

इस प्रकार उस सुन्दर हाथी पर रत्नमयी अम्बाड़ी शोभा दे रही थी। उससे वह ऐसा जान पड़ता था, मानो बिजली जिसमें चमक रही है, ऐसा शरदऋतु का मेघ है। सोने का सिंहासन उस पर सजाया गया था। चँवर, झूल आदि से वह अलंकृत था। छोटी-छोटी घण्टियों के सुन्दर आवाज से वह लोगों के मन को मोहित कर रहा था। सौधर्मेन्द्र, इन्द्राणी और अपने अनुचर देवों के साथ उस हाथी पर सवार हुआ। उस पर चँवर ढुर रहे थे। चन्दोवा तन रहा था। देवगण छत्र लिये खड़े थे।

इसी समय इन्द्र के साथ चलने को नागेन्द्र, चन्द्र और सूर्य-विमान के इन्द्र; व्यन्तरों के इन्द्र आदि भी अपने-अपने हाथी, घोड़े, मोर, तोते वगैरह आकार के बने हुए विमानों में बैठ-बैठकर इन्द्र से आकर मिल गये।

सबके आगे इन्द्र को करके देवगण नगाड़े आदि बाजों को बजाते हुए, गाते हुए, नृत्य करते हुए, जय-जयकार बोलते हुए और सुन्दर स्तुतियों से जगत को शब्दमय बनाते हुए, सब देव-देवांगनाओं के साथ द्वारिका पहुँचे। वहाँ वे इन्द्रगण और सारी देवसेना ध्वजाओं से शोभित द्वारिका की प्रदक्षिणा देकर उसे घेरकर ठहर गयी।

इसके बाद सौधर्मेन्द्र अन्य इन्द्रों के साथ तोरणों से सजे हुए राजमहल में प्रवेशकर जय-जयकार करता हुआ शिवादेवी के आँगन में पहुँचा। वहाँ से फिर उसने अपनी इन्द्राणी को शिवदेवी

के महल में भेजा। इन्द्राणी बड़े आनन्द से प्रसूति-घर में चली गयी। वहाँ उसने कल्पबेल के समान उज्ज्वल शिवदेवी को जिनसहित सोती हुई देखकर उसकी इस प्रकार स्तुति की—

'माता! तुम तीन जगत के स्वामी जिन की माता हो, त्रिलोक पूज्य हो, और सारे स्त्री संसार को एक सुन्दर अलंकार हो। जैसे-खान रत्नों को उत्पन्न करती है, उसी तरह तुमने जिनरूप रत्न उत्पन्न किया है। अतएव तुम सारे संसार की हितकर्ता हो। माता! पवित्रता और सौभाग्य में तुम सबसे बढ़कर हो। क्योंकि त्रिलोकप्रभु जिन तुम्हारी ही कूख में जन्मे हैं।'

इस प्रकार स्तुति कर इन्द्राणी ने शिवदेवी को बड़ी भक्ति से मस्तक नमाया। इसके बाद उसने जिन माता को सुख-नींद में सुलाकर और मायामयी बालक उसके पास रखकर हँसते हुए त्रिलोकनाथ जिन बालक को हाथों में उठा लिया। उन बालक जिन का स्पर्शकर इन्द्राणी को जो प्रेम, जो आनन्द हुआ, वह वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता।

इन्द्राणी ने उन दिव्य शरीर के धारक बालक जिन को प्रसूतिघर से लाकर अपने स्वामी को अर्पण कर दिया। इन्द्र ने उन त्रिलोक-श्रेष्ठ जिन को देखकर प्रणाम किया और भक्तिवश हो बड़े जोर से उनका जय-जयकार किया।

इसके बाद उसने उन कमल-समान कोमल जिन को निर्मल निधि की तरह हाथों में लेकर कोमल गोद में बैठा लिया। ईशानेन्द्र ने उस समय जिननाथ के सिर पर भक्ति से चन्द्रमा के समान निर्मल छत्र किया। सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के इन्द्रों ने आनन्दित

होकर भगवान के ऊपर चँवर ढोरना शुरु किया। इसके सिवा और सब देव-देवांगनायें भी अपने-अपने नियोग के अनुसार जिन की सेवा करने को तत्पर हुईं।

इसके बाद सौधर्मेन्द्र ने जय-जयकार के साथ मेरु की ओर चलने के लिए हाथ का इशारा कर उस पर्वत समान हाथी के अपने पाँव का अंगूठा लगाया। सौधर्म का इशारा पाकर हाथी चला। बहुत बाजे बजने लगे। देवगण 'जय नन्द' आदि कहकर भगवान का जयघोश करने लगे। देवांगनायें आनन्दित होकर गाने और नृत्य करने लगीं। कितनी देवांगनायें आकाश में गा रही थीं, नाच रही थीं। कितने देवगण प्रसन्नता के मारे आकाश में उछल रहे थे। कितने भगवान का चन्द्र-समान निर्मल यश गा रहे थे।

कितने भगवान की स्तुति-प्रार्थना ही करते जाते थे कि हे देव! हे जिनराज! आज सचमुच हमारा देव-जन्म सार्थक हुआ जो हमने आँखों से आपको देखा।

इस प्रकार परम आनन्द से वे भगवान के सामने कह रहे थे- मानों जैसे उनके हाथ में निधि ही आ गयी हो। कितने देवगण ताल ठोकते हुए कूद रहे थे। कितने भगवान के ऊपर फूलों की वर्षा करते जाते थे। इस प्रकार सौधर्मेन्द्र अन्य सब देवगण के साथ जिन भगवान को कुबेर के बनाये मणिमय रास्ते से ज्योतिषचक्र को लांघता हुआ मेरु पर ले गया। मेरु की उसने प्रदक्षिणा दी।

इसके बाद उसने मेरु-सम्बन्धी नाना प्रकार के फले-फूले वृक्षों से युक्त और चारों दिशाओं में बने हुए सुन्दर जिन मन्दिरों से शोभित, पाण्डुक नाम के वन में जो पाण्डुकशिला है, उस पर जिन भगवान को विराजमान किया।

पाण्डुक वन के ईशानकोण में रखी हुई वह पवित्र पाण्डुकशिला अर्ध चन्द्र के समान आकारवाली और बड़ी ही सुन्दर है। वह पूर्व से पश्चिम की ओर सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची है। शिला का मुँह दक्षिण की ओर है। उसे देवगण पूजते हैं। जिन को धारण करने से वह भी जिनमाता के समान पवित्र गिनी जाती है।

उसके चारों ओर वन है। वह वेदी, रत्नों के बने तोरण आदि मंगल द्रव्यों से शोभित है। उस पर जिन भगवान के बैठने का पाँच सौ धनुष्य का ऊँचा गोलाकार एक उत्तम सिंहासन है। उसकी चौड़ाई भी पाँच सौ ही धनुष की है; और उसका मुखभाग अढ़ाई सौ योजन का है।

इसी सिंहासन पर दु:खरूप अग्नि के बुझाने को मेघ समान जिन विराजमान किये गये। इन्द्र द्वारा सिंहासन पर विराजमान किये हुए जिन ऐसे शोभने लगे—मानों उदयाचल पर बाल सूरज उगा है। भगवान के सिंहासन के पास ही दक्षिण और उत्तर की बाजू में सौधर्मेन्द्र और ईशानेनद्र के दो सुन्दर सिंहासन थे।

इसके बाद इन्द्र ने परम प्रसन्न होकर जिन की भक्ति से अपने हजार हाथ किये और इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य, वरुण आदि दिग्देवताओं को यज्ञभाग के अनुसार यथास्थान स्थापित किया।

इतना करके इन्द्र जिन का अभिषेक करने को तैयार हुआ। उसने, नाना रत्नों से जड़े हुए, क्षीरसमुद्र के पवित्र जल के भरे हुए, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं के रस से छींटे गये, मोतियों की मालाओं से शोभायमान, आकाश-लक्ष्मी के स्तन से जान

पड़नेवाले, श्रेणी बाँधकर खड़े हुए देवताओं द्वारा एक हाथ से दूसरे हाथ में दिये गये अतएव हाथरूपी डालियों से उठाये हुए सुन्दर कल्पवृक्ष के फलों के समान जान पड़नेवाले, नाना प्रकार की शोभाओं से शोभित, सत्पुरुषों के मन के समान निर्मल, भव्यजनों को मनचाहे सुख के देनेवाले, सम्यग्दर्शन के समान निर्मल, आठ योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े मुँहवाले सोने के कलशों से गीत, संगीत, वादित्र, जय-जयकार आदि पूर्वक शास्त्रोक्त महामंत्र का उच्चारण कर जिनभगवान का अभिषेक किया।

उस समय वह जलपूर भगवान के नीले शरीर पर ऐसा जान पड़ा—मानों इन्द्रनील-गिरि पर मेघ बरस रहा है।

इसके बाद वह सफेद जलपूर सुमेरु पर गिरा-जान पड़ा नेमिजिन के उज्ज्वल यश ने सुमेरु को ढक लिया। उस जलपूर से परस्पर को छींटते हुए देवगण ऐसे देख पड़ने लगे—मानों वे समुद्र में क्रीड़ा कर रहे हैं। देवों को क्रीड़ा करते देखकर देवांगनाएँ भी अपने मन को न रोक सकीं, सो वे भी उस जिन शरीर के स्पर्श से पवित्र जलपूर में क्रीड़ा करने लगीं।

वह जलपूर उन असंख्य देवताओं से रोका जाने पर भी अक्षीण-ऋद्धि के प्रभाव से बहुत हो गया। वह सारे पर्वत के चारों ओर फैल गया-जान पड़ा कि जिन की संगति पाकर उसे इतना आनन्द हुआ कि वह लोट-पोट हो रहा है। वह जलपूर जिन के शरीर से नीचे गिरता हुआ भी ऐसी शोभा को प्राप्त हुआ-मानों पृथ्वी को पवित्र बना रहा है। जो पूर जिन के शरीर का संग पाकर बहुत पवित्र हो गया—भला, फिर वह किसे पवित्र न बना देगा?

इन्द्र ने जो अभिषेकोत्सव मेरु पर किया, उस महान उत्सव का मुझ सदृश बुद्धिहीन कैसे वर्णन कर सकते हैं ?

इस अभिषेकोत्सव को देखकर कई मिथ्यात्वी देवों ने मिथ्यात्व छोड़कर सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया। इस प्रकार आनन्द और उत्सव के साथ जिनाभिषेकोत्सव समाप्त कर इन्द्र और इन्द्राणी ने स्वभाव-सुगन्धित जिनदेह में केसर, कपूर, चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओं का लेप किया।

इन्द्र नीलमणि-समान कान्ति के धारक नेमिजिन के शरीर पर वह लेप ऐसा जान पड़ा—मानों नीलगिरि पर संध्याकाल की ललाई की झांई पड़ रही है।

इसके बाद इन्द्र ने उन्हें सुन्दर वस्त्र पहनाये—उनसे भगवान ऐसे जान पड़े मानो शुभ लेश्याओं ने, अधिकता के कारण भीतर न समा सकने से बाहर आकर भगवान का आश्रय लिया है। भगवान के कानों में पहनाये हुए सुवर्ण-रत्नमयी कुण्डल सेवा में आये हुए सूरज के समान जान पड़े। छाती पर पड़े हुए सुन्दर हार ने भावी केवल-ज्ञानरूपी लक्ष्मी के झूलने के लिए झूले की सी शोभा धारण की।

हाथों में पहनाये हुए पंचरंगी रत्न जड़े सोने के कड़े जीव के उपयोग ज्ञान-दर्शन से जान पड़े। जिसमें मणि चमक रही है - ऐसी जिनकी कमर में पहराई हुई करधनी उनके बहुत अर्थवाले सूत्र के समान शोभा को प्राप्त हुई। छम-छम शब्द करते हुए पाँवों के झांझर ऐसे जान पड़े—मानों भगवान के पूज्य चरणों का आश्रय पाकर वे बड़े सन्तुष्ट हुए।

जिन के गले में सुगन्धित फूलों की माला ने शरीर धारण

किये, हुए निर्मल कीर्ति की शोभा को धारण किया। इसके बाद इन्द्राणी ने भी त्रिलोक-भूषण जिन को भक्ति के वश हो खूब शृंगारा।

इस प्रकार इन्द्र और इन्द्राणी ने श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्त्राभरण से भगवान को अलंकृत कर बारम्बार नमस्कार किया। 'ये भगवान दशलक्षणरूप धर्मरथ के चक्र को चलाने में नेमि-धार के समान हैं', यह कहकर इन्द्र ने उनका नाम 'नेमिनाथ' रख दिया।

उस समय सब देव-देवांगनाओं ने 'हे नेमिनाथ जिन! आपकी जय हो', कहकर भगवान का जय-जयकार किया। देवों के इस जय-जयकार से सारा मेरुपर्वत गूँज उठा-जान पड़ा, वह भी नेमिजिन का जय-जयकार कर रहा है।

इतना उत्सव करके इन्द्र पहले की तरह गाजे-बाजे के साथ भगवान को **द्वारिका** लाया। वहाँ उसने समुद्रविजय महाराज और शिवदेवी को मन-वाणी-काय से नमस्कार कर भगवान को उनके हाथों में रख दिया।

इसके बाद उस नट-शिरोमणि इन्द्र ने परम आनन्दित होकर उनके सामने हजार भुजायें, हजार आँखें और एक सौ पाँच मुँह करके सुन्दर अभिनय किया। सुन्दरता की अवतार देवांगनाओं ने भी बड़े सुन्दर गान-रस-भाव-लय आदि के साथ नृत्य किया।

इन्द्र ने जब लोगों के मन को मोहित करनेवाला नृत्य शुरु किया, तब बाजों के शब्द से दसों दिशायें भर गयीं। नृत्य करता हुआ इन्द्र क्षणभर में आकाश में इतना उछलता था—मानों चाँद-सूरज को तोड़ लेना चाहता है और उसी के दूसरे क्षण में जमीन पर आकर लोगों को रंजायमान करने लगता था।

नृत्य करते समय उसके पाँवों के आघात से पृथ्वी काँप उठती थी, पर्वत हिल जाते थे, समुद्र खौलने लगता था। वह अपने हाथ की ऊँगली के इशारे से जब स्वर्ग की उन सुन्दर अप्सराओं को नचाता और वे भी हाव-भाव-विलास-विभ्रम के साथ नाचतीं, तब ऐसा जान पड़ता था—मानों सोने की पुतलियों को वह नचा रहा है। उन अप्सराओं के त्रिलोक सुन्दर गाने को सुनकर लोगों का मन अत्यन्त मोहित हो जाता था।

जिस अभिनय के प्रधान दर्शक समुद्रविजय महाराज, त्रिजगत्स्वामी नेमिनाथ जिन और महासती शिवदेवी तथा अन्य बड़े-बड़े यादव जन थे और अभिनय करनेवालों में इन्द्र तो नटाचार्य, नाचनेवाली देवांगना, गानेवाले स्वर्गीय गन्धर्व और जय-जयकार करनेवाले देवगण थे। उस जगत को आनन्दित करनेवाले अभिनय का कौन वर्णन कर सकता है ? इस प्रकार महान अभिनय कर और बड़ी भक्ति से भगवान के गुणों को लोक में प्रगट कर, इन्द्र उन त्रिजग के हितकर्ता नेमिजिन को नमस्कार कर अपने देवगण के साथ स्वर्गलोक चला गया।

जगच्चूड़ामणि श्रीनेमिनाथ जिन, नमिनाथ तीर्थंकर के पाँच लाख वर्ष बाद हुए। इनकी आयु एक हजार वर्ष की थी। इनका रंग श्याम था, परन्तु बड़ा सुन्दर था। भगवान का जन्मकल्याणक कर इन्द्र के चले जाने पर समुद्रविजय महाराज ने फिर और बड़े ठाट-बाट से नेमिजिन का जन्मोत्सव मनाया। लोगों को उन्होंने कल्पवृक्ष के समान मन चाही धन-दौलत, वस्त्राभरण आदि दानकर सन्तुष्ट किया। उस समय सुख देनेवाले निधि की तरह उनके महादान से दु:ख, दारिद्रय आदि का नाम भी न रहा। द्वारिका की

धनी प्रजा ने भी आनन्द से फूलकर घर-घर में खूब उत्सव किया। स्त्रियों ने आनन्द से विह्वल होकर इस उत्सव में खूब गाया, बजाया और नृत्य किया। इस प्रकार जिन-जन्म से त्रिलोक के सब जीवों को चिन्तामणि के लाभ समान बहुत ही सुख हुआ।

नेमिजिन अब दिनोंदिन उत्सव-आनन्द के साथ बढ़ने लगे। दान-मानादि से जगत् को प्रसन्न करने लगे। स्वर्ग के देव-देवांगनागण त्रिलोक-पूज्य नेमिजिन के लिये स्वर्गीय, दिव्य वस्त्राभरण भेंट लाकर उनकी सेवा करने लगे, और हर समय नौकर की तरह बड़े प्रेम से उनके लिये छहों ऋतु के नये-नये फल-फूल लाकर उन्हें सन्तुष्ट करने लगे।

नेमिजिन रत्नमयी आँगन में देवकुमारों के साथ नाना तरह के खेल-खेलकर लोगों के मन खुश किया करते थे। उनकी इस बाल-लीला से उनके माता-पिता को जो आनन्द होता था, वह अपूर्व था। खेलते-खेलते कभी नेमिजिन रत्न-धूल की मुट्ठी भर देवकुमारों के सिर पर डाल देते थे, उससे वे प्रसन्न होकर अपने जन्म को सफल मानते थे। कभी देवकुमारगण मोर, तोते आदि का रूप लेकर भगवान को खिलाया करते थे।

इस प्रकार आनन्द-उत्सव के साथ नेमिजिन ने कुमार-काल पूरा कर जवानी में पैर रखा। कोई पैंतीस हाथ ऊँचा नेमिजिन का वस्त्राभूषण से अलंकृत शरीर ऐसा जान पड़ता था-मानों महादानी चलने-फिरनेवाला कल्पवृक्ष है।

भगवान के पवित्र शरीर में तीर्थंकर नाम पुण्य-प्रकृति के उदय से कभी पसीना नहीं आता था। तपे हुए लोहे के गोले पर

जैसे पानी की बूँद उसी समय जल जाती है, उसी तरह भगवान के शरीर में किसी प्रकार का मल नहीं होता था। उनके शरीर में खून दूध जैसा सफेद था। उनके शरीर का संस्थान–आकार समचतुरस्र था। वे सुदृढ़ वज्रवृषभनाराचसंहनन के धारक थे और इसी कारण उनका शरीर शस्त्र वगैरह से कभी भी नहीं छेदा जा सकता था। उनकी रूप–सुन्दरता सर्वश्रेष्ठ और इन्द्र–धरणेन्द्र आदि सभी का मन मोहित करनेवाला था।

भगवान का शरीर स्वभाव से ही इतना सुगन्धित था कि केशरी, कपूर, अगुरु, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुयें उसमें कुछ भी विशेषता न कर सकीं। भगवान का शरीर छत्र, चँवर, कमल आदि एक सौ आठ लक्षण[१] और नौ–सौ तिल आदि व्यंजन[२] प्रकट चिह्नों से बड़ा ही शोभित हुआ।

भगवान के जो तीर्थंकर नाम पुण्य–प्रकृति का उदय था, उससे ये लक्षण और व्यंजन उनके शरीर में हुए थे। उन एक सौ आठ लक्षणों ने नाम ये हैं— श्रीवृक्ष, शंख, कमल, साथियां, कुश, तोरण, चँवर, छत्र, सिंहासन, धुजा, दो मछलियाँ, दो कलश, कछुआ, चक्र, समुद्र, तालाब, विमान, गृह, धरणेन्द्र, स्त्री, पुरुष, सिंह, बाण, धनुष, मेरु, इन्द्र, सुरगंगा, चाँद, सूरज, पुर, दरवाजा, वीणा, पंखा, वेणु, तपला, दो फूलमाला, हार, रेशमी वस्त्र, कुण्डल वगैरह आभूषण, पका हुआ शालका खेत, फलयुक्त वन, रत्नद्वीप, वज्र, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, कामधेनु, बैल, मुकुट, कल्पबेल, निधि, धन, जामन का झाड़, अशोकवृक्ष, नक्षत्र, गरुड़, राजमहल, तारा,

१– जन्म से मृत्युपर्यन्त शरीर में रहनेवाले चिह्न लक्षण कहे जाते हैं। जैसे – छत्र, चँवर आदि।
२– और जो शरीर में पीछे से प्रगट होने हैं, उन्हें व्यंजन कहते हैं। जैसे – तिल आदि।

ग्रह, आठ प्रातिहार्य, आठ मंगलद्रव्य और ऊर्ध्व रेखा–आदि।

जिनके इन लक्षणों की भावना भव्यजनों को सम्पदा, सौभाग्य, सुख और यश को करती है। ब्रह्मचर्यव्रत के प्रभाव से होनेवाली भगवान की शक्ति, त्रिकाल में उत्पन्न देवों की शक्ति से अनन्तानन्त गुणी थी। भगवान के मुख–कमल में विराजी हुई सरस्वती जीवों के लिये प्रिय, हितकारी और बहुत थोड़े में समझानेवाली थी। इत्यादि गुणरूप रत्नों के भगवान जन्म ही से खान थे।

उन इन्द्रादि पूज्य नेमिजिन के सौभाग्य–सम्पदा का वर्णन गणधर देव भी नहीं कर सकते, तब और कौन उसका वर्णन कर सकता है ? आकाश जैसे बिलस्त द्वारा और समुद्र जैसे चुल्लू द्वारा नहीं नापा जा सकता, उसी तरह परमानन्द देनेवाले और चन्द्रमा की कान्ति से भी कहीं अधिक निर्मल नेमिजिन के श्रेष्ठ गुणों की किसी तरह गणना नहीं की जा सकती।

इस प्रकार दाता, दयानिधि, अत्यन्त निस्पृह, ज्ञानी, सबको प्यारे, धीर, मोक्ष जिनसे बहुत ही निकट है और इन्द्रादि देवतागण बड़े प्रसन्न हो–होकर जिनकी सेवा करते हैं, ऐसे नेमिजिनकुमार लोगों के मन को प्रसन्न करते हुए अपने सम्पदा से भरे–पूरे राजमहल में सुख के साथ समय बिताने लगे।

जन्म महोत्सव के समय इन्द्र ने जिन्हें स्नान कराया, सुमेरु पर जिनका स्नान हुआ, जिनके स्नान के लिये समुद्र का जल लाया गया, देवतागण ने जिनकी बड़े आदर के साथ सेवा की, जिनके उत्सव में अप्सरायें नाचीं और गन्धर्व देवों ने जिनकी कीर्ति गायी, वे नेमिजिन सबको सुख दें।

इति सप्तमः सर्गः।

आठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलदेव की दिग्विजय-यात्रा

एक बार मगधदेश के रहनेवाले कुछ महाजनों के लड़कों ने व्यापार की इच्छा से समुद्रयात्रा की। कर्मयोग वे रास्ता भूलकर, पंचरंगी ध्वजाओं से स्वर्ग की शोभा को नीचा दिखानेवाली द्वारिका में आ गये। द्वारिका को सब श्रेष्ठ सम्पदा से भरी-पूरी देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। यहाँ से उन्होंने कुछ बहुमूल्य रत्न खरीद लिये। उन रत्नों को राजगृह जाकर उन्होंने चक्रवर्ती जरासंध को भेंट किये।

अपनी कान्ति से चारों ओर प्रकाश कर देनेवाले उन रत्नों को देखकर जरासंध बड़ा हर्षित हुआ। उसने उन महाजन पुत्रों को पान-सुपारी देकर पूछा—आप इन रत्नों को कहाँ से लाये हैं? सुनकर वे महाजन-पुत्र बोले—महाराज, सुनिये।

हम लोग समुद्रमार्ग से किसी दूसरे देश को जा रहे थे। रास्ते में दिग्भ्रम हो जाने से हम द्वारिका में पहुँच गये। महाराज! द्वारिका बड़ी सुन्दर नगरी है। सब श्रेष्ठ सम्पदा से वह परिपूर्ण है। घर-घर पर फहराती हुई ध्वजाओं से वह बड़ी शोभा देती है। उसमें बड़ा सुन्दर जिनमन्दिर है। दरवाजे-दरवाजे पर टंगे हुए तोरणों और सब प्रकार की उत्तम से उत्तम वस्तुओं से वह लोगों के मन को बहुत आकर्षित करती है।

यादव-वंश शिरोमणि श्रीसमुद्रविजय महाराज, उनकी रानी शिवदेवी और उनके सुरासुर-पूज्य, जगच्चूड़ामणि पुत्र श्रीनेमिनाथ जिन के सम्बन्ध से वह रत्न-खान के समान जान पड़ती है, जिसने

अपनी सुन्दरता से देव-देवांगना आदि सभी को जीत लिया है, और जो बड़ी मनोहार है। और महाराज शूरवीर-शिरोमणि कृष्ण अपने भाई बलभद्र के साथ वहीं रहते हैं। वे दोनों भाई ऐसे तेजस्वी वीर हैं कि शत्रु तो उनके सामने सिर तक नहीं उठा पाते—शत्रु की बढ़वारी को उन्होंने दबा दिया है। महाराज! द्वारिका नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी है। धन-धान, सुख-सम्पदा आदि से वह भरी-पूरी और सब जन की इच्छाओं को पूरी करनेवाली है।

इस प्रकार द्वारिका की बड़ी ही सुन्दर शोभा है, महाराज! देव! हम लोग इन मनोहर और पुण्य-समूह के समान उज्ज्वल रत्नों को उसी द्वारिका से लाये हैं।

यह सब हाल सुनकर क्रोध के मारे जरासंध की आँखें लाल हो गयीं। वह क्रोध भरी आँखों से अपने बड़े पुत्र कालयवन के मुँह की ओर देखकर बोला—क्या मेरे शत्रु यादवगण अब तक पृथ्वी पर जीते हैं? यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। तुमसे तो मैंने सुन पाया था कि मेरे डर से आग में जलकर मर गये! अस्तु, जो हो, उन उद्धत लोगों को मैं अभी ही जाकर मारूँगा।

इस प्रकार क्रोध में आकर जरासंध ने उसी समय युद्ध-घोषणा दिलवा दी। उसे सुनकर वीरगण में बड़ी हलचल मच गयी। इसके बाद उसने हाथी, घोड़े, रथ, पैदल-सेना तथा विद्याधर देवतागण आदि के साथ युद्ध के लिये कूच किया।

उसके साथ भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, रुक्मी, शल्यराज, वृषसेन, कृप, भूमिनाथ, कृपधर्मा, रुधिर, सेन्द्रसेन, जयद्रथ,

हेमप्रभ, दुर्योधन, दु:शासन, दुर्मष, भगदत्त—आदि बड़े-बड़े राजे-महाराजे तथा नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से सजे हुए वीरगण थे।

इस प्रकार षडंग सेना से युक्त जरासंध बड़ी तैयारी के साथ यादवों के ऊपर चढ़ाई कर कुरुक्षेत्र में आया। उसकी विशाल सेना को देखकर यह जान पड़ता था कि कहीं प्रलय काल के कुपित वायु से समुद्र तो नहीं चल गया है।

इसी तरह कलह-प्रिय नारद ने युद्ध का सब कारण जानकर कृष्ण से आकर कहा—ऐसे निर्भय होकर क्यों बैठे हुए हैं ? जान पड़ता है, आपको कुछ मालूम नहीं है। अच्छा तो सुनिये—मदान्ध जरासंध शत्रु बड़ी भारी सेना को साथ लेकर आपसे युद्ध करने को कुरुक्षेत्र में आ रहा है और वह कहता है कि मेरे चाणूर पहलवानों को मार डालनेवाले कृष्ण को मैं भी अब किसी तरह जीता न छोड़ूँगा। उसे सारे कुटुम्बसहित जमीन में मिला दूँगा।

नारद द्वारा यह हाल सुनकर कृष्ण श्रीनेमिनाथ के पास गये और उन्हें नमस्कार कर बोले—प्रभो! मगध का राजा जरासंध अपने विरुद्ध चढ़ाई कर युद्ध करने के लिये आ गया है। इस कारण द्वारिका की रक्षा तो आप कीजिए और मैं आपकी कृपा से उसे जीतकर बहुत शीघ्र वापिस लौट आता हूँ।

यह सुनकर नेमिनाथ ने अपना प्रफुल्ल मुख-कमल उठाकर प्रेमभरी आँखों से, हँसते हुए कृष्ण की ओर देखकर कुछ मुस्काया और अवधिज्ञान से कृष्ण की विजय तथा उस योग्य उसका पुण्य जानकर 'ॐ' कहा। अर्थात् देवता-पूज्य नेमिजिन ने 'ॐ' कहकर कृष्ण की बात को मान लिया।

भगवान की आज्ञा पाकर कृष्ण में बहुत हर्षित हुए। भगवान

को हँसते हुए देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि इस युद्ध में मैं अवश्य जयलाभ करूँगा।

इसके बाद कृष्ण भगवान को प्रणाम कर बलभद्र, जय, विजय, सारण, अंगद, धव, उद्धव, सुमुख, अक्षर, जरराज, पाँच पाण्डव, सत्यक, द्रुपद, विराट, धृष्ट, अर्जुन, उग्रसेन—आदि यादवगण, शत्रु का नाश करनेवाले अन्य बड़े-बड़े राजा-महाराजे तथा अस्त्र-शस्त्रों से सजी हुई हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सेना से सजकर बड़ी तैयारी के साथ जरासंध पर विजयलाभ करने को कुरुक्षेत्र में आ उपस्थित हुए।

उनकी सेना में बजते हुए बाजों से सब दिशायें शब्दमय हो गयीं। वीर योद्धाओं का उत्साह खूब बढ़ गया। डरपोक लोग भागने लगे। उस समय शत्रु-नाश की इच्छा करनेवाले, कमर कसे हुए, महा बलवान और संग्राम सूर कृष्णवर्णधारी श्रीकृष्ण यम के समान दिख पड़ते थे।

इसके बाद यमसेना-समान दीख पड़नेवाली दोनों ओर की सेना खून के प्यासे कुरुक्षेत्र में आ डटी। पहले कृष्ण की सेना में युद्ध के नगाड़ों की महान ध्वनि उठी। उसे सुनकर कितने ही धर्मात्मा वीरगण ने बड़ी भक्ति से सुखकर्ता जिनभगवान की पूजा की। कितनों ने दान दिया। कितनों ने अपने योग्य व्रतों को धारण किया।

इसके बाद दोनों ओर की सेनाओं के राजाओं ने अपने सेवक-वर्ग को आज्ञा दी कि घोड़े तैयार किये जायें; मदमस्त और चलने-फिरनेवाले पर्वत समान बड़े-बड़े हाथी ध्वजा, अम्बाडी आदि से सजाये जायें; युद्धोपयोगी सब वस्तुओं से परिपूर्ण अतएव पूर्णता

को प्राप्त मनोरथ के समान जान पड़नेवाले रथों के घोड़े जोते जायें; वीरगण जयश्री के कुण्डल-सदृश और शत्रुओं के खून के प्यासे धनुष्य चढ़ावें; योद्धागण हाथों में अस्त्र-शस्त्र धारण कर सावधान होवें और सुभट लोग मिलकर रण में भूखे काल को तृप्त करें।

अपने-अपने प्रभु की आज्ञा पाकर रण-प्रिय वीरगण अपने-अपने काम में लग गये। कृष्ण ने अपने सेनापतियों को ब्यूह-रचना के लिए आज्ञा दी। उनकी आज्ञानुसार उसी समय व्यूह रचना हो गयी। उधर जरासंध ने भी युद्धभूमि में आकर बड़े गर्व के साथ अपनी सेना को सजाया।

इस प्रकार परस्पर के खून की प्यासी दोनों ओर की सेना अच्छी तरह सजकर तैयार हुई। रण के जुझाऊ बाजे बजने लगे। आकाश और पृथ्वी शब्दमय हो गयी। दोनों सेना की मुठभेड़ होते ही वीरगण परस्पर में तीखे, प्राणों के प्यासे, निर्दय और दुर्जन के सदृश बाणों को छोड़ने लगे।

उन धनुर्धारियों के हाथों से छूटे हुए असंख्य बाणों द्वारा मिथ्यान्धकार से ढके गये जगत की तरह आकाश छा गया। और कितने बाणों से बींधे गये वीरगण के शरीर से जो रक्त बहा, उससे वे ऐसे जान पड़े मानों ढाक-पलाश फूला है। बड़े वेग से एक के बाद एक बाण जो छोड़ा गया, उससे गाढ़ अन्धेरा हो गया। उसमें खड़े हुए वीरगण की दृष्टि का कहीं संचान होने से-एक ही जगह रुक जाने से वे मिथ्यादृष्टि के समान दीख पड़ने लगे।

इसलिए स्वामी के सत्कार की ओर चित्त देनेवाले वे महापराक्रमी धनुर्धारी-गण क्षणभर ठहरकर युद्ध करते थे। कितने

शत्रुओं के खून के प्यासे यम-समान वीर योद्धाओं ने हाथ में धारण किये शस्त्रों से शत्रुओं को खूब ही काटा। कितने कटे हाथवाले योद्धाओं के हाथ फैलते न थे-जान पड़ता था पाप के उदय से वे दरिद्र हो गये। कितने पाँव कट जाने से रास्ते में पड़ गये थे-अपने स्थान पर नहीं जा सकते थे। वे ऐसे जान पड़ते थे - मानों बिना पाँव के मनुष्य हैं। प्राण निकलने से इधर-उधर पड़ते हुए हाथी पर्वत से दीख पड़ते थे।

उस युद्ध का क्या वर्णन किया जाये। वहाँ जो खून की नदी वही वह जीवों की प्राण-हारिणी वैतरणी के समान दीख पड़ती थी। गहरी चोट लगने से मूर्छित हुए कितने वीरगणों की आँखें मिंच गयीं। वे न बोल सकते थे और न जा सकते थे, अतएव वे योगियों से जान पड़ते थे। कितने योद्धाओं ने अपने शस्त्रों से शत्रुओं के शस्त्रों के काटने में बड़ी ही कुशलता दिखलायी। कितने वीरों के गहरा घाव लग चुका था तो भी वे साहस कर सावधान होकर जिन का ध्यान स्मरण करने लगे और अन्त में संन्यास धारण कर स्वर्ग में गये। कितने मिथ्यात्व-विष चढ़े हुए मोही योद्धा शस्त्र की चोट को न सह सकने के कारण त्राह-त्राह कर मरे और पाप के उदय से दुर्गति में गये।

जिन मानी योद्धाओं को मालिक ने बड़े आदर-मान के साथ रखा था, उन्होंने उस ऋण को चुकाने के लिये ही मानों जी झोंककर लड़ाई लड़ी। कितने वीर योद्धाओं ने अपने शूरता के गर्व और जीवन-रक्षा के वश होकर शत्रु-संहारक बड़ा ही घोर युद्ध किया। नाना तरह के शस्त्रों द्वारा जो इन दोनों ओर की सेना का

घनघोर संग्राम हुआ, वह राम-रावण के युद्ध से कम नहीं हुआ।

इस युद्ध में जरासंध की सेना ने कृष्ण की सेना को पीछे हटा दिया। यह देखकर कृष्ण क्रोध से काँप उठे। वे सब सेना को लेकर यम की तरह लगने को तैयार हो गये। उनकी सेना के घोड़ों की टाप से जो धूल उड़ी, उससे आकाश छा गया। युद्ध के नगाड़ों के शब्द से दिशायें भर गयीं। कृष्ण ने हाथी, घोड़े और योद्धाओं को खूब काट डाला और बड़े-बड़े रथों को बात की बात में छिन्न-भिन्न कर दिया।

इस प्रलय को देखकर शत्रुसेना में त्राह-त्राह मच गयी। स्याद्वादी जैनी जैसे अपनी विद्या द्वारा मिथ्या मतों का खण्डन कर उन्हें जीत लेता है, उसी तरह कृष्ण ने जरासंध की सेना को बड़ी शीघ्रता से जीत लिया। यह देखकर जरासंध को बड़ा क्रोध आया। उसने कृष्ण से कहा—

अरे ओ ग्वाल के छोकरे! गोकुल में दूध पी-पीकर तू हाथी की तरह मस्त हो गया है, परन्तु जान पड़ता है तू मेरे प्रभाव को नहीं जानता। अपनी चंचलता से तू समुद्र में घुस गया है, परन्तु अब तू मेरे सामने से जीते जी नहीं जा सकता। यदि तू मेरे पाँवों में पड़कर प्राणों की भीख माँगे तो मैं कह सकता हूँ कि तू जाकर तेरे बिना रोती हुई गौओं को धीरज बँधा।

जरासंध के ये अभिमान भरे वचन सुनकर सिंह समान निर्भय कृष्ण ने उससे कहा—

ओ अन्धे जरासंध! तू देखकर भी नहीं देखता है, यह बड़ा आश्चर्य है। देख, जिसने कांसे के बर्तन समान कंस को टुकड़े-

टुकड़े कर दिया, जिसने चाणूर सदृश भयंकर मल्ल को बात की बात में चूर डाला, उसे तू ग्वाल का छोकरा बतलाता है ? अस्तु मैं छोकरा ही सही, पर याद रख, आज मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मैं तेरे टुकड़े-टुकड़े न कर दूँगा, तब तक अपने भाई बलदेव के चरणों को न देखूँगा—उन्हें अपना मुँह न दिखाऊँगा। तू वृथा बकवाद क्यों कर रहा है ? तुझमें यदि शक्ति है—बल है तो मुझ पर आक्रमण कर।

इस प्रकार परस्पर अपनी-अपनी तारीफ करते हुए जरासंध और कृष्ण मस्त हाथी पर बैठकर यम के समान एक-दूसरे पर झपटे और बाण वर्षा करने लगे। जरासंध ने तब महा बलवान श्रीकृष्ण के प्राण-संहारक तीखें बाणों को न सह सकने के कारण बहुरूपिणी नाम विद्या को याद किया। उस विद्या ने तब अपनी माया से एक बड़ी भारी भूतों की भयंकर सेना तैयार की। उसके दाँत तीखे, बड़े और आँखें लाल थीं। बाल ऊपर की ओर उड़ते हुए और पीले थे। वह भयंकर हँसी हँस रही थी। माया से उसने अनेक तरह के रूप धारण कर रखे थे। उस सेना ने कृष्ण की सारी सेना में खलबली डाल दी-बड़ा कष्ट दिया।

शूरवीर कृष्ण यह देखकर उस भूतों की सेना में घुस गये और उसे चारों ओर से मार-मारकर भगाने लगे। कृष्ण के ऐसे बल को देखकर वह विद्या जी बचाकर सूर्योदय से नष्ट हुई रात्रि की तरह भाग छूटी। यह देखकर जरासंध ने क्रोधित होकर कृष्ण से कहा—

ओ ग्वाल के अजान बालक! इन भूतों को भगाकर शायद तू अभिमान से फूल गया होगा। ये चंचल भूत भाग जायें या रहें,

इनसे मुझे कुछ लाभ या हानि नहीं। परन्तु अब देख, मैं अपने हाथों से तेरा सिर काटता हूँ। यह सुनकर वीररस चढ़ा हुआ कृष्ण निर्भय होकर यम की जरासंध के सामने जाकर खड़ा हो गया। जरासंध ने तब क्रोध में आकर कालचक्र के समान चक्र को घुमाकर कृष्ण के ऊपर फेंका।

सूर्य सदृश चमकता हुआ वह चक्ररत्न पुण्य से कृष्ण की प्रदक्षिणा कर उनके हाथ में आ गया। उस चमकते हुए चक्ररत्न को हाथ में लेकर कृष्ण ने जरासंध से कहा—अब भी मेरे हाथ में बात है, इसलिए मैं कहता हूँ कि सब पृथ्वी मुझे सौंपकर तू छल-कपटरहित प्रभु बलदेव की शरण में चला आ। तू वृथा जीव-संहारक काल के मुँह में पड़कर कष्ट मत उठा।

कृष्ण के इन मर्मभेदी वचनों को सुनकर जरासंध बोला—अरे जो ओछे कुल में पैदा हुए नीच! तू सियाल होकर मेरे सदृश विकराल सिंह को डर दिखलाता है? मैं जानता हूँ कि तू, तेरा क्षुद्र पिता और तेरा दादा कौन था। इसीलिए मैं तुझे पृथ्वी अवश्य दूँगा! माँगते हुए तुझे शर्म भी नहीं आयी? और क्यों रे, जान पड़ता है इस कुम्हार के चक्र-समान चक्र को पाकर तू फूल गया है। बहुत कहने से कुछ लाभ नहीं। देख, इसी तलवार से मैं तुझे अभी ही मौत के मुँह में पहुँचा देता हूँ।

यह सुनकर कृष्ण के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने तब उसी समय चक्र से जरासंध का सिर काट डाला। उस मदान्ध जरासंध के मरते ही कृष्ण की सेना में जय-जयकार की महान ध्वनि उठी। नगाड़े बजने लगे। उससे लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

देव-देवांगनाओं ने 'नन्द जीव' आदि कहकर कृष्ण के ऊपर फूलों की वर्षा की।

इसके बाद कृष्ण चक्ररत्न को आगे करके बलदेव आदि के साथ दिग्विजय करने को निकले। उनके आगे-आगे बजते हुए नगाड़े सबको दिग्विजय की सूचना देते जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने अनेक देशों और बड़े-बड़े राजाओं को अपने वश किया।

इस प्रकार विजय करते हुए कृष्ण, यादवगण, अन्य बड़े-बड़े राजे-महाराजे तथा सेनासहित पीठगिरि नाम पर्वत पर आये। उस पर्वत पर कोटिशिला नाम की एक बड़ी भारी शिला थी। बलदेव इत्यादि ने भक्ति से उसकी पूजा की। उस समय कृष्ण के बल की सब राजाओं को प्रतीति हो, इसलिए बलदेव ने कृष्ण से उस शिला के उठाने को कहा।

उनकी आज्ञा पाते ही कृष्ण ने बड़े सहज में उतनी बड़ी शिला को झट से उठा दिया। हाथों से ऊपर उठाई हुई, वह शिला उस समय छत्र-सदृश जान पड़ी।

कृष्ण के ऐसे बल को देखकर हर्षित हुए बलदेव ने बड़े जोर का सिंहनाद किया। उसे सुनकर आये हुए पर्वत-निवासी सुनन्द नामक यक्ष ने कृष्ण और बलदेव की पूजा की तथा कृष्ण को एक नन्दक खड्ग (तलवार) भेंट किया।

इसके बाद देवों, विद्याधरों तथा अन्य राजाओं ने तीर्थजल के भरे सोने के एक हजार आठ कलशों से 'ये नवमें नारायण और प्रतिनारायण हैं'—ऐसा कहकर बड़े प्रेम से उनका अभिषेक किया और बाकी में अच्छी-अच्छी वस्तुयें उन्हें भेंटकर उनकी पूजा-सत्कार किया।

यहाँ से गंगा के किनारे-किनारे होकर पूर्व की ओर जाते हुए चक्रवर्ती कृष्ण गंगा द्वार के पासवाले बाग में पहुँचे। वहाँ उन्होंने जय-जयकार के साथ अपनी सेना का पड़ाव किया। इसके बाद कृष्ण रथपर चढ़कर दरवाजे के रास्ते निर्भयता के साथ समुद्र में प्रविष्ट हुए। वहाँ कुछ दूर खड़े होकर उन्होंने एक अपने नाम का बाण मागध नामक व्यन्तर देवता को लक्ष्य कर चलाया। वह मागध व्यन्तर उस बाण को देखकर बड़े जोर से चिल्लाया।

इसके बाद जब उसे जान पड़ा कि पुण्यवान कृष्ण यहाँ आये हुए हैं, तब उसने एक रत्नहार, मुकुट, कुण्डल की जोड़ी और वह बाण इन सबको लाकर कृष्ण की भेंट किया और स्तुति की। समुद्रवासी बलवान देवता भी कृष्ण का नौकर हो गया, यह कम आश्चर्य की बात नहीं। पुण्य से क्या नहीं होता?

यहाँ से प्रसन्नता के साथ निकलकर वह उदयशाली जितशत्रु कृष्ण सब सेना को लेकर 'वैजयन्त' नामक द्वार पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने वरतनु नामक देव को पराजित किया। उसने रत्नों के कड़े, अंगद, चूड़ामणि नाम हार और एक करधनी श्रीकृष्ण को भेंट की और प्रणाम कर वह अपने स्थान चला गया। पुण्य से कौन नहीं पूजता?

यहाँ से कृष्ण पश्चिम की ओर 'सिन्धुद्वार' पर गये। वहाँ समुद्र में प्रवेश कर उन्होंने प्रभास नामक देव को जीता। उसने सन्तानक नाम एक मोतियों की माला, सफेद छत्र तथा और भी बहुत से वस्त्राभरण श्रीकृष्ण के भेंट किये।

यहाँ से सिन्धु नदी के किनारे-किनारे जाते हुए कृष्ण ने

पश्चिम के राजाओं को जीता और उनसे अनेक प्रकार के जवाहरात भेंट लेकर वे पूर्व की ओर बढ़े। इधर उन्होंने विजयार्द्ध पर्वत की दोनों श्रेणी के राजाओं को जीतकर उनसे नाना धन, रत्न तथा देवांगना-सी सुन्दरी कन्याओं को प्राप्त किया।

इसके बाद रास्ते में अन्य अनेक राजाओं को जीतते हुए और उनसे भेंट में प्राप्त रत्नादि श्रेष्ठ वस्तुओं को लेते हुए वे म्लेच्छ खण्ड में आये। म्लेच्छ खण्ड को भी जीतकर वहाँ के राजाओं से उन्होंने बहुत धन-दौलत प्राप्त की।

इस प्रकार नवमें नारायण, प्रतिनारायण कृष्ण और बलदेव पुण्य के उदय से विद्याधर और नर-राजाओं को अपने वश करते हुए आधी पृथ्वी की लक्ष्मी के स्वामी हुए।

इस प्रकार विजय लाभ कर दोनों भाई यादव-राजाओं और अपनी सब सेना के साथ बड़े आनन्द और सन्तोष से द्वारिका की ओर लौटे। उनके आगमन से द्वारिका बहुत सजाई गयी। घर-घर पर ध्वजायें और तोरण टाँगे गये। बड़े भारी उत्सव के साथ उन्होंने द्वारिका में प्रवेश किया।

उस समय वे दोनों भाई ऐसे जान पड़ते थे—मानों चलते-फिरते नीलगिरि और कैलाशपर्वत हैं। मोतियों की माला जिन पर लटक रही है, ऐसे छत्र और ध्वजाओं से वे शोभित थे। उन पर सुन्दर चँवर ढुरते जाते थे। चारण लोग उनके उज्ज्वल यश का बखान करते जा रहे थे।

देव, विद्याधर और अन्य बड़े-बड़े राजे-महाराजे उनकी सेवा में उपस्थित थे। उनके मुख-कमल खिल रहे थे। उनकी ध्वजायें

सिंह और गरुड़ के चिह्न से शोभित थीं। उन्हें देखकर लोग बड़े हर्षित होते थे। सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्राभरण पहने तथा खूब दान करते हुए वे ऐसे दीख पड़ते थे—मानों दो नये और चलने-फिरनेवाले कल्पवृक्ष आये थे।

इसके बाद द्वारिका में सब राजे, देव तथा विद्याधरों ने मिलकर बड़े प्रेम से उन्हें दिव्य सिंहासन पर बैठाया और फिर जय-जयकार, गीत, संगीत, गाजे-बाजे के साथ पवित्र जल के भरे एक हजार आठ सोने के सुन्दर कलशों से उनका अभिषेक किया। इसके बाद 'इन त्रिखण्ड-पृथ्वीमण्डल के स्वामी को हम अपना प्रभु स्वीकार करते हैं', ऐसा कहकर उन सबने बड़े आनन्द से उन्हें वस्त्राभूषण धारण कराये और इनके पट्ट बन्ध बाँधा। सत्य ही है—पुण्य से जीवों को क्या प्राप्त नहीं होता?

★ ★ ★

अब उनके वैभव का कुछ वर्णन किया जाता है। उनकी आयु एक-एक हजार वर्ष की थी। उनका शरीर दस धनुष-लगभग पैंतीस हाथ ऊँचा था। कृष्ण का शरीर नीला और बलदेव का सफेद था। गणबद्ध नाम के कोई आठ हजार देवता और सब विद्याधर, तथा सोलह हजार मुकुटबन्ध राजे और त्रिखण्ड में रहनेवाले अन्य सब देवगण उनकी सदा सेवा किया करते थे।

महात्मा बलदेव के रत्नमाला, गदा, हल और मूसल, ये चार महान रत्न थे। इनके एक-एक हजार देवता रक्षक थे। और आठ हजार बड़ी खूबसूरत, पुण्यवती और शील इत्यादि गुणों से युक्त स्त्रियाँ थीं।

श्रीकृष्ण को चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दण्ड और सुदण्ड,

ये सात रत्न प्राप्त थे। शत्रुओं को ये क्षणभर में नष्ट करनेवाले थे। इनके भी एक-एक हजार देव रक्षक थे।

कृष्ण के आठ मनोहर पट्टरानियाँ थीं। उनके नाम थे—सत्यभामा, रुक्मणी, जांबवती, सुशीला, लक्ष्मणा, गौरी, गान्धारी और पद्मावती। कृष्ण की सोलह हजार रानियों में से ये आठ प्रधान रानियाँ थीं। इन हाव-भाव-विलास तथा रूप-सौभाग्य की खान अपनी सब रानियों से कृष्ण लता-मण्डित कल्पवृक्ष की तरह शोभा पाते थे।

अब इन दोनों भाइयों के इकट्ठे वैभव का वर्णन किया जाता है। श्रेष्ठ सम्पदा से भरे हुए कोई सोलह हजार तो बड़े-बड़े इनके देश थे; 9850 द्रोण थे; नानारत्नों से भरे 2500 पत्तन थे; पर्वतों से घिरे हुए और मनचाही वस्तु जहाँ प्राप्त हो सकती है ऐसे 12000 कर्वट थे और बावड़ी, तालाब, बाग आदि से शोभित 12000 ही मटंब तथा 8000 खेटक थे; लोगों के पुण्य से सदा छहों ऋतु के फल-फूलों से युक्त 48 करोड़ *गाँव थे; सुन्दर और बड़े-बड़े ऊँचे 42 लाख हाथी थे; और 42 लाख ही रथ थे; अनेक देशों के पंचरंगी 9 करोड़ घोड़े और 42 करोड़ खड्गधारी वीरगण थे। इत्यादि पुण्य से प्राप्त सम्पदा का सुख भोगते हुए कृष्ण-बलदेव बड़ी कुशलता से प्रजा-पालन करते थे।

उन्होंने सब शत्रुओं को जीत लिया था। यादववंश रूपी आकाश

* जिसके चारों ओर बाढ़ लगी हुई हो उसे 'ग्राम' या 'गाँव' कहते हैं। जिसके चारों ओर चार बड़े दरवाजेवाला कोट हो उसे 'नगर' कहते हैं। नदी और पर्वत से जो घिरा हो वह 'खेट' कहलाता है। पर्वत से घिरे हुए को 'कर्वट' कहते हैं। पाँच गाँवों से युक्त 'मंटब' कहलाता है। जिसमें रत्न उत्पन्न होते हों, वह 'पत्तन' है। समुद्र किनारे से घिरे हुए को द्रोण कहते हैं। पर्वत पर बसे हुए को 'संवाहन' कहा है।

के वे बड़े प्रतापी सूरज और चाँद थे। सब सुर-असुर जिनके पाँव पूजा करते हैं, उन नेमिजिन से मण्डित होकर वे बड़ी शोभा को प्राप्त होते थे। एक को एक प्राणों से अधिक प्यारे थे। त्रिखण्ड का राज्य वे बड़ी अच्छी तरह करते थे।

उनका परिवार बहुत बड़ा था। दिव्य-रत्नमयी मुकुट को पहने हुए वे बड़े सुन्दर शोभते थे। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ धन-दौलत उन्हें प्राप्त थी। वे बड़े सुन्दर भाग्यवान थे। इस प्रकार पूर्व पुण्य से प्राप्त भोगों को वे बड़े आनन्द से भोगते थे। वे दोनों भाई ऐसे जान पड़ते थे—मानो बलवान दिव्य शरीरधारी इन्द्र और उपेन्द्र पृथ्वी को भूषित करने को स्वर्ग से आये हुए हैं।

ऊपर जिस श्रेष्ठ सम्पदा का वर्णन किया गया, वह तथा अन्य भी जगत के हित की सामग्री जिसके द्वारा प्राप्त हो सकती है, वह जिनशासन चिरकाल तक बढ़े।

जो त्रिलोक के गुरु हैं, जिन्हें देवता नमस्कार करते हैं, जिनने मोक्ष देनेवाले धर्म का भव्यजनों को उपदेश किया, मुनि लोग जिन्हें प्रणाम करते हैं, जिनके द्वारा सत्पुरुष सुखलाभ करते हैं, जिनका सुयश जगत में व्याप्त है और जो अच्छे-अच्छे निर्मल गुणों के धारक हैं, वे नेमिनाथजिन सुख देते हुए संसार में चिरकाल तक रहें।

इति अष्टमः सर्गः

नौवाँ अध्याय

नेमिजिन का निष्क्रमण (तप) कल्याण

शरद ऋतु का समय था। सरोवर सत्पुरुषों के वचन समान निर्मल जल से भरे हुए थे। उनमें कमल फूल रहे थे। कृष्ण अपनी रानियों के साथ मनोहर नामक सरोवर पर जल-विहार करने को गये। वहाँ उन्होंने बड़ी देर तक जलक्रीड़ा की। कृष्ण द्वारा जल छींटी गईं स्त्रियाँ ऐसी देख पड़ती थीं—मानों नीले मेघ में बिजलियाँ चमक रही हैं। और उधर जो रानियों ने कृष्ण पर जल छींटा उससे वे ऐसे देख पड़े जैसे मेघमाला ने नीलगिरि को सींचा हो। जल छींटने के कारण किसी रानी के मोतियों के हार से टपकती हुईं जल की बूँदें रत्न-वर्षा के सदृश जान पड़ती थीं।

कृष्ण द्वारा छींटे गये जल की चोट से किसी रानी के कर्णफूल गिर पड़े-मानों कृष्ण की जड़ मार से वे शर्मिन्दा होकर गिर पड़े हैं। 'संस्कृत में 'ड' 'ल' में भेद नहीं माना जाता। इस कारण ऊपर एक जगह 'जल' और एक जगह 'जड़' अर्थ किया गया है।' जो रानियाँ बहुत महीन वस्त्र पहने हुईं थीं, वे जल छींटने से फेनसहित कमलिनियों के समान देख पड़ती थीं।

उनके वक्षस्थलों पर जो केशर वगैरह लगी हुई थी, वह सब सरोवर में धुल गयीं। जान पड़ा—सरोवर पीले वस्त्र से ढँक दिया गया। चन्द्रमा के समान गौरवर्ण बलदेव ने भी इसी सरोवर पर आकर अपनी रानियों के साथ जल-क्रीड़ा की। ये लोग जल-क्रीड़ा कर रहे थे, इसी समय सत्यभामा और नेमिजिन में जलकेलि

होने लगी। अन्त में नेमिजिन जब जल से बाहर हुए, तब उन्होंने सूखा वस्त्र पहनकर उस गीले वस्त्र को सत्यभामा के पास फेंक दिया और हँसी-हँसी में कह दिया कि जरा इसे धो तो दो।

यह देखकर सत्यभामा अभिमान में आकर नेमिजिन से बोली—क्यों आप नाग शैय्या पर चढ़े हैं ? तथा आपने शांर्ग नामक धनुष चढ़ाया है और शंख पूरा है ? जो मैं आपका वस्त्र धो दूँ। इस पर सत्यभामा से नेमिजिन ने कहा—क्यों, क्या कोई यह बड़े साहस का काम है ?

सत्यभामा बोली—यदि आप इसे कोई बड़े साहस का काम नहीं बताते हैं तो जरा आप भी तो इन सब कामों को कर दीजिए। सत्य है कोई-कोई मूर्ख स्त्री गर्व से ऐसी फूल जाती है कि फिर उसे कार्य-अकार्य और हित-अहित का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता है। जिन्हें देवता, राजे-महाराजे पूजते हैं, जो देवों के भी देव और जगद्गुरु हैं, और जिनके पाँवों की धूल भी यदि सिर पर लगा ली जाए तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं, उनका कोई काम क्या न कर देना चाहिए ? इन्द्रादि देवता भी जिनकी सेवा करने की निरन्तर इच्छा किया करते हैं, उनकी सेवा निधि की तरह बिना पुण्य के प्राप्त नहीं होती।

सत्यभामा के ऐसे वचन सुनकर नेमिजिन ने कहा—अच्छी बात है, मैं अभी ही जाकर उन सब कामों को करता हूँ। इतना कहकर नेमिजिन शहर में आ गये। इसके बाद उन्होंने नागमणि के तेज से प्रकाशित नागशैय्या पर चढ़कर उस बिजली के सदृश धनुष को चढ़ा दिया और जिसके शब्द से सब दिशायें शब्दपूर्ण हो जाती हैं, उस शंख को भी पूर दिया।

उनके उस धनुष की टंकार और शंखनाद से पृथ्वी काँप गयी। देवतागण सन्देह में पड़ गये। आकाश में चाँद, सूरज, विद्याधर, व्यन्तरदेवता आदि भय से घबराकर परस्पर में पूछने लगे कि 'यह क्या हुआ ?' 'यह क्या हुआ ?' इसके बाद वे सब मिलकर पृथ्वी पर आये। उनके आने से पृथ्वी चल-विचल हो गयी। पर्वत हिल उठे। समुद्र ने मर्यादा छोड़ दी। दिग्गज स्तम्भों को उखाड़-उखाड़कर भाग छूटे—जैसे दुष्ट कुपुत्र माता-पिता और गुरुजन की आज्ञा को तोड़कर भाग जाते हैं। घोड़े भय से घबराकर चारों दिशाओं में भाग गये। प्रजा किंकर्तव्यमूढ़ हो गयी।

द्वारिका में इस प्रकार घबराहट और हलचल देखकर कृष्ण भी भय से कुछ आकुल से हो गये। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। नौकरों से उन्होंने कहा—जाकर देखो कि यह हलचल क्यों मची हुई है। उन्होंने देख आकर कृष्ण से कहा—

महाराज! यह सब करतूत अपने सुरासुर-पूज्य नेमिकुमार की है। उन्होंने आयुध-गृह में जाकर सहज ही नागशैय्या पर चढ़कर धनुष चढ़ा दिया और शंख पूर दिया। इसी कारण यह सब लोक काँप उठा है।

महाराज! महारानी सत्यभामाजी ने उन्हें अन्य साधारण मनुष्य की सदृश समझकर उनकी धोती को न धो दिया, किन्तु गर्व में आकर उल्टा उनसे कहा—क्या आपने नागशैय्या पर आरोहण किया है, धनुष चढ़ाया है और शंख पूरा है जो मैं आपका कपड़ा धो दूँ?

महारानीजी के इन मर्मभेदी वचनों को सुनकर नेमिजिन को

अच्छा न जान पड़ा। इसी कारण उन्होंने यह सब किया है। छिपाने की बातों को भी मूर्ख स्त्रियाँ क्रोध में आकर सब पर प्रगट कर देती हैं।

यह सुनकर कृष्ण बड़े घबराये। उन्होंने उसी समय कुसुम-चित्रा नामक सभा में जाकर बलदेव से कहा—कुमार नेमिजिन बड़े बलवान और तेजस्वी हैं। वे युद्ध में आपको और मुझे बात की बात में जीतकर अपना सब राज्य क्षण में छीन लेंगे। इस कारण कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वे किसी निर्जन वन में भेज दिये जायें।

यह सुनकर बलदेव बोले—भाई सुनो, नेमिकुमार चरमशरीरी हैं, जगद्गुरु हैं, समुद्रविजय महाराज के वंशाकाश के चन्द्रमा हैं, मोक्ष जानेवाले हैं, देवतागण तक उनकी पूजा-भक्ति करते हैं, और वे बड़े ही मन्दरागी हैं, इस कारण वे किसी का कुछ बिगाड़ नहीं करेंगे। यह राज्य उन्हें तो तृण से भी तुच्छ जान पड़ता है। वे तो हम ही लोग ऐसे हैं, जिन्हें राज्य एक बड़े भारी महत्त्व की वस्तु मालूम देती है। वे तो थोड़ा सा भी कोई ऐसा वैराग्य का कारण देख लेंगे तो उसी समय दीक्षा लेकर योगी बन जायेंगे।

★ ★ ★

यह सुनकर मायावी कृष्ण राज्य के लोभ से उग्रवंश के सूरज उग्रसेन महाराज के पास गये और कपट से वे उग्रसेन से बोले—

महाराज! मेरी इच्छा है कि आपकी सुन्दरी राजकुमारी राजमती का नेमिजिन के साथ विवाह कर दिया जाये। इस पर उग्रसेन ने कहा—

हे त्रिखण्डेश! हे माधव! आप हमारे पालनकर्ता प्रभु हैं। इस कारण त्रिलोक में जो अच्छी चीज़ है, न्याय से वह आपकी ही है। उसके लिये चरण-सेवकों को पूछने की कोई जरूरत नहीं दीख पड़ती। और इस पर भी 'वर' त्रिजगतस्वामी नेमिजिन सदृश हैं, तब तो कहना ही क्या? ऐसा गुणवान वर बिना पुण्य के थोड़े ही मिल जाता है। उन त्रिलोकनाथ के लिये मैं बड़ी प्रसन्नता से अपनी राजमती को देता हूँ।

उग्रसेन महाराज के अमृत से वचन सुनकर कृष्ण बड़े सन्तुष्ट हुए। तब उन्होंने उसी समय पँचरंगी रत्नों की कान्ति से सब ओर प्रकाश कर देनेवाले सोने की सुन्दर अँगूठी को राजमती की उँगली में पहना दिया।

इसके बाद ही कृष्ण ने बड़े दान-मानपूर्वक नेमिजिन के विवाह की तैयारी की। रत्नों की पच्चीकारी के काम का मण्डप तैयार किया गया। उसमें सोने के खम्भे लगाये गये। अच्छे-अच्छे सुन्दर और बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों से वह सजाया गया। उसमें जगह-जगह जो छत्र, चँवर, मोतियों की झालर, फूलमाला आदि वस्तुएँ लगायी गयीं, उसे देखकर सबका मन बड़ा मोहित होता था। वह सुन्दर मण्डप नेमिजिन के यश-पुंज के समान दीख पड़ता था।

उसमें जो सदा दान दिया जाता था—उससे वह कल्पवृक्ष का जान पड़ता था। उसमें एक बड़ी लम्बी-चौड़ी वेदी बनी हुई थी। उस पर मोतियों और रत्नों की धूल से रंगावली बनायी गयी थी। जिसे देखकर लोगों को बड़ा आनन्द होता था, वह वेदी ऐसी जान पड़ती थी, मानों उसे स्वयं लक्ष्मी ने आकर बनायी है।

उस मण्डप में सत्पुरुषों के मन-समान निर्मल एक बड़ा लम्बा-चौड़ा सोने का पट्टा रखा गया। उसके चारों ओर मंगलद्रव्य लगाये गये। देवांगना और स्त्रियाँ वहाँ गीत गाने बैठीं।

उस समय नाना प्रकार उत्सव के साथ परिवार के लोगों ने सुरासुर-पूज्य श्रीनेमिकुमार और राजमती को उस पट्टे पर बैठाया। खूब गाजे-बाजे और जय-जयकार के साथ उन वर-वधू ऊपर केसर से रंगे चावल क्षेपण कर उन्हें आशीर्वाद दिया गया।

उस उत्सव में दिव्य वस्त्राभरण पहने हुए वे वर-वधू लक्ष्मी और पुण्य के पुंज-समान जान पड़े। यह सब क्रिया हुए बाद तीसरे दिन पाणि-जलदान करना ठहरा। उस समय आगे कुगति में जानेवाले लोभी कृष्ण ने राज्य छिन जाने के डर से सोचा—इस समय मैं नेमिजिन को कोई ऐसा वैराग्य का कारण दिखलाऊँ, जिससे वे विषयों से उदासीन-विरक्त होकर दीक्षा ले जायें।

यह मन में सोचकर कृष्ण ने बहेलियों से बहुत मृगों को मँगवा कर एक जगह इकट्ठे करवा दिये और उनके चारों ओर काँटे की बाड़ लगवा दी। और उन लोगों से कृष्ण ने कह दिया कि देखो, नेमिकुमार इस ओर घूमने को आवे, तब तुम उनसे कहना कि आपकी शादी में जो म्लेच्छ लोग आये हुए हैं, उनके लिये कृष्ण महाराज ने इन मृगों को मँगवाया है।

इतना कहकर कृष्ण चले गये। अज्ञानीजन राज्य-लोभ से अच्छे बनकर कौन पाप नहीं कर डालते! जैसा कि कृष्ण ने नेमिजिन से छल किया।

दूसरे दिन नेमिजिन अच्छे वस्त्राभरण, फूलमाला आदि से

खूब सजकर घूमने को निकले। उनके साथ हाथी, घोड़े और बहुत से वीरगण थे। बड़े-बड़े राजाओं-महाराजाओं के राजकुमार उन्हें घेरकर चल रहे थे।

नेमिजिन चित्रा नामक रत्नमयी पालकी में बैठे हुए थे। छत्र, ध्वजायें उन पर शोभा दे रही थीं। चन्द्रमा की कान्ति-समान उज्ज्वल चँवर उन पर ढुरते जा रहे थे। चारण और गन्धर्वगण उनका यश गाते जाते थे। नाना तरह के बाजों के शब्द से दिशायें शब्दमय हो गयी थीं। 'जय नन्द जीव' आदि जय-जयकार हो रहा था। अपनी श्रेष्ठ-शोभा से जिनने इन्द्र को भी जीत लिया था।

नेमिजिन वहाँ आये जहाँ कृष्ण ने मृगों को इकट्ठा करवा रखा था। उन्होंने देखा कि बेचारे मृग भूख-प्यास के मारे मर रहे हैं— बिलबिला रहे हैं और मूर्च्छा खा-खाकर इधर-उधर गिर-पड़ रहे हैं।

उनकी यह कष्ट-दशा देखकर भगवान ने उनके रक्षक लोगों से पूछा—ये मृग यहाँ क्यों रोके गये और क्यों इन्हें इस तरह इकट्ठे बाँधकर कष्ट दिया जा रहा है ? वे लोग हाथ जोड़कर दयासागर भगवान से बोले—

प्रभो ! आपके ब्याह में जो म्लेच्छ राजे लोग आये हैं, उनके लिये कृष्ण महाराज ने इन्हें यहाँ इकट्ठे करवाये हैं। उनके इन वचनों को सुनकर नेमिजिन का मनरूपी वृक्ष दयाजल से लहलहा उठा।

उनने सोचा—यह विपरीत, महानरक में ले जानेवाला पशु-वध हमारे कुल में आजतक कभी नहीं हुआ। यह पापी भीलों का काम है।

इसके बाद उन्होंने अवधिज्ञान से जान लिया कि यह सब छल-कपट कृष्ण ने किया है। उसे इस बात का बड़ा डर सा हो गया है कि कहीं नेमिजिन मेरा राज्य न छीन लें और इसी कारण उसने ऐसे बुरे काम को भी कर डाला।

इस असार संसार को धिक्कार है, जिसमें मिथ्यात्व-विष चढ़े हुए तृष्णातुर लोग सैकड़ों पाप कर डालते हैं और क्रोध-लोभ-मान-माया आदि से ठगे जाकर हिंसा, झूठ, चोरी इत्यादि करने लगते हैं। उनके परिणाम बड़े खोटे और सदा पापरूप रहते हैं। वे फिर पंचेन्द्रियों के विषयों और सात व्यसनों में फँसकर दु:ख के समुद्र घोर नरक में पड़ते हैं।

वहाँ वे काटे जाते हैं, छेदे जाते हैं, तीखे आरे से चीरे जाते हैं, कढ़ाई में तले जाते हैं, शूली पर चढ़ाये जाते हैं, घनों से कूटे जाते हैं, भाड़ में भूने जाते हैं, सेमल के काँटेदार वृक्ष की नोख से घिसे जाते हैं, भूखे-प्यासे मारे जाते हैं और ज्वर आदि रोगों द्वारा कष्ट दिये जाते हैं।

इस प्रकार पूर्वजन्म के बैर से संक्लिष्ट-असुर-जाति के दुष्ट देवों द्वारा दिये गये नाना तरह के दु:खों को चिरकाल तक पाप के उदय से वे सहन करते रहते हैं।

इसके बाद पशुगति में भी उन्हें वध-बन्धन आदि का महान दु:ख भोगना पड़ता है। मनुष्यगति में भी सुख नहीं है। वहाँ वे जन्मान्तर की पापरूपी आग में तप्त होकर अच्छी वस्तु के नष्ट हो जाने और बुरी वस्तु के प्राप्त होने पर महान दु:ख उठाते हैं। किसी के पुत्र नहीं, तो किसी को स्त्री नहीं। कोई दरिद्री है, तो

कोई रोगी है। किसी के पास खाने को नहीं, तो किसी के पास पहनने को नहीं है।

इस प्रकार सबको किसी न किसी प्रकार का दु:ख है ही। देव बेचारे मानसिक दु:ख से दु:खी हैं। दूसरे देवों की सम्पदा देखकर मिथ्यादृष्टि देवों को बड़ा दु:ख होता है।

यह शरीर मल-मांस-रक्त आदि से भरा हुआ हड्डियों का एक पिंजरा है। इसमें पैदा होनेवाले कफ आदि को देखकर घृणा होती है। यह बड़ा ही घिनौना, नारा रोगों का घर, सन्ताप उत्पन्न करनेवाला और पाप का कारण है। इसकी कितनी रक्षा करो, कितना ही घी-दूध-मिष्ठान्न आदि से इसे पोसो तो भी नष्ट हो जायेगा। यह बड़ा ही निर्गुण है। दुर्जन की तरह यह आत्मा का कभी न हुआ, न होगा।

ये पंचेन्द्रियों के विषय-भोग ठग के भी महा ठग हैं। अग्नि जैसे ईंधन से तृप्त नहीं होती, उसी तरह इन विषयों से जीव की तृप्ति नहीं होती। जब संसार की यह दशा है, तब मुझे राग और कर्म-बन्ध के कारण विवाह करके ही क्या करना है? वह तो सर्वथा त्यागने ही योग्य है।

इस प्रकार वैराग्यभावना का विचार कर लोक-श्रेष्ठ नेमिजिन आगे न जाकर वहीं से अपने महल लौट गये। त्रिलोकीनाथ महल पर जाकर भी निश्चिन्त न बैठ गये। वहाँ उन्होंने बारह भावनाओं पर विचार किया।

★ ★ ★

संसार में धन-दौलत, पुत्र-स्त्री, भाई-बन्धु आदि कोई स्थिर

नहीं हैं—सब पानी के बुदबुदे के समान क्षणमात्र में नष्ट होनेवाले हैं। सम्पदा चंचल बिजली की तरह और जवानी हाथ के छेदों में से गिरनेवाले जल के समान देखते-देखते नष्ट हो जाएगी।

जो आज अपने बन्धु हैं-हितू हैं, कल जिस कारण से वे ही सब शत्रु बन जाते हैं, वह राज्य महादु:ख देनेवाला और क्षणभर में नष्ट होनेवाला है। अज्ञानी मूर्ख लोग तो भी इन सबको नित्य-नष्ट न होनेवाले समझते हैं। जैसे—धतूरा खानेवाले को सब सोना ही सोना दिखता है।

1- अनित्य-भावना

संसार में इस जीव को देवी-देवता, इन्द्र धरणेन्द्र वगैरह कोई नहीं बचा सकता। स्वयं उन्हें ही आयु के अन्त में मौत के मुँह में पड़ना पड़ता है। तब अन्य साधारण जीवों का तो कहना ही क्या? माता-पिता, भाई-बन्धु आदि प्रिय जन के रहते भी जहाँ आयु पूरी हुई कि उसी समय मौत के घर पहुँच जाना पड़ता है-उसे कोई अपनी शरण में रखकर नहीं बचा सकता।

हाँ, इस त्रिभुवन में भव्यजन के लिए एक पवित्र शरण है और वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र का लाभ। इसके द्वारा वे जिस मोक्ष को प्राप्त करेंगे, फिर उन्हें कभी किसी की शरण ढूँढ़ना न पड़ेगी।

2- अशरण-भावना

यह संसार-वन मिथ्या-मोहरूपी अन्धकार से व्याप्त है, क्रोधरूपी व्याघ्रों का घर है, मानरूपी बड़े भारी दुर्गम पर्वत से युक्त है, मायारूपी गहरी नदी इसमें बह रही है, लोभरूपी सैकड़ों सर्प इसमें उधर-उधर फिर रहे हैं, जन्म-जरा-मरण-रोग आदि भीलों से यह डरावना है, नीच-ऊँच-कुलरूपी वृक्षों से पूर्ण है,

दुर्जनरूपी काँटों से युक्त है, तृष्णारूपी चीते जिसमें इधर-उधर घूम रहे हैं और जो मत्सरतारूपी हाथियों से व्याप्त है, ऐसे संसारवन में रत्नत्रयरूपी सुखमार्ग को छोड़ देनेवाले मूर्खजन दु:साध्य पर श्रेष्ठ मोक्षमार्गरूप नगर को कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं हो सकते। इसलिए उन्हें रत्नत्रयमार्ग नहीं छोड़ना चाहिए।

3- संसार-भावना

यह जीव एक ही पुण्य करता है, एक ही पाप करता है और उनका सुख-दु:खरूप फल भी एक ही भोगता है। माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, सज्जन-दुर्जन आदि कोई भी इस संसार में जीव के साथ नहीं जाता है। पाप से एक ही नरक जाता है, एक ही पशुगति में पैदा होता है, एक ही नीच-कुल में जन्म लेता और पुण्य से सुकुल में उत्पन्न होता है, वह भी एक ही। न यही, किन्तु जो हितकारी दो प्रकार का रत्नत्रय आराधकर मुक्तिकान्ता का वर होता है, वह सिद्ध भी एक ही जीव होता है। **4- एकत्व-भावना**

यह जीव कभी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में, कभी दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में और कभी मनुष्यगति में ऊँचे-नीचे कुल में पैदा हुआ। कभी यह पाप से नरक गया और कभी पुण्य से स्वर्ग में देव हुआ। आठ कर्मों के सम्बन्ध से यह चारों गतियों में दूध-पानी के समान एकसाथ मिलकर रहा।

कभी पुण्य के उदय से इसे सुख प्राप्त हुआ और कभी पाप से दु:ख भोगना पड़ा। राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ आदि से यह बड़ा ही मलिन रहा। यह सब कुछ होने पर भी यह उन

वस्तुओं से मिल नहीं गया–उनरूप नहीं हो गया। अपने स्वरूप से यह सुवर्ण–पाषाण की तरह सदा ही पृथक् रहा–अन्यरूप ही रहा। **5- अन्यत्व-भावना**

यह शरीर प्रगट ही अपवित्र है। इसका सम्बन्ध पाकर चन्दन, केसर, फूलमाला, वस्त्र आदि श्रेष्ठ वस्तुएँ भी अपवित्र हो जाती हैं। जैसे - लहसुन की गन्ध से अन्य चीज़ें दुर्गन्धित हो जाती हैं। संसार में आत्मा जो निरन्तर दु:ख उठाया करता है, उसका कारण–आधार भी यही शरीर है। जैसे - जल का आधार या कारण पात्र होता है।

इस प्रकार अपवित्र शरीर में मूर्खजन प्रेम करते हैं और फिर धर्मरहित होकर अनन्त दु:ख भोगते हैं। **6- अशुचि-भावना**

छिद्रसहित नाव में जैसे बराबर पानी आया करता है, उसी तरह संसार में इस जीव के पाँच—मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पच्चीस कषाय और पन्द्रह योगों द्वारा निरन्तर आस्रव आता रहता है। यह बड़ा दु:ख का कारण है। इसके द्वारा आत्मा लोहे के गोले की तरह नीचे ही नीचे जाता है–कुगतियों में जाता है। उनसे फिर इसे अनन्त दु:ख भोगना पड़ते हैं।

इस कारण मिथ्यात्व को आदि लेकर जो सत्तावन प्रकार के आस्रव जीवों को दु:ख देनेवाले हैं, उन्हें जानना चाहिए और जानकर उनके रोकने का यत्न करना चाहिए। **7- आस्रव-भावना**

संवर, जीवों को सैकड़ों सुखों का देनेवाला है। कर्मों के आस्रव रोकने को संवर कहते हैं। वह संवर मन–वचन–काय से तीन गुप्ति, पाँच समिति, दस धर्म, बारह भावना, परीषह–जय

और पाँच प्रकार चारित्र के धारण करने से होता है। पानी रोकने को जैसे पुल बाँधा जाता है, उसी तरह कर्मास्त्रव रोकने को संवर की आवश्यकता है। **8- संवर-भावना**

कर्मों के थोड़े-थोड़े नष्ट होने को निर्जरा कहते हैं। वह सकाम-निर्जरा और अकामनिर्जरा ऐसे दो प्रकार की है। सकामनिर्जरा मुनियों के होती है और अन्य लोगों के अकामनिर्जरा। बाह्य तप और अभ्यन्तर तप द्वारा कायक्लेश सहकर कर्मों की निर्जरा करनी चाहिए।

सब तपों में उपवास श्रेष्ठ तप है। जैसे - सारे शरीर में सिर। जिसने सन्तोषरूपी रस्सी से मन-बन्दर को बाँधकर सम्यक्त्वसहित तप तपा, संसार में वही पुण्यवान है। तप चिन्तामणि है। तप कल्पवृक्ष है। ज्ञानी लोगों ने उस तप का स्वरूप इच्छा का रोकना कहा है। **9- निर्जरा-भावना**

जिसमें जीवादिक पदार्थ सदा लोके जायें-देखे जायें, वह लोक है। यह लोक अनादिनिधन और अनन्त है। उसके अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक ऐसे तीन भेद हैं। यह चौदह राजू ऊँचा है। इसका घनाकार ३४३ राजू है। इसका आकार कमर पर हाथ धरकर पाव पसारे खड़े हुए मनुष्य का-सा है।

यह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन छह द्रव्यों से भरा हुआ है। इसे घनवात, घनोदधिवात और तनुवात ये तीन वातवलय घेरे हुए हैं। इसका न कोई बनानेवाला है और न कोई नाश करनेवाला है। आकाश की तरह यह भी सदा से है।

इसके अन्त-शिखर पर सदा शुद्ध सिद्ध परमात्मा सम्यक्त्वादि

आठ गुणसहित विराजे हुए हैं। इस प्रकार इस लोक का ध्यान-विचार वैराग्य बढ़ाने के लिये भव्यजनों को अपने पवित्र मन में सदा करना चाहिए।

10- लोक-भावना

'बोधि' नाम रत्नत्रय का है। इस रत्नत्रय में पहला सम्यग्दर्शन बड़ा ही दुर्लभ है। जीव, अजीव आदि पदार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसे नि:शंकित आदि आठ अंगसहित धारण करना चाहिए। यह रत्न की तरह सब व्रत और सब क्रियाओं का भूषण है।

ज्ञान आठ प्रकार का है। यह नेत्र-सदृश पदार्थों का ज्ञान कराता है। चारित्र तेरह प्रकार है। यह व्यवहाररत्नत्रय कहलाता है। कर्म-मलरहित शुद्ध आत्मा निश्चयरत्नत्रयरूप है।

11- बोधि-भावना

चतुर्गति में गिरते हुए जीवों को न गिरने देकर उन्हें उत्तम सुख-स्थान में रख दे, वह धर्म है। संसार में इसका लाभ बड़ा दुर्लभ है। सब प्रमादों को छोड़कर दशलक्षणरूप इसी धर्म का सदा आराधन करना चाहिए। अथवा वस्तु के स्वभाव को, जीवों की श्रेष्ठ दया को और ऊपर कहे हुए रत्नत्रय को भी धर्म कहते हैं। इस प्रकार धर्म का संक्षेप स्वरूप कहा गया।

यह सब प्रकार के सुख और स्वर्ग-मोक्ष का देनेवाला है। भव्यजन को इस धर्म का सदा सेवन करना उचित है।

12- धर्म-भावना

इस प्रकार अनुप्रेक्षा इत्यादि का विचार करते हुए त्रिजगहितकारी नेमिजिन ने अपने पूर्वजन्म का भी हाल जान लिया।

★ ★ ★

इसी समय पाँचवें ब्रह्मस्वर्ग के अन्त में रहनेवाले लोकान्तिक नामक देवतागण जय-जयकार के साथ भगवान के ऊपर फूलों की वर्षा करते हुए वहाँ आ गये। बड़ी भक्ति से वे भगवान को सिर नवाकर बोले—

हे भगवन! हे भुवनोत्तम, सत्य ही इस दुर्गत संसार वन में कहीं भी सुख नहीं है। सुख तो उसी में है, जिसे आपने मन में करना विचारा है। प्रभो! आप संसार-समुद्र से पार करनेवाले संयम को ग्रहण कीजिए और फिर केवलज्ञान प्राप्त करके जीवों को बोध दीजिए। भगवान! आप स्वयंसिद्ध जिन हैं। हम सरीखे क्षुद्रजन आपको मोक्षमार्ग क्या बात सकते हैं।

परन्तु नाथ! आपकी चरण-सेवा करने का हमारा नियोग है, वह हमें पूरा करना पड़ता है। प्रभो! संसार में कोई ऐसा वक्ता या उपदेशक नहीं जो सूरज को प्रकाश करना बतला सके। उसी तरह आप-सदृश ज्ञानियों को कौन प्रबोध दे सकता है?

हे जगद्बन्धो! आप तो स्वयं ही केवलज्ञानी-भास्कर होकर उलटा हमी को प्रबोध दोगे। इस प्रकार भक्ति से भगवान की प्रार्थना कर वे सब देवतागण अपने-अपने स्थान चले गये।

★ ★ ★

इनके बाद ही अन्य देवतागण तथा विद्याधर-राजे इत्यादि आये और भक्ति से प्रणाम कर उन्होंने भगवान को जय-जयकार के साथ सिंहासन पर बैठाया। नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। देवांगना सुन्दर गीत गाने लगीं। देवताओं ने इसी समय नाना तीर्थों के जल से भरे सौ सुवर्ण-कलशों से भगवान का अभिषेक किया।

इसके बाद उन्होंने चन्दन, केशर आदि सुगन्धित वस्तुओं का भगवान के शरीर पर लेपकर उन लोक-भूषण जिन को सुन्दर वस्त्र और बहुमूल्य आभूषणों से शृंगारा, उन्हें फूलों की मनोहर माला पहनाई। इस प्रकार शृंगारे हुए लोकश्रेष्ठ भगवान ऐसे जान पड़े-मानों मुक्तिकान्ता के वर बनकर, वे जा रहे हैं।

इसी समय देवताओं ने भगवान के सामने 'देवकुरु' नाम रत्नमयी पालकी लाकर रखी। संयम ग्रहण की इच्छा कर भगवान उसमें बैठे। देवगण उस पालकी को उठाकर चले। भगवान के आगे-आगे अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। छत्र उन पर शोभित था। चँवर ढुर रहे थे।

अनेक राजे-महाराजे तथा विद्याधर लोग भगवान के साथ में चल रहे थे। देवगण त्रिभुवननाथ जिन को घने छायादार वृक्षों से शोभित 'सहस्त्राम्र वन' नामक बाग में ले गये। सुन्दर वचनों से सब लोगों को प्रसन्न करनेवाले भगवान वहाँ एक सुन्दर सजाई गयी पवित्र शिला पर पद्मासन विराजे।

छठे उपवास के दिन चैत्र सुदी छठ को चित्रा नक्षत्र में सन्ध्या समय अन्य एक हजार राजाओं के साथ मन-वचन-काय से सब परिग्रह छोड़कर और 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर नेमिजिन ने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

अपने हाथों से भगवान ने केशों का लोंच किया। कोई तीन सौ वर्ष तक कुमार अवस्था में रहकर भगवान ने यह संयम स्वीकार किया था। आत्म-ध्यान करते हुए नेमिजिन को उसी समय मनःपर्ययज्ञान हो गया।

इसके बाद भगवान के पवित्र केशों की सुरेन्द्र ने पूजा कर उन्हें रत्न के पिटारे में रखा और धर्म-प्रेम के वश होकर उत्सव करते हुए अन्य देवगणसहित उन्हें ले जाकर क्षीरसमुद्र में डाल दिया।

देवांगना-सी सुन्दरी राजकुमारी राजीमती ने जब यह सब सुना, तब उसे भूखे का अमृतमय भोजन छुड़ा लेने के सदृश बड़ा ही दारुण दुःख हुआ। उसने बहुत शोक किया। उसके कोमल मन को इस घटना से अत्यन्त ताप पहुँचा।

कुछ समय बाद जब विवेकरूपी माणिक के प्रकाश से उसके हृदय का मोहान्धकार नष्ट हो गया, तब वह भी जिनप्रणीत श्रेष्ठ धर्म का मर्म समझकर विषय-भोगों से अत्यन्त विरक्त हो गयी। महा वैरागिन बनकर, उसने जिन को नमस्कार किया और उसी समय सब बहुमूल्य रत्नाभरणों को त्यागकर रत्नत्रयमयी पवित्र जिनदीक्षा (आर्यिका व्रत) ग्रहण कर ली। कुलीन कन्याओं को यह करना उचित ही है जो वे वाग्दान ही हो जाने पर अन्य पति को न करें।

★ ★ ★

इधर जहाँ रत्नत्रय-पवित्र श्रीनेमिजिन आत्मध्यान करते हुए मेरु-सदृश निश्चल विराज रहे थे, देवगण वहाँ बलदेव, कृष्ण इत्यादि को साथ लेकर आये। अनेक द्रव्यों से उन्होंने भगवान की पूजा कर बड़े आनन्द से फिर स्तुति की—

हे देव! आप त्रिभुवन के स्वामी हैं। आपने मोहरूपी महान ग्रह को जीत लिया है। प्रभो! आप ही सब तत्त्वों के जाननेवाले

और त्रिलोक-पूज्य हो। आपने उद्धत काम-शत्रु को जीत करके स्त्री-सम्बन्धी सुख की ओर से मुँह फेरकर महान वीरता का काम किया।

हे मुनि-श्रेष्ठ नेमिजिन! इस कारण आपको नमस्कार है। इसके बाद उन परम आनन्द देनेवाले मुनिजन सेवित नेमिजिन को नमस्कार कर और उनके गुणों का स्मरण करते हुए, वे सब अपने-अपने स्थान को चले गये।

मुनिजनों के साथ ध्यान में बैठे हुए नेमिजिन ऐसे जान पड़ते थे—मानों पर्वतों से घिरा हुआ अंजनगिरि है। सुरासुर पूज्य नेमिजिन इस प्रकार शुभ ध्यान में दो दिन बिताकर तीसरे दिन ईर्यासमिति का पालन करते हुए पारणा करने को द्वारिका में गये। उन्हें देखकर पुण्यशाली दाताजनों को बहुत ही आनन्द होता था। हजारों दानी उन्हें आहार देने के लिए बड़ी सावधानी के साथ अपने-अपने घर पर खड़े हुए थे। एक वरदत्त नामक राजा ने, जिसका शरीर सोने का सा सुन्दर चमक रहा था, भगवान को आते हुए देखा। उसे जान पड़ा—मानों नीलगिरि पर्वत ही चला आ रहा है या निःसंग-धूल आदि रहित वायु पृथ्वी मण्डल को पवित्र कर रहा है अथवा शीतल चन्द्रमा का बिम्ब आकाश से पृथ्वी पर आया है। देखते ही भगवान के सामने आकर उसने उनकी तीन प्रदक्षिणा कीं। मानों उसके घर में निधि ही आ गयी हो, यह समझकर वह बड़ा ही आनन्दित हुआ।

इसके बाद उन त्रिलोक-बन्धु जिनको अपने महल में ले जाकर उसने बड़ी भक्ति से ऊँचे आसन पर बैठाया। फिर जल

भरी सोने की झारी से उनके सुखकर्ता पाँव पखारकर उसने चन्दनादि से उनकी पूजा की और मन-वचन-काय की पवित्रता से उन्हें प्रणाम किया।

इस राजा के यहाँ वैसे तो सदा ही शुद्धता के साथ भोजन तैयार होता था, पर आज कुछ और अधिक पवित्रता से तैयारी की गयी थी। उसने तब महापात्र नेमिजिन को नवधाभक्ति और श्रद्धा, शक्ति, भक्ति, दया, क्षमा, निर्लोभता—आदि दाता के गुणसहित प्रासुक आहार, जो दाता को अनन्त सुख का देनेवाला है, कराया।

भगवान ने उस पवित्र और पथ्यरूप आहार को अच्छी तरह देखकर उदासीनता के साथ कर लिया। इतने में ऊपर से देवगण ने—'यह अक्षय दान है', यह कहकर बड़े प्रेम के साथ राजा के आँगन में कोई साढ़े बारह करोड़ दिव्यप्रकाशमयी पंचरंगी रत्नों की बरसा की, सुगन्धित फूल बरसाये, शीतल और सुगन्धित हवा चलायी, धीरे-धीरे गन्धजल की बरसा की और नगाड़े बजाये। इससे लोग बड़े सन्तुष्ट हुए।

देवगण ने कहा—साधु साधु राजन, तुम बड़े ही पुण्यवान हो जो भव्यजनों को संसार-समुद्र से पार करने को जहाज सदृश जगच्चूड़ामणि नेमिजिन योगी तुम्हारे घर आहार करने आये। वरदत्त महाराज! तुमसे महादानी को धन्य है, जो तुम्हारे महल को जगद्गुरु ने पवित्र किया। तुम्हारा यह दान बड़ा ही शुद्ध और सब सुख-सम्पदा तथा पुण्य का कारण है। इसका वर्णन कौन कर सकता है?

उन पवित्र-हृदय देवों ने इस प्रकार भक्ति से वरदत्त की बड़ी

प्रशंसा की। इस महादान के फल से वरदत्त के धर पंचाश्चर्य हुए। उनका यश चारों ओर फैल गया। श्रेष्ठ पात्र के समागम से क्या शुभ नहीं होता ?

इस पात्रदान के उत्तम पुण्य से दुर्गति का नाश होता है, उज्ज्वल यश बढ़ता है, और धन-दौलत, राज्य-वैभव, रूप-सुन्दरता, दीर्घायु, निरोगता, श्रेष्ठ-कुल, स्त्री-पुत्र आदि इस लोक का सुख तथा परम्परा मोक्ष भी प्राप्त होता है।

इसी कारण सत्पुरुष वरदत्त राजा की तरह हितकारी पात्र-दान करते हैं। उनकी देखा-देखी अन्य भव्यजन को भी अपनी शक्ति के अनुसार धर्मसिद्धि के लिये निरन्तर भक्तिसहित पात्रदान करते रहना चाहिए।

त्रिभुवन के उद्धारकर्ता श्रीनेमिप्रभु आहार कर अपने स्थान चले गये। वहाँ वे पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समिति, रत्नत्रय और दस धर्म का दृढ़ता से पालन करते थे। पवित्रात्मा नेमिप्रभु ने राग-द्वेषों को जीत लिया, आत्मबल से केशरी समान बनकर काम-हाथी को चूर दिया। इस प्रकार धीर-वीर नेमिजिन बड़े शोभित हुए।

भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर थे, इस कारण उनकी दृढ़-भावना से छह आवश्यक कर्म अत्यन्त उत्तमता से पले। परिग्रहरूपी ग्रह से मुक्त, सुरासुर-पूज्य और दया-लता से वेष्टित नेमिप्रभु चलते-फिरते कल्प-वृक्ष से जान पड़ते थे।

वे मन में निरन्तर बारह भावनाओं और जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों का विचार-मनन किया करते थे। त्रिलोक की स्थिति

का उन्हें ज्ञान था। वे क्रोध, मान, माया, लोभादि से रहित, वीतराग, अनन्त गुणों के धारक थे और बड़े सुन्दर थे।

उन्होंने आहार, भय, मैथुन और परिग्रह—इन चार संज्ञारूप आग की धधकती हुई महान दुःख देनेवाली ज्वाला को सन्तोष-जल से बुझा दिया था। भूख-प्यास आदि के परीषहरूपी वीर योद्धा भी नेमिप्रभु को न जीत सके, किन्तु उल्टा भगवान ने ही उन्हें जीत लिया था। सैकड़ों प्रचण्ड हवा चलें, वे छोटे-छोटे पर्वतों को हिला सकती हैं, परन्तु सुमेरु पर्वत को कभी हिला नहीं सकतीं। नेमिजिन भी वैसे ही स्थिर थे, तब उन्हें किसकी सामर्थ्य जो डिगा सकता था?

★ ★ ★

त्रिकाल-योगी और शुभलेश्या युक्त जगद्बन्धु नेमिजिन इस प्रकार इच्छा-निरोध-लक्षण तप करते हुए सुराष्ट्र देश के तिलक—गिरनार पर्वत पर आये। उस पर निर्मल पानी भरा हुआ था। नाना तरह के वृक्ष फल-फूल रहे थे। मुक्ति स्थान के समान उस पर जाकर भव्यजन बड़ा सुख लाभ करते थे। उनका सब दुःख-सन्ताप नष्ट हो जाता था। वह सत्पुरुष के सदृश लोगों को आनन्दित करता था। देवतागण आकर उसकी पूजा करते थे।

इसका दूसरा नाम 'ऊर्जयन्त गिरि' है। भगवान ने वर्षायोग उसी पर बिताया था। वर्षा के कारण उसकी शोभा डरावनी सी हो गयी थी। पानी बरसने के कारण वह सब ओर जलमय ही जलमय हो रहा था। मेघों के गरजने और बिजलियों की कड़कड़ाहट से सारा पर्वत शब्दमय हो गया था, कुछ सुनाई न पड़ता था। प्रचण्ड

हवा के झकोरों से टूटकर गिरे हुए शिखरों से वह व्याप्त हो रहा था।

रात के समय वह बड़ा ही भयानक दीख पड़ता था। जंगली जानवरों की विकराल ध्वनि सुनकर डरपोक लोगों की उस पर चढ़ने की हिम्मत नहीं होती थी। चारों ओर पत्थरों के ढ़ेर के ढ़ेर पड़े हुए थे। आकाश, मेघ और अन्धकार से छाया हुआ ही रहता था।

वर्षायोग भर भगवान इसी पर्वत पर रहे। पानी बरसा करता था और भगवान मेरु की तरह स्थिर रहकर ध्यान किया करते थे। उसी समय नेमिप्रभु जिस पर जल गिर रहा है, ऐसे इन्द्रनीलगिरि के ऊँचे शिखर-समान देख पड़ते थे। भगवान के शरीर की दिव्य प्रभा से सारा पर्वत प्रकाशमय हो रहा था।

इस प्रकार सुरासुर-पूज्य, निर्भय, निस्पृह, ज्ञानी, मौनी, निराकुल, निस्संग, आत्म-भावना-प्रिय और जगद्गुरु नेमिप्रभु ने शुभध्यान के घर इस बड़े ऊँचे गिरनार पर्वत पर सुख के साथ वर्षाकाल पूरा किया।

भगवान जो ध्यान करते रहे, उस ध्यान का क्या लक्षण है, कितने भेद हैं, कौन स्वामी-ध्याता है और क्या फल है, इन सब बातों का आगम के अनुसार संक्षेप वर्णन यहाँ भी किया जाता है।

एकाग्रचिन्तनरूप उत्कृष्ट ध्यान वज्रवृषभनाराचसंहननवाले के एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होता है। ध्यान के-आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ऐसे चार भेद हैं। - **आर्तध्यान**

प्रिय वस्तु की चाह, अप्रिय वस्तु का विनाश, रोगादिक की वेदना के दूर करनेवाला यत्न और निदान-आगामी विषय भोगों की चाह, इन बातों का चिंतन किया करना, ये आर्तध्यान के चार भेद हैं। ये धर्म के नाश करनेवाले और पशु आदि गति के कारण हैं। अव्रती, अणुव्रती और प्रमत्त गुणस्थानवाले मुनियों के यह आर्तध्यान होता है। - **रौद्रध्यान**

हिंसा में आनन्द मानना, झूठ में आनन्द मानना, चोरी में आनन्द मानना और विषयों के रक्षण में आनन्द मानना—ये चार रौद्रध्यान के भेद हैं। वे नरकादिकों के महान् दु:ख देनेवाले हैं। वह ध्यान चौथे और पाँचवें गुणस्थानवाले के होता है। - **धर्मध्यान**

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय —ये चार धर्मध्यान के भेद हैं। इस ध्यान से स्वर्गादिक शुभगति प्राप्त होती है। यह पूर्वज्ञान धारी के होता है। - **शुक्लध्यान**

पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्क-अविचार, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृत्ति—ये चार शुक्लध्यान के भेद हैं। इनमें आदि के सुख के कारण दो ध्यान तो पूर्व ज्ञानी के होते हैं और अन्त के दो ध्यान केवली भगवान के होते हैं। ये मोक्ष-सुख के कारण हैं।

इनमें आर्तध्यान और रौद्रध्यान—ये दोनों दुर्गति के कारण हैं। इस कारण तत्त्वज्ञानी प्रभु नेमिजिन इन दोनों ध्यानों को छोड़कर धर्मध्यान का चिन्तन करने लगे।

इस प्रकार तप करते हुए सुरासुर पूज्य भगवान कोई छप्पन दिन तक छद्मस्थ अवस्था में रहे। इसके बाद उन्होंने कर्म प्रकृतियों

का क्षय आरम्भ किया। आगे के अध्याय में उसका कुछ वर्णन किया जाता है।

काम-शत्रु का नाश करने में जिनने बड़ी वीरता दिखलायी और जो भव्यजनों को संसार-समुद्र से पार उतारने में जहाज समान हुए, वे देवेन्द्र-नरेन्द्र-विद्याधर-पूज्य, चारित्र-चूड़ामणि और त्रिजगद्गुरु नेमिजिन संसार में जय लाभ करें—उनका पवित्र शासन दिनोंदिन अभिवृद्धि को प्राप्त हो।

इति नवमः सर्गः।

दसवाँ अध्याय
नेमिजिन को केवल-लाभ और समवसरण-निर्माण

गिरनार पर्वत पर बाँस के नीचे ध्यान करते हुए शुद्धात्मा और परमार्थज्ञानी महामुनि नेमिजिन ने क्वार सुदी एकम को चित्रा नक्षत्र में, छह उपवास पूरे कर प्रात:काल कर्मों की प्रकृतियों का क्षय करना आरम्भ किया। उसका क्रम जिनागम के अनुसार संक्षेप में यहाँ लिखा जाता है—

सम्यग्दृष्टि, देश-संयत, प्रमत्त अथवा अप्रमत्त इन चार गुणस्थानों से किसी एक में स्थित रहकर धर्मध्यान द्वारा वीर-शिरोमणि नेमिजिन मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीन मिथ्यात्व-प्रकृतियों और अनन्तानुबन्धी—क्रोध, मान, माया, लोभ—इन चार कषायों तथा नरकायु, तिर्यगायु और देवायु इस प्रकार सब मिलकर दस प्रकृतियों का क्षयकर आठवें गुणस्थान में क्षपकश्रेणी चढ़े।

इस अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में जीव के परिणाम क्षण क्षण में अपूर्व-अपूर्व होते हैं। जैसे—पहले कभी नहीं हुए, इस कारण इसमें तत्त्वज्ञानी नेमिजिन 'अभूतपूर्वक' कहलाये।

इसके बाद अनिवृत्तिकरण नाम नवमें गुणस्थान में नेमिजिन ने 'प्रथक्त्ववितर्कवीचार' नामक पहले शुक्लध्यान द्वारा अर्थ-संक्रान्ति और व्यंजन-संक्रान्तिरूप-पर्यायों के भेदों का ध्यान करते हुए और आत्म-चिन्तन करते हुए इस गुणस्थान के नौ भागों में छत्तीस प्रकृतियों का क्षय किया।

उनमें पहले भाग में साधारण, आतप, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, जाति, स्थानगृद्धि, प्रचलाप्रचला, निद्रा-निद्रा, नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म और उद्योत इन सोलह प्रकृतियों का, दूसरे भाग में चार अप्रत्याख्यानावरणी—क्रोध, मान, माया, लोभ और चार प्रत्याख्यानावरणी—क्रोध, मान, माया, लोभ इन नाना दु:खों की देनेवाली आठ प्रकृतियों का, तीसरे भाग में नपुंसक-वेद का, चौथे में स्त्री-वेद का, पाँचवें में हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह प्रकृतियों का छठे भाग में पुरुष-वेद का और इसके बाद क्रम से संज्वलन-क्रोध, मान, माया इन तीन प्रकृतियों का क्षयकर कर्म-शत्रु का मर्म जाननेवाले नेमिजिन नवमें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान में आये। इस सूक्ष्म साम्पराय नाम दसवें गुणस्थान में नेमिप्रभु ने संज्वलन सम्बन्धी सूक्ष्म-लोभ का नाश किया।

इस प्रकार मोहनीयकर्मरूप प्रचण्ड बैरी को जीतकर शूरवीर नेमिजिन एक बलवान् सेनापति पर विजय-लाभ किये हुए की तरह महान बली हो गये। इसके बाद गुणों की खान निर्मोही नेमिप्रभु दूसरे एकत्ववितर्क-अवीचार नाम शुक्लध्यान द्वारा क्षीणकषाय नामक बाहरवें गुणस्थान में जाकर उसके उपान्त्य समय में-अन्तिम समय के एक समय पहले निद्रा और प्रचला का नाश कर स्वयं मेरु सदृश स्थिर रहे।

इसके बाद अन्त समय में उन्होंने चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन संसार की बढ़ानेवाली चार दर्शन

–आवरण–प्रकृतियों का, और आँखों पर पड़े हुए वस्त्र की तरह मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्ययज्ञानावरण, और केवलज्ञानावरण, इन पाँच आवरण–प्रकृतियों का तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय इन पाँच दुस्सह अन्तराय–प्रकृतियों का क्षय किया।

इस प्रकार नेमिजिन ने घातिया कर्मों की त्रेसठ प्रकृतियों का क्षयकर श्रेष्ठ, परम आनन्दरूप और लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया।

अब वे सयोगकेवली नाम तेरहवें गुणस्थान में आ गये। भगवान अब निर्मल पूर्ण चन्द्रमा की तरह आकाश में स्थित हुए। उनके प्रभाव से संसार सोते से जग उठा। दिशायें निर्मल हो गयीं। जय–जयकार की विराट ध्वनि से जगत पूर्ण हो गया। पृथ्वी पर आनन्द ही आनन्द छा गया। देवों के आसन हिल गये–जान पड़ा, वे भगवान के ज्ञानकल्याणोत्सव की सूचना दे रहे हैं।

सब स्वर्गों में घंटानाद की ध्वनि गर्ज उठी। उसे सुनकर देवताओं के मन बड़े प्रसन्न हुए। ज्योतिर्लोक में सब दिशाओं को शब्दमय करनेवाला सिंहनाद हुआ। व्यन्तरों के भवनों में नगाड़े बजे। भवनवासी देवों के यहाँ शंखनाद हुआ–जान पड़ा, वह जिनदेव के केवल कल्याण की सूचना दे रहा है। सब देवगण के भवनों के कल्पवृक्ष अपने आप फूलों की वर्षा करने लगे–मानों जिन पूजन में वे फूल चढ़ा रहे हैं।

इस प्रकार अपने–अपने भवनों में प्रगट चिह्नों द्वारा नेमिजिन को केवलज्ञान हुआ जानकर 'देव' 'जय' 'नन्द' 'पालय' कहते

हुए देवगण ने बड़े आनन्द और भक्ति के साथ उन परम पावन नेमिप्रभु को नमस्कार किया।

इसके बाद सौधर्मेन्द्र ने कुबेर को भगवान के लिए एक सुन्दर समवसरण बनाने की आज्ञा दी। इन्द्र की आज्ञा पाकर भक्ति-निर्भर कुबेर ने लोगों के मन को मोहित करनेवाला बड़ा ही सुन्दर समवसरण बनाया।

कुबेर ने उस समवसरण में जो शोभा की उसका वर्णन कौन कर सकता है ? तो भी बुद्धि के रहने पर भी भव्यजन के आनन्दार्थ उस नेमिप्रभु की सभा की शोभा का कुछ थोड़े से में वर्णन करना उचित जान पड़ता है।

★ ★ ★

पहले ही एक बड़ी भारी, निर्मल इन्द्रनीलमणि की पृथ्वी बनाई गई। उसे देखकर देवताओं के मन और नेत्र बड़े आनन्दित होते थे। वह पृथ्वी पाँच हजार धनुष ऊँची थी। उसकी २० हजार सीढ़ियाँ थीं। प्रभु की वह लोकश्रेष्ठ चमकती हुई शुद्ध भूमि जगत की लक्ष्मीदेवी के देखने के काँच-सदृश शोभित हुई। उसके चारों ओर पंचरंगी रत्नों की धूल का एक 'धूलिशाल' नामक मनोहर कोट बनाया गया। बड़ा ऊँचा, लोगों को आनन्द देनेवाला वह चमकता हुआ कोट लक्ष्मी के कुण्डल-सदृश जान पड़ता था।

उस भूमि की चारों दिशाओं में सोने के बड़े-बड़े स्तम्भ गाड़े गये और उन पर रत्नों और मोतियों के बने तोरण लटकाये गये। उसके बाद चारों दिशाओं के बीच में चार बड़े ऊँचे सोने के सुन्दर मानस्तम्भ बनाये गये। वे मानस्तम्भ चार-चार फाटकवाले तीन

कोटों से घिरे हुए थे। वे त्रिमेखलावाले चबूतरों पर स्थित थे।

उन चबूतरों की सोलह-सोलह सीढ़ियाँ थीं और वे सब सोने की बनी थीं। छत्र, चँवर, ध्वजा आदि से शोभित वे पवित्र मानस्तम्भ छत्र-चँवर-ध्वजा-युक्त राजेसदृश जान पड़ते थे। उन्हें देखकर मिथ्यादृष्टियों का मान स्तम्भित हो जाता था-नष्ट हो जाता था। इस कारण इनका 'मानस्तम्भ' नाम सार्थक था। उनके बीच भाग में सोने की प्रतिमायें बनी हुई थीं। इन्द्रादिक उनकी पूजा करते थे।

इन्द्र ने उन्हें बनाया तथा ध्वजा आदि से शोभित किया। इस कारण उनका दूसरा नाम 'इन्द्रध्वज' भी है। उन मानस्तम्भों के आगे देव, विद्याधर, राजे-महाराजे इत्यादि सदा बड़ी भक्ति से गाते, बजाते और नृत्य करते थे।

उन चारों मानस्तम्भों की चारों दिशाओं में निर्मल जल की भरी सुन्दर चार-चार बाबड़ियाँ थीं, उनमें सब प्रकार के कमल खिल रहे थे। लहरें लहरा रहीं थी-जान पड़ता था कि प्रभु के लिए श्राविकाओं ने हाथों में अर्घ्य ले रखा है।

उनके किनारे स्फटिक के और सीढ़ियाँ मणियों की थीं। लोग उन्हें देखकर अत्यन्त मुग्ध हो जाते थे। उनमें हंस इत्यादि पक्षीगण सुमधुर शब्द कर रहे थे-जान पड़ता था वे बावड़ियाँ नेमिप्रभु के चन्द्र-सदृश निर्मल गुणों का बखान कर रही हैं।

पूर्व-दिशा में जो मानस्तम्भ था, उसकी बावड़ियों के नाम नन्दा, नन्दोत्तरा, नन्दवती और नन्दघोषा थे।

दक्षिण-दिशा की बावड़ियों के नाम विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता थे।

पश्चिम-दिशा की बावड़ियों के नाम अशोका, सुप्रतिबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीका थे।

उत्तर-दिशा की बावड़ियों के नाम ह्रदानन्दा, महानन्द, सुप्रबुद्धा और प्रभंकरी थे। निर्मल जल की भरी वे सोलहों बावड़ियाँ सुख देनेवाली सोलहकारण भावना के सदृश जान पड़ती थीं।

उन सोलहों बावड़ियों के पास निर्मल पानी के भरे दो-दो कुण्ड पाँव धोने के लिये थे। उन स्वच्छ जल भरे हुए कुण्डों से वे बावड़ियाँ पुत्रवती स्त्री के समान शोभित होती थीं।

यहाँ से थोड़ी दूर जाकर—सत्पुरुषों की बुद्धि के समान आनन्द देनेवाला एक बड़ा चौड़ा मार्ग था। इसके बाद एक निर्मल जल की भरी हुई खाई थी। उसके किनारे रत्नों के बने हुए थे। वह स्वर्ग गंगा-सी जान पड़ती थी। वह बड़ी गहरी, स्वच्छ और शीतल थी-जान पड़ता था, जैसे जिनराज की गम्भीर, स्वच्छ और शीतल वाणी है। उसमें जो हंस, चकवा-चकवी आदि पक्षीगण सुन्दर कूज रहे थे-मानों उनके शब्द के बहाने वह खाई भक्ति से भगवान की स्तुति कर रही है।

उसके आगे चलकर गोलाकार एक मनोहर फूलबाग-(पुष्पवाटिका) था। खिले हुए सुन्दर-सुन्दर फूलों से वह व्याप्त हो रहा था; जिनकी सुगन्ध से सब दिशायें सुगन्धित हो रही थीं, ऐसे खिले हुए फूलों से सुन्दरता धारण किये हुए वह बाग प्रगटतिल आदि चिह्नों से युक्त नेमिजिन के शरीर-सदृश शोभा दे रहा था। उसके कृत्रिम सुन्दर क्रीड़ा, पर्वत फल-फूल-वृक्षों से सचमुच ही पर्वत से जान पड़ते थे। उसके लता-मण्डपों में देवताओं के

आराम के लिए सत्पुरुषों की बुद्धिसमान निर्मल चन्द्रकान्तमणि की शिलायें रखी हुई थीं।

इस प्रकार सुन्दर वह फूलबाग हवा से हिलते हुए वृक्षों के बहाने से मानों सुन्दर नृत्य कर रहा था। उसमें फूलों की सुगन्ध से खिंचे आये भ्रमर तो सुन्दरता से गूँज रहे थे–जान पड़ता था, वह फूलबाग नेमिजिन की स्तुति कर रहा है।

यहाँ से थोड़ी दूर आगे चलकर एक बड़ा ऊँचा और लोगों के मन को मोहित करनेवाला सोने का कोट था। वह गोलाकार बना हुआ सोने का कोट मानुषोत्तर पर्वत–सदृश दीख पड़ता था। रत्नों के बने हुए मनुष्य, सिंह, हाथी, आदि के जोड़ों से वह कोट नटाचार्य की तरह शोभित होता था। उस पर जड़े हुए रत्नों की कान्ति जो फैल रही थी, उससे वह इन्द्र–धनुष सा दिखाई पड़ता था।

उसके चारों ओर चार चाँदी के दरवाजे बने हुए थे – जान पड़ता था, समवसरणरूपी लक्ष्मी के चार उज्ज्वल मुँह हैं। वे तीन–तीन मंजिलवाले ऊँचे दरवाजे निर्मल रत्नत्रय सदृश जान पड़ते थे। जिनके ऊँचे शिखर पद्मरागमणि–लाल के बने हुए थे, ऐसे वे बड़े–बड़े दरवाजे हिमवान पर्वत के शिखर से शोभते थे। उन दरवाजों में स्वर्ग की अप्सरायें सदा नेमिप्रभु के यश के गीत गाया करती थीं।

उन एक–एक दरवाजों में झारी, कलश, दर्पण, पंखा आदि एक सौ आठ–आठ मंगलद्रव्य शोभित थे। उन दरवाजों में चमकते हुए रत्नों के तोरणों को देखकर जान पड़ता था–मानों सारे संसार की श्रेष्ठ सम्पत्ति यहीं आ गयी है। उनमें काल आदि रत्नपूर्ण

निधियाँ लोगों के मन को मोहित कर रही थीं। वे निधियाँ उन दरवाजों में ऐसी शोभित हुईं–मानों प्रभु ने उन्हें छोड़ दिया, सो भक्ति से वे फिर उनकी सेवा करने आयी हैं।

उन दरवाजों की दोनों बाजू दो–दो नाटकशालायें थीं। वे नाटकशालायें तीन–तीन मंजिल की थीं–जान पड़ता था, वे मोक्ष के रत्नत्रयरूप मार्ग हैं। उन नाटकशालाओं के खम्भे सोने के, दीवारें स्फटिकमणि की और शिखर रत्नों के थे। उनमें देवांगनायें भगवान के चन्द्र–समान उज्ज्वल गुणों का बड़े आनन्द के साथ बखान कर रही थीं। उनमें किन्नरों के गीतों के साथ बजते हुए नाना तरह के बाजों की ध्वनि मेघों की ध्वनि को भी जीत लेती थीं।

गन्धर्वदेव–गण उनमें जिन भगवान के हितकारी गुणों को गाते थे और देवांगनायें नृत्य करती थीं। इन्द्रादि देवता बड़े प्रेम से उस नाटकाभिनय के देखनेवाले थे। वहाँ की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ?

वहाँ से आगे मार्ग के दोनों बाजू दो–दो सुन्दर धूप के घड़े रखे हुए थे। उनकी सुगन्ध से सब दिशायें सुगन्धित हो रही थीं। उनमें जलती हुई सुगन्धित कृष्णागुरु धूप का धुँआ जो आकाश में छा जाता था–जान पड़ता था काले मेघ छा गये हैं। वह धुँआ आकाश में जाता हुआ, पुण्य–प्रभाव से डरकर भागते हुए पापपुंज सा देख पड़ता था। उसकी सुगन्ध से खिंचकर आते हुए काले भौरों से वह धुँआ दुगुना दिखाई पड़ता था।

वहाँ से चलकर चारों दिशाओं में चार वन थे। उनके नाम थे—अशोकवन, सप्तच्छदवन, चम्पकवन और आम्रवन। वे वन

ऐसे शोभित होते थे—मानों नेमिप्रभु की सेवा करने को चार नन्दनवन आये हैं।

उन बनों के वृक्ष फले-फूले, छायादार, बड़े ऊँचे और सुख-शान्ति के देनेवाले थे। जान पड़ते थे जैसे राजेलोग हों। वृक्षों पर बोलते हुए कोकिल, मोर, पपीहा, तोते आदि पक्षीगण के द्वारा मानों वे वन नेमिजिन की स्तुति कर रहे हैं। जिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे हैं, ऐसे गिरते हुए अपने दिव्य फूलों द्वारा मानों वे वृक्ष नित्य नेमिप्रभु की पूजा कर रहे हों।

उन वनों में सोने और रत्नों के बने हुए कुँए, बावड़ी और तालाब आदि निर्मल पानी के भरे हुए थे। उनमें खिले हुए कमलों की अपूर्व शोभा थी। जान पड़ता था—वे निर्मल हृदयवाले शुद्ध और लक्ष्मीयुक्त सज्जन लोग हैं। उन वनों में कहीं बड़े ऊँचे और मनोहर चार-चार, छह-छह मंजिलवाले महल बने हुए थे।

कहीं कृत्रिम सुन्दर क्रीड़ा पर्वत बने हुए थे। देवतागण आकर अपनी देवांगनाओं के साथ उनमें हास्य-विनोद किया करते थे। उनमें निर्मल जलभरी कृत्रिम नदियाँ फूले हुए कमलों से बड़ी सुन्दर दीख पड़ती थीं-जान पड़ता था, वे पुत्रवती कुलकामिनियाँ हैं।

निर्मल पानी के भरे हुए तालाब उन वनों में जगत् का ताप मिटानेवाले पवित्र-हृदय सत्पुरुष से जान पड़ते थे। उन वनों में लोगों का शोक नष्ट करनेवाला 'अशोक' नाम वन शीतल, सुख देनेवाले और सज्जनों के शुद्ध मन-सदृश दीख पड़ता था। सात-सात पत्तोंवाले वृक्ष जिसमें हैं, ऐसा सुन्दर 'सप्तच्छद' नामक वन जिनप्रणीत सप्त तत्त्वों के सदृश जान पड़ता था।

'चम्पक' नामक वन अपने खिले हुए फूलों से नेमिजिन की प्रदीप द्वारा पूजन करता हुआ ज्ञात होता था। 'आम्रवन' कोकिलाओं की मधुर ध्वनि के बहाने जिनकी स्तुति करता हुआ शोभित होता था। अशोकवन में एक बड़ा भारी अशोकवृक्ष था।

उसका चबूतरा सोने का बना हुआ और तीन कटनी से युक्त था। जान पड़ता था जैसे राजा हो। इस वृक्ष को चारों ओर से घेरे हुए तीन कोट थे। वह छत्र, चँवर, झारी, कलश आदि मंगल द्रव्यों से शोभित था। वह सारा सोने का था।

उसका मूलभाग वज्र का बना हुआ और सम्यग्दृष्टि के सदृश दृढ़ था। उसके पत्ते गरुन्मणि के और फूल पद्मरागमणि के बने हुए थे। लोगों का मन उसे देखकर बड़ा मोहित होता था। वह फूलों की तेज गन्ध से खिंचकर आये हुए भौरों के गूँजने के बहाने मानों प्रसन्न होकर जिन की स्तुति कर रहा है।

उस पर टँगी हुई घण्टा की जो बड़े जोर की ध्वनि होती थी- जान पड़ता था, मोह-शत्रु पर विजय-लाभ कर नेमिप्रभु ने जो निर्मल यशलाभ किया है, उसकी वह घोषण कर रहा है। हवा के वेग से फहराती हुई ध्वजाओं के मिससे मानों वह लोगों के पाप दूर कर रहा है। जिन पर बड़े-बड़े मोतियों की माला लटक रही हैं। ऐसे सिर पर धारण किये हुए तीन सुन्दर छत्रों से वह वृक्ष राजा के सदृश जान पड़ता था।

इस वृक्ष के मध्य भाग में चारों दिशाओं में पाप नाश करनेवाली स्वर्णमयी जिनप्रतिमायें थीं। इन्द्रादि देवतागण आकर क्षीरसमुद्र के जल से उन जन-हितकारी प्रतिमाओं का अभिषेक करते थे

और गन्ध-पुष्पादि श्रेष्ठ वस्तुओं से बड़े प्रेम के साथ उनकी पूजा करते थे।

इसके बाद वे भक्ति-समान निर्मल, सुगन्धित फूलों की बड़े आनन्द और भक्ति के साथ अंजलि अर्पण कर उन पवित्र जिनप्रतिमाओं की स्तुति करते थे।

कितने देवगण उस चैत्यवृक्ष के सामने अपनी-अपनी देवांगनाओं के साथ नृत्य करते थे। और भगवान के निर्मल गुणों का बखान करते थे। जैसा अशोकवन में अशोक नामक चैत्यवृक्ष है, उसी तरह सप्तच्छदवन में सप्तच्छद नामक चैत्यवृक्ष, चम्पकवन में चम्पक नामक चैत्यवृक्ष और आम्रवन में आम्र नामक चैत्यवृक्ष है। उनका मध्य भाग चैत्यप्रतिमाधिष्ठित है, इस कारण उनका नाम चैत्यवृक्ष हुआ।

वे चारों ही वृक्ष जिनप्रतिमाओं से युक्त हैं। उनकी इन्द्रादि देवगण पूजा करते हैं, इस कारण वे जिन-सदृश माने जाते हैं।

इस प्रकार वे महिमाशाली चारों महावन जिनभगवान के सुख देनेवाले चार अनन्त चतुष्टय से जान पड़ते थे। अच्छे कुल के समान फले-फूले वे चारों वन भव्यजनों को अत्यन्त तृप्त करते थे। जिन नेमिप्रभु के वृक्षों का इतना वैभव था, तब उनकी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ?

उन वनों के बाद चारों ओर सोने की एक वेदी बनी हुई थी। उसमें रत्नों की जड़ाई का काम हो रहा था। उसकी चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे। अपनी दिव्य कान्ति से वह इन्द्रधनुष की शोभा को हँस रही थी। उस आनन्दकारिणी वेदी के चारों दरवाजे चाँदी

के बने हुए थे। उन दरवाजों में आठ-आठ मंगलद्रव्य शोभित थे।

रत्नों के तोरणों से वे दरवाजे समवसरण लक्ष्मी-देवी के चार सुन्दर मुँह से जान पड़ते थे। घण्टा की ध्वनि से वे दरवाजे मानों आनन्दित होकर भगवान की स्तुति कर रहे थे। देव-देवांगनायें उन दरवाजों से सदा सुन्दर गीत गाती और नाचती रहती थीं। वहाँ से चलकर रास्ते में सोने के खम्भों पर फहराती हुई ध्वजायें लोगों का मन मोहित कर रही थीं। मणिमय चबूतरे पर वे सोने के ऊँचे और सुन्दर ध्वजस्तम्भ लोकमान्य, पवित्र राजाओं सरीखे दिख पड़ते थे।

इन खम्भों का घेरा अठासी अँगुल का तथा और एक खम्भे से दूसरे खम्भे का अन्तर पच्चीस धनुष 87½ हाथ था। कोट, वेदी, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, स्तूप तोरण मानस्तम्भ और ध्वजस्तम्भ इन सबकी ऊँचाई तीर्थंकर भगवान की ऊँचाई से बारह गुणी थी। और उनका घेरा उनकी ऊँचाई के अनुसार जितना होना चाहिए उतना था। हाँ पर्वत, वन, और घर इनका प्रमाण ज्ञानियों ने कुछ विशेषता लिये बतलाया है।

पर्वतों का घेरा ऊँचाई से कोई आठ गुण अधिक था। स्तूपों का घेरा उनकी ऊँचाई से कुछ अधिक था। और वेदी का घेरा ऊँचाई का चौथा हिस्सा पुराण के ज्ञाता लोगों ने कहा है। वे सोने के खम्भों पर लगी हुई ध्वजायें—माला, वस्त्र, मोर, कमल, हंस, गरुड़, सिंह, बैल, हाथी और चक्र इन दश प्रकार के चिह्नों से युक्त थीं-इन चिह्नों से वे ध्वजायें दस प्रकार की थीं। वे दसों प्रकार की ध्वजायें एक-एक दिशा में एक-एक सौ आठ-आठ थीं। इन

हिसाब से एक दिशा में सब ध्वजायें मिलाकर एक हजार ५० हुईं। और चारों दिशाओं की मिलाकर ४ हजार २०० हुईं। इतनी सब ध्वजायें हवा से फड़कती हुई ऐसी देख पड़ती थीं—मानों वे देवताओं को नेमिप्रभु के केवलज्ञान की पूजा के लिए बुला रही हैं। यहाँ से कुछ भीतर चलकर बड़ा भारी चाँदी का दूसरा कोट बना हुआ था- जान पड़ता था, वह प्रभु के उज्ज्वल यश का समूह है। यहाँ भी पहले के समान दरवाजे वगैरह की रचना लोगों के नेत्रों को आनन्दित कर रही थीं। इस कोट में भी चार दरवाजे थे। उन पर बहुमूल्य और बड़े रत्न-तोरण टंगे हुए थे।

प्रत्येक दरवाजों में रत्नादि श्रेष्ठ सम्पदा से युक्त नौ निधियाँ भव्यजनों के मनोरथ समान शोभा दे रही थीं। प्रत्येक दरवाजे के दोनों बाजू दो-दो नाटकशालायें थीं। रास्ते में धूप के दो-दो घड़े रखे हुए थे। यहाँ से कुछ दूर जाकर कल्पवृक्षों का वन था-जान पड़ता था, इस वन के बहाने भोगभूमि ही नेमिजिन की सेवा करने को आई है।

इस वन में ऊँचे, छायादार, फले-फूले दस प्रकार के कल्पवृक्ष सुख देनेवाले श्रेष्ठ दस धर्म से जान पड़ते थे। जिन वन में मन चाहे फल, आभूषण, वस्त्र, पुष्पमाला आदि हर समय मिल सकते थे, उसका क्या वर्णन करना ? जहाँ स्वर्ग के देवतागण अपनी देवांगना-सहित आकर बड़े सन्तुष्ट होते थे, वहाँ का और अधिक क्या वर्णन किया जा सकता है। उन कल्पवृक्षों के तेज से नष्ट हुआ अन्धकार जिनभगवान के प्रभाव से नष्ट हुए मिथ्यात्व की तरह फिर कहीं न दीख पड़ा। इस वन में चारों दिशाओं में चार सिद्धार्थ वृक्ष थे।

उनके मध्यभाग में सिद्ध-प्रतिमायें थीं। पहले चैत्यवृक्षों के कोट, दरवाजे, छत्र, चँवर, ध्वजा आदि द्वारा जो शोभा वर्णन की गयी है, वैसी शोभा यहाँ भी थी। इस वन में यह विशेषता थी कि इसके सब वृक्ष कल्पवृक्ष थे और इस कारण वे मनचाही वस्तु के देनेवाले थे।

इस वन में कहीं क्रीड़ा-पर्वत, कहीं बावड़ी, कहीं नदी, कहीं तालाब और कहीं सुन्दर लता-मण्डप थे। उनमें देव, विद्याधर राजे लोग अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ खूब हँसी-विनोद किया करते थे।

इस वन के चारों ओर सोने की वेदी बनी हुई थी। उसके चार सुदृढ़ दरवाजे मुनियों की दृढ़ क्रिया के समान शोभित थे। उन दरवाजों पर रत्नों के तोरण टंगे हुए थे। और जगह-जगह मंगलद्रव्य शोभा दे रहे थे। यहाँ से थोड़ी दूर जाकर चार-चार, छह-छह मंजिलों की ऊँची गृह-श्रेणियाँ थीं। उनमें कितने घर दो मंजिल के, व कितने चार-चार मंजिल के थे।

उनकी दीवारें चन्द्रकान्तमणि की बनी हुई थीं। उनमें नाना प्रकार के रत्नों की पच्चीकारी का काम हो रहा था। वे घर चित्रशाला, सभा-भवन और नाटकशाला से बड़ी सुन्दरता धारण किये हुए थे। दिव्यसेज, आसन, सुन्दर सीढ़ियाँ वगैरह से उन्होंने स्वर्ग के भवनों को भी जीत लिया था।

उनमें इन्द्र, किन्नर, पन्नग, विद्याधर, राजे-महाराजे और अन्य देवांगनागण बड़े आनन्द के साथ क्रीड़ा करते थे-सुख भोगते थे। कितने गन्धर्वगण भगवान का उज्ज्वल यश गाते थे और कितने

नाना तरह के बाजे बजाते थे। कितने नृत्य करते थे। कितने नेमिप्रभु के चन्द्र-सदृश निर्मल गुणों का बखान करते थे और कितने सुनते थे।

यहाँ से आगे रास्ते में चारों कोनों में पद्मरागमणि के बने हुए नौ-नौ स्तूप-छोटे पर्वत नौ पदार्थों के समान दीख पड़ते थे। उसमें जिनप्रतिमायें और छत्र, चँवर, ध्वजा आदि मंगल द्रव्य शोभित थे। उन स्तूपों के बीच में रत्नों के तोरण लोगों के नेत्रों को मोहित कर रहे थे।

उन पाप नाश करनेवाली जिनप्रतिमाओं की जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल आदि श्रेष्ठ द्रव्यों से इन्द्रादि देवता आकर पूजा करते थे और स्तुति करते थे। देवांगनायें उन जिनप्रतिमाओं के सामने सदा सुन्दर संगीत किया करती थीं। किन्नर और गन्धर्व वहाँ बड़ी भक्ति से जिनभगवान का यश गाया करते थे।

उन उत्सवपूर्ण स्तूपों को लांघकर थोड़ी दूर आगे बड़ा भारी स्फटिक का कोट बना हुआ था। वह ऊँचा कोट अपनी निर्मल प्रभा से जिनभगवान का यश पुंज सा देख पड़ता था। पद्मरागमणि बने हुए चार दरवाजों से वह कोट अनन्त चतुष्टय से शोभित शुक्लध्यान के प्रभाव की तरह जान पड़ता था। उन दरवाजों में भी छत्र, चँवर, ध्वजा आदि सुन्दर मंगल-द्रव्य थे। पहले दरवाजों की तरह यहाँ भी नौ निधियाँ श्रेष्ठ रत्नादि द्रव्यों से युक्त थीं। जान पड़ता था (कि) नेमिजिन ने जो लक्ष्मी छोड़ दी है, इस कारण वह अब निधि का रूप लेकर जिन की सेवा करने को दरवाजे पर खड़ी हुई है।

इन तीनों कोटों के दरवाजों पर क्रम से व्यन्तरदेव, भवनवासी देव और स्वर्ग के देव हाथों में तलवार लिये पहरा दे रहे थे।

इस अन्त के कोट से लेकर जिनभगवान के सिंहासन तक स्फटिक की बनी हुई सोलह दीवारें थीं। वे निर्मल सोलह दीवारें जगत का हित करनेवाली पुण्यरूप सोलहकारण भावना के सदृश जान पड़ती थीं। इन दीवारों के ऊपर जिसके खम्भे रत्नों के बने हुए हैं, ऐसा बड़ा ऊँचा दिव्य स्फटिक का मण्डप बना हुआ था।

त्रिजगत्प्रभु, केवलज्ञान-सूरज श्री नेमिजिन इसी मण्डप में विराजे हुए थे और इस कारण वह मण्डप सचमुच ही श्रीमण्डप था। देवतागण भक्ति से निरन्तर उस पर सुगन्धित फूलों की वर्षा किया करते थे। उन फूलों की सुगन्ध से खिंचे आये हुए भौरों के झुण्ड के झुण्ड वहाँ सदा गूँजा करते थे-जान पड़ता था, वे जिनप्रभु की स्तुति कर रहे हैं।

वह मण्डप चाहे कितना ही बड़ा हो, परन्तु त्रिभुवन के सब जन बिना किसी बाधा के उसमें समा सकते थे। जिनभगवान की महिमा ही ऐसी है। उस मण्डप के प्रभा-समुद्र में डूबे हुए देवता, विद्याधर, राजे-महाराजे ऐसे जान पड़ते थे-मानों वे नहा रहे हैं। उस मण्डप के खम्भे रत्नों के थे, स्फटिक की उसकी दीवारें थीं, उनमें रत्नों की जड़ाई का सुन्दर काम हो रहा था।

उसके दरवाजे पर पहरा देनेवाले देवगण थे और त्रिजगत् के स्वामी सुरासुरपूज्य श्री नेमिजिन उसमें विराजमान थे। उस मण्डप का कौन वर्णन कर सकता है? उस मण्डप में ठीक बीच में बैडूर्यमणि की बनी हुई प्रभु की पहली पीठ-वेदी थी। उसकी

हरी-हरी सुन्दर किरणें चारों ओर फैल रही थीं। यहाँ से चारों दिशाओं की बारहों सभाओं में प्रवेश करने के सोलह मार्ग थे।

उन सबमें सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। उस प्रथम पीठ पर झारी, छत्र, कलश आदि मंगल-द्रव्य त्रिभुवन की श्रेष्ठ सम्पदा के सदृश शोभा दे रहे थे। यहीं यक्षों के सिररूप पर्वत पर रखे हुए हजार-हजार आरेवाले धर्मचक्र अपने तेज से सूर्य-समान जान पड़ते थे। इस पीठ पर दूसरी पीठ थी। मेरु के शिखर-समान ऊँची वह पीठ सोने की बनी हुई थी।

इस पीठ की आठ दिशाओं में आठ ध्वजायें सिद्धों के त्रिलोक-पूज्य आठ गुणों के सदृश शोभ रही थीं। उन ध्वजाओं पर क्रम से चक्र, हाथी, बैल, कमल, वस्त्र, सिंह, गरुड़ और पुष्पमाला—ये आठ चिह्न थे। हवा से फड़कती हुई वे ध्वजायें मानों अपने पर जो लोगों के सम्बन्ध से पापरज चढ़ गई है, उसे जिनभगवान के सत्समागम से दूर उड़ा रही है।

इस दूसरी पीठ पर तीसरी पीठ बड़ी ऊँची और पंचरंगी रत्नों की बनी हुई थी। अपनी प्रभा से उसने सूर्य को भी जीत लिया था। इस प्रकार रत्न और सोने की बनी हुई उन तीनों पीठों की इन्द्रादिक देवगण पूजा किया करते थे, इस कारण वे जिन के सदृश मानी जाती थीं। उस तीसरी पीठ की पवित्र पृथ्वी पर एक दिव्य गन्धकुटी बनी हुई थी। उसके चारों ओर ऊँचा कोट था।

वह चार दरवाजेवाली गन्धकुटी रत्नमालादि से एक-दूसरी देवता के समान जान पड़ती थी। उसके रंग-बिरंगे रत्नों की किरणें जो आकाश में फैल रही थीं, उससे एक अपूर्व ही इन्द्रधनुष की

शोभा होकर वह लोगों के मन को मोहित कर रही थी। रत्नों के शिखरों से सुन्दर, गन्धकुटी हवा से फहराती हुई ध्वाजाओं से मानों स्वर्ग के देवों को बुला रही है।

अच्छे उत्तम और सुगन्धित केशर, कपूर, अगुरु, चन्दन आदि द्रव्यों से जो उसकी पूजा की जाती थी, उससे सब दिशायें सुगन्धित हो जाती थीं; इस कारण उसका 'गन्धकुटी' नाम सार्थक था। सैकड़ों मोतियों की मालाओं, सैकड़ों फूलों की मालाओं और सैकड़ों तरह के रत्नों के आभूषणों से शोभित वह गन्धकुटी स्वर्ग की शोभा को हँस रही थी–शोभा में वह स्वर्ग से भी बढ़कर थी। दिव्य छत्रत्रय, चँवर, ध्वजा आदि से वह भगवान का त्रिलोक–स्वामीपना प्रगट कर रही थी।

भगवान की स्तुति करते हुए देवाताओं के शब्दों के बहाने वह सरस्वती का रूप धारण कर नेमिप्रभु की स्तुति करती हुई जान पड़ती थी। जिन पर भौंरे गूँजते हैं, ऐसे देवगण द्वारा बरसाये हुए फूलों की सुगन्ध से वह सब दिशाओं को सुगन्धित बना रही थी। उसके बीच में सोने का चमकता हुआ सुन्दर सिंहासन नाना तरह के रत्नों की प्रभा से युक्त उन्नत मेरु के शिखर–सदृश जान पड़ता था।

उस पर चार अंगुल अन्तरीक्ष आकाश में केवलज्ञानरूपी सूरज, त्रिजगत्स्वामी नेमिजिन विराजे हुए थे। उस उन्नत सिंहासन पर विराजे हुए नेमिजिन अपने प्रभाव से त्रिलोक–शिखर पर विराजे हुए सिद्ध भगवान से शोभित हो रहे थे।

उस सिंहासन पर विराजे हुए भगवान नेमिजिन पर देवतागण फूलों की वर्षा कर रहे थे। मन्दार, पारिजात आदि मनोहर फूलों

की उस वर्षा ने सब दिशाओं को सुगन्धित बना दिया था। सारे समवसरण को लेकर नेमिजिन पर गिरती हुई वह पुष्पवृष्टि मेघ-वर्षा सी जान पड़ती थी। देवों के स्तुति-पाठ के शब्द और भौरों के झंकार से वह पुष्पवर्षा जिनस्तुति करती हुई जान पड़ती थी। गन्धोदक से युक्त उस पुष्पवृष्टि ने त्रिजगत् का हित करनेवाली निर्मल गन्ध-विद्या के सदृश सबको सुगन्धमय बना दिया था।

नेमिप्रभु जिस अशोक वृक्ष के नीचे बैठे थे, उसका मूल भाग वज्र का और क्षायिकभाव के समान दृढ़ था। वह वृक्ष हरिन्मणि के पत्ते और पद्मरागमणि के हितकारी फूलों से कल्पवृक्ष-सा जान पड़ता था।

जो लोग उस वृक्ष को देखते थे और जो उसका आश्रय लेते थे, उनका सब शोक-सन्ताप नष्ट होकर उन्हें अनन्त सुख प्राप्त होता था। हवा के वेग से जो उसकी डालियाँ हिलती थीं और फूल गिरते थे, उससे वह हाथों को फैलाकर नाचता हुआ जान पड़ता था। उसकी डालियों-डालियों पर शब्द करते हुए पक्षीगण के बहाने से मानो वह नेमिजिन के मोह विजय की घोषणा कर रहा है।

जिनका वृक्ष भी लोगों के शोक को दूर कर सुख देता था, तब उन नेमिप्रभु की महिमा का क्या कहना ? भगवान के ऊपर शोभित श्वेत छत्रत्रय, त्रिभुवन के लोगों को प्रिय भगवान का यश-समूह सा जान पड़ता था। चन्द्रकान्तमणि से भी कहीं बढ़कर स्वच्छ प्रभु का वह छत्रत्रय भव्यजनों को मुक्ति के मार्ग रत्नत्रय की सूचना कर रहा था। उस छत्रत्रय का दण्ड अनेक सुन्दर मोतियों की

मालाओं से युक्त था। उस पर रत्नों की जड़ाई का काम हो रहा था।

प्रभु के मस्तक पर स्थित वह स्वच्छ और विशाल छत्रत्रय लोगों को नेमिजिन के त्रिलोक-साम्राज्य के स्वामी होने की सूचना कर रहा था। नाना तरह के आभूषणों को पहरे हुए देवतागण बड़ी भक्ति से भगवान पर चँवर ढोर रहे थे। वे चौसठ दिव्य चँवर नेमिप्रभुरूपी पर्वत के चारों ओर बहनेवाले झरने से जान पड़ते थे, जिन पर ढुरती हुई वह निर्मल चँवरों की श्रेणी उज्ज्वल पुष्पवर्षा सी जान पड़ती थी।

वह चन्द्रमा की किरण समान निर्मल चँवर-श्रेणी प्रभु की सेवा करने को आई हुई भाव-लेश्या सी जान पड़ती थी। उस समय देवगण ने नाना तरह के बाजे और नगाड़े खूब बजाये। उनकी ध्वनि से आकाश भर गया। हर समय ताल, कंसाल, मृदंग, नगाड़े आदि बाजों की ध्वनि आकाश में गूँजा ही करती थी।

मोह-शत्रु पर विजय लाभ करने से प्राप्त वह वाद्यसम्पत्ति मानों आकाश में प्रभु का जयजयकार कर रही थी। देवगण के द्वारा आकाश में बजाये गये नगाड़ों की आवाज से सारा जगत् शब्दमय हो गया।

भगवान के दिव्य देह के प्रभा-मण्डल ने अपनी कान्ति से सारे समवसरण को प्रकाशित कर दिया। कोटि सूरज के तेज को दबानेवाला वह निर्मल भामण्डल लोगों के नेत्रों को बड़ा आनन्द दे रहा था। उसे देखकर बड़ा आश्चर्य होता था।

सारे जगत् को तन्मय करनेवाला वह प्रभु का सुन्दर भामण्डल

मिथ्यात्व अन्धकार को नष्ट करनेवाला एक अपूर्व सूरज सा जान पड़ता था। देव, विद्याधर, मनुष्य आदि उस निर्मल भामण्डल में काँच में मुँह देखने की तरह अपने सात भवों को देख लेते थे। जिनके शरीर की प्रभा का ऐसा प्रभाव था, उनके त्रिकाल-प्रकाशक ज्ञान का क्या कहना ?

नेमिजिन के मुख-कमल से निकली हुई दिव्यध्वनि पापान्धकार का नाशकर जगत् के पदार्थों को दिखा रही थी-उनका ज्ञान करा रही थी। भगवान की दिव्यध्वनि नाना देशों में उत्पन्न हुए और नाना प्रकार की भाषा बोलनेवाले लोगों को भी प्रबोध देती थी। उसे सब अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते थे।

जिन भगवान की महिमा तो देखो ! जो एक प्रकार की ध्वनि होकर भी नाना देशों के लोगों को प्राप्त होकर वह सैकड़ों भाषारूप हो जाती थी। जैसे मीठा पानी नाना वृक्षों को प्राप्त होकर नाना तरह के रसरूप हो जाता है, उसी तरह दिव्यध्वनि भी हर देश के लोगों के सम्बन्ध से नानारूप से हो जाती है। और जैसे निर्मल स्फटिक नाना रंगों के सम्बन्ध से नाना रंगरूप हो जाता है, उसी तरह दिव्यध्वनि भी आधार के अनुरूप सैकड़ों भाषामय बन जाती है।

वह जिनभगवान की अक्षरमयी ध्वनि सब तत्त्वों की जान करानेवाली और एक योजनतक सुनाई पड़नेवाली थी। उसने सातों तत्त्व, नौ पदार्थ और लोकालोक के स्वरूप को प्रकाशित कर दिया था। जगत का सन्ताप हरनेवाली वह नेमि जिनकी ध्वनि सुख देनेवाले मेघ-सदृश जान पड़ती थी। इस प्रकार इन्द्र ने कुबेर

द्वारा समवसरण की रचना करवायी। वह समवसरण लोगों के मन को बड़ा मोहित कर रहा था।

★ ★ ★

इसके बाद सौधर्मेन्द्र आदि बत्तीसों इन्द्र असंख्य देव-देवांगनाओं के साथ अपने-अपने ऐरावत हाथी आदि विमानों पर सवार होकर स्वर्गीय ठाठ-बाट से आकाश में चले। छत्र, ध्वजा आदि से शोभित विमानों पर बैठे हुए थे। दूर ही से उन्होंने उस त्रिभुवन-श्रेष्ठ समवसरण को देखा-मानों हवा से फहराती हुई ध्वजाओं के बहाने वह उनको बुला रहा है।

बड़े आनन्द से उन्होंने उस सुख देनेवाले समवसरण की तीन प्रदक्षिणा कर उसमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने लोकशिखर पर विराजमान सिद्ध की तरह दिव्य सिंहासन पर विराजमान, अनन्त चतुष्टययुक्त, चौतीस महा आश्चर्य से सुशोभित, चारों दिशाओं में चार मुँहवाले, जिन पर चँवर ढुर रहे हैं, और पृथ्वीतल को पवित्र करनेवाले, जगत्पवित्र, त्रिभुवनाधीश नेमिजिन को देखे।

बड़ी भक्ति से देवताओं ने नाना तरह के द्रव्यों द्वारा उनकी पूजा की। उनके चरणों में उन्होंने सोने की झारी से पवित्र तीर्थों के जल की धारा दी। वह शील, सुगन्धित और सुख देनेवाली पवित्र जलधारा भव्यजन की पवित्र मनोवृत्ति के समान शोभित हुई। चन्दन, केशर, अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थों के विलेपन से उन्होंने जिनके चरणों की पूजा की।

कान्ति से चमकते हुए मोतियों को चढ़ाया। जिनकी सुगन्ध से दशो दिशायें सुगन्धित हो रही थीं, ऐसे जाती, चम्पक, कुन्द,

मंदार आदि के फूलों* को उनके चरणों में भेंट किया। दुःख दरिद्रता आदि कष्टों को नाश करनेवाले, पवित्र अमृतमय नैवेद्य को चढ़ाया।

श्रेष्ठ रत्नों के दीपकों से उन केवलज्ञान-रूपी सूरज और संसार से पार करनेवाले नेमि जिन की बड़ी भक्ति से अर्चा की। श्रेष्ठ काश्मीर चन्दन, अगुरु आदि से बनी हुई, रूप-सौभाग्य की देनेवाली और सुन्दर सुगन्धित धूप उनके आगे प्रस्तुत की।

स्वर्गीय कल्पवृक्षों के फलों से उन स्वर्ग-मोक्ष को देनेवाले नेमिजिन की बड़ी भक्ति से पूजा की। इसके बाद देवताओं ने स्वर्णपात्र में रखा हुआ, सैकड़ों सुखों का देनेवाला पवित्र अर्घ्य जिनदेव को समर्पित यिा। इस प्रकार उन देवगण ने महाभक्ति से नेमिजिन की पूजा कर फिर स्तुति करना प्रारम्भ किया।

हे नाथ! आप त्रिभुवन के स्वामी और मिथ्यान्धकार को नाश करनेवाले केवलज्ञान-रूपी महान प्रदीप हो। सब विद्याओं के स्वामी, त्रिलोक के भूषण और त्रिभुवन के गुरु हो। जीवों के माता, पिता और बन्धु हो। लोगों को आश्रयदाता, सबके हितकर्ता, पितामह, त्रिभुवन प्रिय और भय से डरे हुए लोगों के रक्षक हो। सब सुखों के कारण, गुण-सागर, सुरासुर-पूज्य और सात तत्त्वों के जानकार हो।

अनन्त संसार-समुद्र से पार करनेवाले, संसार का भ्रमण मिटानेवाले, देव होकर भी देव-पूज्य और कर्म-मल रहित, निर्मद

* देवताओं द्वारा चढ़ाये गये फूल और कल्पवृक्ष इत्यादि के फूल पृथ्वीकायिक होते हैं, सचित वनस्पतिकाय नहीं।

हो। आपको किसी प्रकार का रोग नहीं, कोई बाधा नहीं। आप निष्कलंक, निष्पाप और जीवमात्र पर समबुद्धि होने पर भी भक्तिजनों को मनचाही वस्तु के देनेवाले हो। वीतराग हो, आनन्द देनेवाले हो। सिद्ध, बुद्ध, विरागी, विशुद्ध और संसार के एक-दूसरे पिता हो।

आप सुख देनेवाले हो, इस कारण 'शंकर' हो। आपने कर्मों को जीत लिया, इसलिए आप 'जिन' कहलाये। आप सर्वज्ञ, गुणज्ञ और सब सन्देहों के नाश करनेवाले हो। प्रभो! आपने धर्मतीर्थ का प्रचार किया, इस कारण आप 'तीर्थनाथ' हो। आपका केवलज्ञान त्रिभुवन-व्यापी है, इस कारण लोग आपको विष्णु कहते हैं।

आप परम ज्योतिस्वरूप, त्रिलोक-बन्धु, और कर्मशत्रु के नाश करनेवाले हो। आप आत्मतत्त्व को जानते हो, इस कारण आपको मुनिजन ब्रह्मा कहते हैं। आप धीर-वीर गम्भीर, और सुख देनेवाले हो। लोक में दिव्य चिन्तामणि और कल्पवृक्ष आप ही कहे जाते हो। आप नाथ, पति, प्रभाधीश, कामद, कामहा, कामदेव और देव-पूज्य हो। आपको बड़े-बड़े विद्वान् पूजते हैं। आप सर्व पदार्थों का प्रकाश करते हो, इस कारण वचनरूपी किरणों के धारक सूरज हो। आप धर्माधिपति, सबमें प्रधान और परम उदयशाली हो। आप वाक्यामृत के श्रेष्ठ समुद्र, दयासागर, बुद्धिशाली, मुक्ति के स्वामी, और दिव्य रत्नत्रय-स्वरूप हो। आप श्रेष्ठ मंगल, श्रेष्ठ कवि और सत्पुरुषों के श्रेष्ठ आश्रय हो। आप सन्ताप के नाश करनेवाले चन्द्रमा, सुन्दर चारित्र के भूषण, मुनीन्द्र, विवेकी, पवित्रहृदय और मुनिजन-वन्द्य हो।

आप अनन्त गुणयुक्त, अनन्त चतुष्टय-विराजित, सबके हितकारी दिव्य-शरीर और बड़े सुन्दर हो। पवित्र से पवित्र लोग आपकी सेवा करते हैं। आपने संसार-समुद्र पार कर लिया। आपको कोई आपद-विपद नहीं। आप लोगों को परमानन्द के देनेवाले हो।

आपने मोक्ष सुख प्राप्त कर लिया है। नाथ! आपमें तो अनन्त निर्मल सुख देनेवाले अनन्त गुण हैं और हम हैं बड़े ही थोड़ी बुद्धि के धारक, फिर हम आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? परन्तु नाथ! बुद्धि न होने पर भी भक्तजन तो अपने प्रभु की स्तुति करते ही हैं। प्रदीप क्या तेजस्वी सूरज की पूजा नहीं करता? अथवा भक्तजन से कौन नहीं पुजता? उसी तरह नाथ! केवल भक्तिवश होकर ही हमने आपकी स्तुति करने की हिम्मत की है।

प्रभो! इस प्रकार स्तुति कर हम प्रार्थना करते हैं कि आप हमें अपनी मोक्ष की कारण भक्ति दीजिए। इस प्रकार देवगण केवलज्ञान-विराजमान नेमिजिन की स्तुति कर अपने-अपने कोठों में जा बैठे। इन देवताओं की तरह इन्द्राणी आदि देवांगनाओं ने भी परमानन्दित होकर नेमिजिन के सुख-दाता चरणों की पूजा की।

★ ★ ★

नेमिजिन के केवलज्ञान की खबर मिलते ही त्रिखण्डपति बलदेव, श्रीकृष्ण भी अपनी सब सेना तथा परिवार के साथ गिरनार पर्वत पर गये। समवसरण में जाकर उन्होंने नेमिजिन की तीन प्रदक्षिणा की और बड़े आनन्द से 'नन्द' 'जीव' 'रक्ष' कहकर भगवान का जय-जयकार किया। उन लोकश्रेष्ठ निधि नेमिजिन को देखकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए।

इसके बाद उन्होंने चन्दनादि श्रेष्ठ द्रव्यों से बड़ी भक्ति के साथ उन श्रेष्ठ सम्पदा के देनेवाले और संसार-समुद्र से पारकर मोक्ष प्राप्त करानेवाले नेमिजिन की पूजा की। नेमिजिन एक तो बलदेव-कृष्ण के कुटुम्बी और दूसरे जिन, अतएव उन्होंने जो भक्ति की, उसका कौन वर्णन कर सकता है।

पूजन के बाद उन्होंने नेमिजिन की स्तुति की है—हे त्रिभुवनाधीश! आपकी जय हो। हे नाथ! आप देवतागण द्वारा पूज्य हो। धर्मचक्र चलाने में चक्र की धार हो और केवलज्ञानरूपी दीपक से लोकालोक को प्रकाशित कर रहे हो।

प्रभो! आप जगत के बन्धु तो हो ही, परन्तु हमारे विशेष कर बन्धु हो। आपकी दिव्यमूर्ति को देखकर बड़ा आनन्द होता है। आपकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त है। भव्यजनों को आप सद्गति के देनेवाले हो। आप रक्षक, संसार से पार करनेवाले और महान पवित्र हो। यादव-वंशरूपी कमल को प्रफुल्ल करनेवाले श्रेष्ठ आप सूरज हो।

नाथ! इस संसार को रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग को दिखानेवाले वास्तव में आप ही हो। हे जगद्गुरु! आपके अनन्त केवलज्ञान को प्रकाशित होने पर सूर्य-तेज से नष्ट हुए जुगनू की तरह सब कुवादी लोग छुप गये। इसलिए हे नाथ! आप ही देवों के देव हो, जगद्गुरु हो, सब सन्देहों के नाश करनेवाले हो, सुख देनेवाले हो और पूज्य भी आप ही हो।

हे भगवन्! समवसरण आदि ये सब आपकी बाह्य विभूति हैं। जब इसका ही कोई वर्णन नहीं कर सकता, तब अनन्त ज्ञान,

अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यरूप अन्तरंग विभूति का तो कौन वर्णन कर सकता है ? नाथ ! आप त्रिलोक के स्वामी और लोकालोक के प्रकाशक हो। हमें आप हाथ का सहारा देकर इस संसार-समुद्र से पार करो।

इस प्रकार नेमिजिन की पूजा-स्तुति कर और बार-बार उन्हें नमस्कार कर त्रिखण्डाधीश बलदेव और श्रीकृष्ण ने अपने आत्मा को कृतार्थ किया। इसके बाद समवसरण में विराजे हुए अन्य मुनिजनों को अत्यन्त हर्षमय भाव से नमस्कार कर वे अपने परिवार के साथ मनुष्यों की सभा में जा बैठे।

उस समय उन बारह सभाओं में बैठे हुए देव-मनुष्य, इत्यादि से नेमिजिन खिले हुए कमलों से युक्त सरोवर की तरह शोभित हुए।

पहली सभा में बैठे हुए शुद्ध मनवाले मुनिजन सुख देनेवाले स्वर्गमोक्ष के मार्ग से जान पड़ते थे।

दूसरी सभा में भक्ति-परायण स्वर्ग की सुन्दर देवांगनायें बैठी हुई थीं।

तीसरी सभा में सम्यक्त्व धारण की हुईं और जिनपूजा-परायण श्राविकायें और आर्यिकायें थीं।

चौथी सभा में चमकती हुई शरीर-प्रभा से दिव्य-भक्ति सदृश जान पड़नेवाली चाँद-सूरज आदि ज्योतिष्क देवों की स्त्रियाँ थीं।

पाँचवीं सभा में दिव्य-प्रभा की धारक और जिनभक्तिरत व्यन्तरों की देवियाँ थीं।

छठी सभा में जिनचरण-सेविका पद्मावती आदि नागकुमार देवों की सुन्दर देवांगनायें थीं।

सातवीं सभा में धरणेन्द्र, नागकुमार आदि दस प्रकार जिनभक्त देवता थे।

आठवीं सभा में जिनभक्त और जिनवाणी का आदर करनेवाले किन्नर आदि आठ प्रकार के व्यन्तर देव थे।

नौवीं सभा में अपनी कान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशमय कर देनेवाले चाँद-सूरज आदि पाँच प्रकार के ज्योतिष्क देव थे।

दसवीं सभा में बारह प्रकार कल्पवासी देवतागण सौधर्म आदि प्रधान देवों के साथ बैठे हुए थे।

ग्यारहवीं सभा में सम्यक्त्वव्रत-भूषित और दान-पूजा आदि शुभकर्मों को करनेवाले मनुष्यगण मुख्य-मुख्य राजाओं के साथ बैठे हुए थे।

बारहवीं सभा में दयावान और सम्यक्त्वी सिंह आदि पशुगण बैठे हुए थे। वे बड़े क्रूर पशु भी जिन भगवान की महिमा से परस्पर की शत्रुता छोड़कर मिलकर सुख से एक जगह बैठ गये।

इस प्रकार इन बारह सभाओं में बैठे हुए देव-मनुष्यादि द्वारा सेवा किये गये जगत्चिन्तामणि श्री नेमिप्रभु बड़े ही शोभित हुए। उन सबके बीच भगवान नेमिजिन दिव्य सिंहासन पर विराजमान थे। तीन छत्र उन पर शोभा दे रहे थे। उनका सिंहासन दिव्य अशोकवृक्ष के नीचे था। देवगण उन पर चँवर ढोर रहे थे। इन्द्र फूलों की वर्षा कर रहा था। नगाड़ों की ध्वनि से सब दिशायें गूँज रही थीं।

कोटि सूरज के समान तेजस्वी भगवान के भामण्डल ने सब ओर प्रकाश ही प्रकाश कर रखा था। देव-मनुष्य-विद्याधर आकर भगवान की पूजा कर रहे थे। सोलहकारण भावना के पुण्य-बल से भगवान को महान अतिशयवती दिव्यध्वनि प्राप्त थी। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख—इन चार अनन्त चतुष्टय से भगवान विराजित थे।

इस प्रकार शोभायुक्त त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभु ने भव्यजन के पुण्य से प्रेरणा किये जाकर तीर्थंकर पुण्य-प्रकृति से प्राप्त अक्षरमयी (ॐकारमयी) दिव्यध्वनि द्वारा सात तत्त्वों का विस्तार से उपदेश किया।

वास्तव में नेमिजिन त्रिजगत् के स्वामी और लोकालोक के प्रकाशक थे। अब कुछ सुख-कर्ता नेमिप्रभु के समवसरण में उपस्थित मुनिराज इत्यादि की संख्या का प्रमाण लिखा जाता है।

त्रिजगतस्वामी नेमिजिन के चरण-रत वरदत्त आदि ग्यारह गणधर थे। वे गणधर केवलज्ञानरूपी साम्राज्यलक्ष्मी के प्रभु नेमिजिन के युवराज से जान पड़ते थे। उन्होंने जिन-प्रणीत तत्त्व संग्रह के अनेक ग्रन्थ नाना रचनाओं में रचे थे। चार-सौ आचार्य थे। वे अंग-पूर्व-प्रणीर्णक आदि सकल श्रुत के विद्वान थे।

ग्यारह हजार आठ-सौ उपाध्याय थे। सुन्दर चारित्र के धारक मति-श्रुत-अवधि-ज्ञानी मुनि 15 सौ थे। इतने ही लोगों को परम सुख के देनेवाले, भवसागर से पार करनेवाले और लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानी मुनि थे।

इक्कीस सौ विक्रियाऋद्धिधारी मुनि जिनवचनामृत का पान

करने को विराजे थे। दूसरों की मनोवृत्ति के जाननेवाले 900 मन:पर्ययज्ञानी मुनि थे। मिथ्यावादियों के मतरूपी अन्धकार के नाश करने को सूरज-सदृश वादी मुनि 800 थे।

इस प्रकार वे सब रत्नत्रय-विराजमान मुनि अठारह हजार थे। यक्षी, राजामती, कात्यायनी आदि सब मिलाकर आर्यिकायें 44000 थीं। जिनभगवान के ध्यान में मन लगाये हुईं वे आर्यिकायें शुद्ध सरस्वती के सदृश जान पड़ती थीं। सम्यक्त्वी, व्रत-दान-पूजा आदि में रत श्रावकजन एक लाख थे।

मिथ्यात्वरहित, पात्रदान-पूजा-व्रत आदि में तत्पर तीन लाख श्राविकायें थीं। चारों प्रकार के देव-देवांगनाओं की कोई संख्या न थी-वे असंख्य थे। शान्त-मन सिंह आदि पशु नेमिजिन के चरणों में बैठे थे, उनकी भी संख्या अनगिनती थी।

इस प्रकार नेमिजिन के पुण्य से बारहों सभाओं में देव-मनुष्यादिक अपने-अपने योग्य स्थान पर सुख-भक्ति-आनन्द के साथ बैठे हुए थे। वहाँ वे सदा धर्मामृत पान से पुष्ट होकर बड़े हँसमुख रहते थे।

केवलज्ञान-विराजित नेमिप्रभु की, त्रिभुवन के जन को परम आनन्द देनेवाली जिन रत्नमयी सभा को इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने बनाया, उसका मुझ सरीखे अल्पज्ञानी क्या वर्णन कर सकते हैं ? उस सुखमयी सभा का यह तो मैं कोई करोड़वें अंश भी वर्णन नहीं कर पाया हूँ। परन्तु अमृत पीने को न मिले तो उसका छू लेना भी सुखकर है।

इन्द्रादि देवतागण जिनकी विभूति का जब वर्णन नहीं कर

सकते, तब मेरी तो क्या चली ? तो भी जिनभक्ति के प्रभाव से उसका मैंने कुछ वर्णन किया। वह त्रिभुवनजन-सेवनीय सभा कल्याण करे-सुख दे।

इस प्रकार श्रेष्ठ विभूति से जो शोभित हैं, केवलज्ञान द्वारा लोकालोक का प्रकाश करनेवाले हैं, देवतागण जिनकी सदा सेवा-पूजा करते हैं और जिन ने जगत को धर्मामृत के पान द्वारा सन्तुष्ट कर उसका सन्ताप नष्ट कर दिया, वे भी नेमिप्रभु सब जगत को श्रेष्ठ सुख दें।

जिन्हें केवलज्ञान होने पर देव-देवांगनागण ने सुखमयी सभा निर्माण कर भक्ति भरे शुद्ध हृदय से श्रेष्ठ आठ द्रव्यों द्वारा जिनके चरणों की पूजा की, वे नेमिजिन भव-भय हरकर उत्तम सुख दें।

इति दशमः सर्गः।

ग्यारहवाँ अध्याय
नेमिजिन का पवित्र उपदेश

देव-गण-पूजित और केवलज्ञान-भास्कर श्री नेमिप्रभु तीर्थंकर नाम पुण्यकर्म से प्राप्त दिव्य सिंहासन पर आठ प्रातिहार्यों से युक्त विराजे हुए आकाश में प्रकाशमान चन्द्रमा के समान जान पड़ते थे। उस सिंहासन से चार अंगुल ऊँपर निराधार आकाश में विराजमान हुए भगवान भव्यजन के पुण्य की प्रेरणा से हितकारी धर्म का उपदेश करने लगे।

कर्म-अंजन रहित उन भगवान के मुख-कमल से त्रिलोक-श्रेष्ठ और लोगों के मन को प्रसन्न करनेवाली **दिव्यध्वनि** खिरी। उस ध्वनि में तालु, ओठ, दाँत आदि का सम्बन्ध न था। भगवान इच्छा करके कोई उपदेश करने को प्रवृत्त नहीं हुए थे, तो भी उनके माहात्म्य और भव्यजन के पुण्य से उनका उपदेश हुआ। सुखमयी वह जिनकी दिव्यध्वनि साक्षर थी; क्योंकि उसे सब देशों के लोग अपनी भाषा में समझ लेते थे।

कमलिनी को प्रफुल्ल करनेवाले सूरज के समान नेमिप्रभु ने अपनी वचनमयी किरणों से उन बारहों सभा को प्रसन्न करते हुए जिस समुद्र-सदृश गम्भीर, और सुख देनेवाले धर्म के भेदों को कहा, उन्हें कहने को कोई समर्थ नहीं। तो भी बुद्धि के न रहने पर भी केवल भक्ति-वश होकर पूर्वाचार्यों का अनुकरण कर हितकर्ता **धर्म का कुछ स्वरूप** कहने का मैं साहस करता हूँ।

मन-वचन-कायपूर्वक धर्म का पालन करने से वह लोगों को

उत्तम सुख देता है। पूर्वाचार्यों ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रय को श्रेष्ठ धर्म कहा है। इनमें सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और जिनप्रणीत अहिंसामयी धर्म में प्रीति-रुचि-विश्वास करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जैसे सिर, मुँह, हाथ, पाँव आदि आठ सुदृढ़ अंगों से यह मनुष्य-शरीर सुन्दर दीख पड़ता है, उसी तरह यह सम्यग्दर्शन भी बिना आठ अंगों के शोभा को प्राप्त होता। और जैसे साणपर चढ़ाया हुआ रत्न मैलरहित होकर निर्मल हो जाता है, उसी तरह तीन मूढ़ता, आठ प्रकार के गर्व आदि मलरहित शुद्ध **सम्यग्दर्शन** बड़ी ही निर्मलता लाभ करता है।

ऊपर जो देव-गुरु-शास्त्र के विश्वास करने को सम्यग्दर्शन कहा, उनमें देव वह है जो दोषों से रहित हो। वे दोष अठारह हैं—उनके नाम हैं—भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, शोक, जन्म, मरण, भय-डर, निद्रा, राग, द्वेष, विस्मय, चिन्ता, रति, गर्व, पसीना, खेद-दु:ख, और मोह। जो इन दोषों से रहित, सर्वज्ञ, स्नातक-परिग्रहादिरहित परम निर्ग्रन्थ, जिन, कर्म-अंजनरहित और परमेष्ठी हैं, वही सच्चे देव हैं।

अपने स्वभाव में स्थिर इन जिन भगवान ने जो परस्पर विरोधरहित शास्त्र कहा—जीव-अजीवादि तत्त्वों का स्वरूप प्रगट करनेवाला, वही लोक में पवित्र शास्त्र है और वही शास्त्र स्वर्ग-मोक्ष का सुख देनेवाला है।

जो ग्रह-सदृश कष्ट देनेवाले, बाह्य और अन्तरंग परिग्रहरहित, निर्ग्रन्थ, परमार्थ के जाननेवाले, ज्ञान, ध्यान, तप, योग में सावधान,

परमदयालु, क्षमावान और परम ब्रह्मचारी हैं, वे सच्चे गुरु या तपस्वी हैं और सब जीवों का हित करनेवाले हैं।

इस प्रकार देव-गुरु-शास्त्र के विषय में जो संज्ञी भव्य का संशयादि दोषरहित विश्वास है, उसे ही आचार्यों ने सुख देनेवाला सम्यग्दर्शन कहा है।

वीतरागी परमात्मा द्वारा कथित तत्त्वार्थों अथवा उनके वचनों में शंका न होना यह प्रथम 'नि:शंकित' अंग है।

कर्मबन्ध के कारण संसार-शरीर-भोग आदि के सुख में मन, वचन, काय से इच्छा-चाह का न होना 'निष्कांक्षित' नाम दूसरा सम्यग्दर्शन का अंग है। शरीर अपवित्र वस्तुओं से भरा है, परन्तु रत्नत्रय का साधन है। इस कारण यदि किसी धर्मात्मा या अन्य जन से शरीर में कोई रोगादिक हो जाये तो उससे घृणा न करना, वह 'निर्विचिकित्सा' नाम तीसरा अंग है।

कुमार्ग और कुमार्गी मनुष्यों से प्रेम न करना, उनकी प्रशंसा न करना, वह 'अमूढ़दृष्टि' नामक चौथा अंग है।

शुद्ध जिनधर्म की अज्ञानी और मूर्खजन के सम्बन्ध से यदि निन्दा-बुराई होती हो तो उसे ढँक देना वह, 'उपगूहन' नाम पाँचवाँ अंग है।

यदि कोई प्रमाद-असावधानी या कषाय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप पवित्र मार्ग से उल्टा जा रहा हो—गिर रहा हो, उसे उसी मार्ग में फिर दृढ़ कर देना वह 'स्थितिकरण' नाम छठा अंग है।

धर्मात्मा जन के साथ छल-कपट-मायाचार रहित प्रेम करना,

वह सुख का साधन सातवाँ 'वात्सल्य' नाम अंग है।

मिथ्या-अज्ञानरूप अन्धकार को नष्ट करके अपनी शक्ति के अनुसार नाना प्रयत्न द्वारा जैनधर्म का प्रचार करना, वह 'प्रभावना' नाम आठवाँ सम्यग्दर्शन का अंग है।

इन आठ अंगों या गुणों से पूर्णता को प्राप्त पवित्र सम्यग्दर्शन विष-वेदना को नष्ट करनेवाले मन्त्र की तरह कर्मों का नाश करनेवाला है। ये तो हुए सम्यग्दर्शन के आठ गुण।

इसके सिवा शंकादिक आठ दोष, छह अनायतन, तीन मूढ़ता और आठ मद ये पच्चीस उसके दोष हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु तथा इन तीनों के भक्त, ये छह 'अनायतन' हैं—धर्म प्राप्ति के स्थान नहीं हैं।

मिथ्यात्वियों की तरह सूरज को अर्घ देना, ग्रहण इत्यादि में नहाना, संक्रान्ति में दान करना, संध्या, अग्नि, देव, घर, गाय, घोड़ा, गाड़ी, पृथ्वी, वृक्ष, सर्प आदि की पूजा करना, नदी-समुद्र में नहाना, पत्थर-रेती वगैरह का ढेरकर उसे पूजना, पर्वत पर से या अग्नि में गिरना, यह सब 'लोकमूढ़ता' है। अथवा विष-भक्षण, शस्त्र आदि से आत्मघात कर लेना—ये सब महापाप के कारण हैं, पण्डितों ने इनके द्वारा सदा संसार-भ्रमण होना बतलाया है।

वैर की इच्छा या लोभ से रागी-द्वेषी देवों की सेवा-भक्ति करना 'देव-मूढ़ता' है।

नाना घर गृहस्थी के आरम्भ-सारम्भ करनेवाले, संसाररूपी गढ़े में आकण्ठ फँसे हुए और विषयों की चाह करनेवाले ऐसे पाखण्डियों की सेवा-पूजा करना 'पाखण्डी-मूढ़ता' है।

इस प्रकार इन तीन मूढ़ता और छह अनायतन-रहित सब व्रतों के भूषण सम्यग्दर्शन का पालन करना चाहिए।

इसके सिवाय सम्यग्दृष्टि को यह जानकर कि जिनप्रणीत धर्म के पात्र अभिमानी-गर्विष्ट लोग नहीं हैं, आठ प्रकार का गर्व या अभिमान छोड़ देना चाहिए। वे आठ गर्व ये हैं—ज्ञान का गर्व, पूजा प्रतिष्ठा का गर्व, कुल का गर्व, जाति का गर्व, बल का गर्व, धन-दौलत का गर्व, तप का गर्व और रूप-सुन्दरता का गर्व। ये बातें मूर्खों को गर्व की कारण हैं। बुद्धिमान समझदार को नहीं।

इस प्रकार पच्चीस मल दोष रहित जो सम्यग्दर्शन है-वही दोनों लोक में हित करनेवाला है। केवलज्ञानी जिन ने इस सम्यक्त्व के उपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व और क्षयोपशमसम्यक्त्व ऐसे तीन भेद किये हैं।

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी-क्रोध-मान-माया-लोभ, ऐसी चार कषाय, इन सातों प्रकृतियों के उपशम से जो हो, वह 'उपशम सम्यक्त्व' है, इनके क्षय से जो हो, वह 'क्षायिक सम्यक्त्व' है, और जिसमें इन सातों प्रकृतियों की कुछ उपशम और कुछ क्षय दशा हो—दोनों का मिश्रण हो, वह 'क्षयोपशम सम्यक्त्व' है। सम्यक्त्व का यह सब लक्षण व्यवहार से कहा गया और **निश्चय से सम्यक्त्व का लक्षण है—मोह, क्षोभरहित केवल शुद्ध आत्मभावना।**

अन्य आचार्यों ने संवेग, निर्वेद, आत्मनिन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा, ये सम्यक्त्व के आठ गुण कहे हैं। इस प्रकार मोक्ष-कारण, सुख देनेवाले सम्यग्दर्शन का, जो

जन पालन करते हैं, वे ही सम्यग्दृष्टि हैं। जैसे सुदृढ़ नींव मकान की रक्षा करती है, उसी तरह दान-तप आदि की रक्षा का कारण सम्यक्त्व हैं। तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन से ही इनमें समीचीनता पायी जाती है।

इस सम्यक्त्व-रत्न का धारक जिन सेवा करनेवाला भव्य दुर्गति के बन्धनों को काटकर मुक्ति स्त्री का स्वामी होता है। वह नरकगति और तिर्यंचगति में नहीं जाता, नपुंसक और स्त्री नहीं होता, नीच कुल में जन्म नहीं लेता, रोगी, दरिद्री और अल्पायु नहीं होता। किन्तु वह देवता, चक्रवर्ती आदि की नाना भोग-विलास और सुख की कारण, मन को मोहित करनेवाली सम्पदा को उस सम्यक्त्व के प्रभाव से प्राप्त करता है और अन्त में श्रेष्ठ रत्नत्रय धारण कर मोक्ष जाता है।

सत्पुरुषों! इस संसार में सम्यक्त्व ही एक ऐसी श्रेष्ठ वस्तु है, जिससे सब सुख प्राप्त हो सकता है। जीव के लिए हितकारी इतनी कोई अच्छी वस्तु नहीं है।

एक जगह इस सम्यक्त्व की प्रशंसा में कहा गया है—जितना एक पत्थर का गौरव हे, उतना ही गौरव सम्यक्त्व रहित शम-ज्ञान-चारित्र-तप वगैरह का समझना चाहिए और जब ये ही ज्ञान-चारित्र-तप सम्यक्त्व सहित हो जाते हैं, तब एक बहुमूल्य रत्न की तरह आदर के पात्र हो जाते हैं। इस कारण हर प्रयत्न द्वारा इस स्वर्ग-मोक्ष के कारण सम्यक्त्व को प्राप्त करना चाहिए।

संक्षेप में पण्डितों ने सत्यार्थ-देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहा है।

वह सम्यक्त्व संसार-भ्रमण से होनेवाले दु:खों और कुगति का नाश करनेवाला है, ज्ञान-ध्यान, तप-दान आदि क्रियाओं का भूषण और धर्मरूपी वृक्ष का बीज है। वह सम्यक्त्व सत्पुरुषों को सदा स्वर्ग-मोक्ष का सुख दे। इस सम्यक्त्व के ग्रहण करने के पूर्व कुदेवों में देवता बुद्धि, कुगुरुओं में गुरुपना और मिथ्यातत्त्वों में तत्त्वभावना रूप मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए।

—इति सम्यक्त्वाधिकार।

इस प्रकार सम्यक्त्व का उपदेश कर जगद्गुरु नेमिजिन ने सम्यग्ज्ञान का स्वरूप कहना आरम्भ किया। वे बोले—

पूर्वापर के विरोधरहित और अत्यन्त शुद्ध जो ज्ञान है, वही सच्चा ज्ञान है, और वही लोगों का दूसरा नेत्र है। जिसमें सुखमयी जीवदया का उपदेश हो, वही श्रेष्ठ ज्ञान सब सम्पदा का कारण है। और जिसमें सैकड़ों दु:खों की कारण जीवहिंसा कही गई है, वह ज्ञान नहीं—कुज्ञान—मिथ्याज्ञान है और महापाप का कारण है।

जिसके द्वारा लोग हिंसा-झूठ-चोरी आदि पापों को छोड़ सके, ज्ञानीजनों ने उस ज्ञान को सब जीवों के लिए सुख का कारण कहा है। जिसके द्वारा मूर्ख मनुष्य भी लोक-अलोक और हित-अहित को बिना किसी सन्देह के जान लें, वह जिनप्रणीत ज्ञान सर्वोत्तम है।

जिन भगवान ने इस ज्ञान के अनेक भेद कहे हैं, उन्हें शास्त्रों द्वारा जानना चाहिए। उसके जो जग-हितकारी चार महा अधिकार हैं, उनका स्वरूप संक्षेप में यहाँ लिखा जाता है—

पहला **प्रथमानुयोग** नाम अधिकार है। उसमें—शान्तिकर्ता

तीर्थंकर जिनका पुण्य का कारण पुराण, उनके पंच कल्याणकों का विस्तारसहित वर्णन और गणधर, चक्रवर्ती आदि महात्माओं का पवित्र चरित्र रहता है।

दूसरा '**करणानुयोग**' नाम अधिकार है। उसमें लोकालोक की स्थिति, काल का परिवर्तन और चारों गतियों के भेदों का वर्णन है। यह अधिकार संशयरूपी अन्धकार को नाश कर बड़ा सुख का देनेवाला है।

तीसरा '**चरणानुयोग**' नाम अधिकार है। उसमें मुनियों और श्रावकों के श्रेष्ठ चरित्र, उसकी उत्पत्ति, वृद्धि और उसके द्वारा होनेवाला सुख और फल आदि बातों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन रहता है।

चौथा मिथ्यात्व का नाश करनेवाला '**द्रव्यानुयोग**' नाम अधिकार है। उसमें जीव-अजीव आदि सात तत्त्व, पुण्य-पाप और सुख-दु:ख आदि का विस्तृत वर्णन होता है।

इसके बाद केवलज्ञानी नेमिप्रभु ने दिव्यध्वनि द्वारा बारह अंगों का स्वरूप कहकर चार ज्ञानधारी गणधरों द्वारा स्वपरोपकार के लिए जो नाना प्रकार संस्कृत-प्राकृत भाषा में तथा अनेक छन्दों में अध्यात्म, दर्शन, न्याय, साहित्य आदि ग्रन्थ रचे गये, उन सबके पदों की संख्या बतलाई। वह संख्या है—112 करोड़ 83 लाख और 8 हजार पाँच। यह जो संख्या कही गई वह ग्रन्थ के परिमाण से है, अर्थ परिणाम से तो उसे कोई नहीं कह सकता। कोई पूछे कि इन सब पदों में से एक पद के श्लोकों की संख्या कितनी होगी, तो उसका उत्तर मुनियों ने यह दिया है कि—51 करोड़,

8 लाख, 84 हजार, 6 सौ 21 एक महापद के श्लोकों की संख्या है। इस प्रकार महिमा प्राप्त जिनप्रणीत श्रुतज्ञान की, केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए भव्यजनों को आराधना करनी चाहिए।

जिनप्रणीत यह श्रुतज्ञान लोकालोक का ज्ञान करानेवाला, अनादि-निधन और मिथ्याज्ञान का क्षय करनेवाला है। इसकी जो गुरु चरण-सेवा-रत भव्यजन भक्ति भरे स्वस्थ चित्त से पाँच प्रकार स्वाध्याय के रूप में आराधना करते हैं—ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करते हैं, वे बड़े ज्ञानी होते हैं, कला-कौशल के जाननेवाले होते हैं और सुख-सम्पदा, यश-कीर्ति का लाभ करते हैं।

अन्त में वे सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से चराचर का ज्ञान करानेवाले अनन्त सुख-समुद्र केवलज्ञान को प्राप्त कर जन्म-जरा-मरण-दु:ख-शोक आदि रहित अनन्त सुखमय मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जैसा कि कहा गया है—ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, जब वह पूर्णरूप से उसमें विकास को प्राप्त हो जाता है, तब फिर कभी नष्ट नहीं होता और न घटता-बढ़ता है।

इस कारण जो ऐसा नष्ट न होनेवाला ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें उस सम्यग्ज्ञान के प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। यह जानकर हे भव्यजनों! मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक सम्पदा के खान जिनप्रणीत सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करो। जिनभगवान के सुख-चन्द्र से निकले श्रुत-समुद्र की मैं भी शरण लेता हूँ, वह मोक्ष दे। जिनप्रणीत सम्यग्ज्ञान पुण्य का कारण और मिथ्या-ज्ञान का क्षय करनेवाला है, लोकालोक के देखने-जानने को एक अपूर्व नेत्र और सन्देह का नाश करनेवाला है। जीव-अजीव आदि तत्त्वों के

भेदों का वर्णन करनेवाला और ज्ञानियों का जीवन है और सुख तथा आनन्द का देनेवाला है, वह सत्पुरुषों को सुख दे।

—इति ज्ञानाधिकार

इस प्रकार ज्ञान का स्वरूप कहकर केवलज्ञानी नेमिप्रभु ने सुगति का कारण सुन्दर **चारित्र का स्वरूप** कहना आरम्भ किया। वे बोले—

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों को छोड़ना, वह चारित्र है। इस जिनप्रणीत चारित्र को इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि बड़े-बड़े लोग मानते और पूजते हैं। यह दु:ख-दरिद्रता-दुर्भाग्य-दुराचार आदि पापों को नाश करनेवाला और सुख का कारण है। इस चारित्र के मुनि-चारित्र और श्रावक-चारित्र—ऐसे दो भेद हैं। हिंसा आदि पाँच पापों का सम्पूर्णपने त्याग करने को सकलचारित्र या मुनि-चारित्र कहते हैं और यह साक्षात् मोक्ष का कारण कहा गया है। इसी सकल त्याग को श्रेष्ठ पाँच महाव्रत कहते हैं। इन महाव्रत के सिवा मन-वचन-काय की शुद्धि से उत्पन्न तीन गुप्ति और पाँच पवित्र समिति, इस प्रकार ये सब मिलाकर तेरह प्रकार का श्रेष्ठ मुनिचारित्र होता है। यह चारित्र स्वर्ग-मोक्ष का देनेवाला है। इस चारित्र के, संसार-समुद्र से पार करनेवाले और हितकारी भेदों का श्री नेमिप्रभु ने बहुत विस्तार से वर्णन किया था। वे भेद वर्णन में मेरु से भी कहीं उन्नत हैं। उनका वर्णन मैं नहीं कर सकता—मुझमें वैसी शक्ति नहीं। भुजाओं द्वारा समुद्र को कौन तैर सकता है ? इस कारण इस विषय को छोड़कर श्रावक-चारित्र का कुछ वर्णन किया जाता है।

अनावश्यक स्थावर-हिंसा का त्यागकर, त्रस-हिंसा का त्याग करनेरूप अणु-चारित्र को **श्रावक-चारित्र** कहते हैं। यह चारित्र स्वर्गादिक सद्गति का कारण है। इस सम्यक्त्वयुक्त श्रावकधर्म में पहले ही आठ मूलगुण धारण करने चाहिए। मद्य, माँस, मधु और पाँच उदुम्बर के त्यागने को आठ मूलगुण कहते हैं। मद्य (अर्थात्) शराब छोटे-छोटे असंख्य जीवों की घर, बुद्धि का नाश करनेवाली, नीच लोग जिसे पसन्द करते हैं और हिंसा की कारण है, उसे कभी न पीना चाहिए। इसी के द्वारा हजारों दुराचार-अनर्थ होते हैं और कुल का क्षय हो जाता है। शराब पीकर बे-सुध हुआ मनुष्य इधर-उधर गिरता पड़ता हुआ चलता है—उसके बराबर पांव नहीं उठते। वह कभी जमीन पर गिरता पड़ता है—मल उसके शरीर से लिपट जाता है, तब उसकी दशा ठीक कुत्ते के सदृश हो जाती है। कोई उसके पास जाकर नहीं फटकता। शराब पापबन्ध की कारण है, निन्द्य है, संसार-समुद्र में गिरानेवाली है। इस कारण अपना हित चाहनेवाले सत्पुरुषों को उसे अवश्य छोड़ देना चाहिए। अधिक क्या कहा जाये, जब शराबी काम-पीड़ित होता है, तब वह अपनी माँ-बहिन से भी बुरी नियत कर बैठता है और फिर उस पाप से दुर्गति में जाता है।

इसलिए जो विवेकी हैं, जिन्हें अपने कुलों की लज्जा है और जो दयालु हैं, उन्हें धर्मसिद्धि के लिए मन-वचन-काय से शराब पीना त्याग देना चाहिए। जिन लोगों ने इस व्रत को ग्रहण कर लिया, उन्हें साथ ही इतना और करना चाहिए कि वे न तो शराबियों की संगति करें और न आठ मदों को करें।

ऐसा करने से उनका व्रत और भी अधिक-अधिक निर्मल होता जायेगा। सावधानी के साथ जड़मूल से नष्ट कर दिये गये रोग की तरह यह शराब को छोड़ देना मनुष्यों को कभी कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

माँस, खून और माँस के मिश्रण से बनता है, जीवों के मारने से उसकी पैदायश है। अतएव वह महापाप का कारण है। अच्छे लोगों को उसका सदा के लिए त्याग कर देना चाहिए। एक बार माँस का खाना ही ऐसा भयंकर पाप है कि उससे नरकों में बड़े घोर दु:ख सहने पड़ते हैं और अनन्त काल तक संसार में रुलना पड़ता है। माँस का स्वयं सेवन जितना पाप है, दूसरे से कराने और करते हुए की अनुमोदना करने में भी वैसा ही अनन्त दु:ख का देनेवाला महापाप है।

महा मिथ्यात्व के उदय से जो लोग माँस-सेवन करते हैं, वे लोक में निन्दायोग्य पापी और दु:ख के भोगनेवाले होते हैं। धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल दया है, तब जिसमें दया नहीं, उसके धर्म कहाँ से हो सकता है ? बीज के बिना फल नहीं होता। अन्यत्र भी ऐसा ही कहा गया है कि दया धर्म का मूल है।

जिसने माँस खाकर वह मूल उखाड़ डाला, फिर वह सुखरूप फल-फूल-पत्ते कहाँ से प्राप्त कर सकता है ? अच्छे लोगों को जिसका नाम सुनकर ही बड़ा दु:ख होता है, तब उसका खानेवाला लम्पटी, पापी क्यों न दु:खी होगा ? जैसे कौए, बगुले आदि का नदी में नहाना शुद्धि के लिए नहीं हो सकता, उसी तरह माँस खानेवालों को नहाना, धोना, स्वच्छ वस्त्र पहनना आदि सब वृथा है।

जिन महात्माओं के कुल में स्वप्न में भी माँस की चर्चा नहीं, वे ही वास्तव में भव्य और बड़े पवित्र हैं। जिन्होंने इस माँस खाने को छोड़ दिया है, उन्हें इस व्रत की शुद्धता के लिए चमड़े में रखा हुआ पानी, घी, तेल, हींग आदि वस्तुएँ भी न खानी चाहिए।

अन्यत्र लिखा है—चमड़े में रखे हुए पानी, तेल, हींग, घी आदि का खाना माँस त्याग किये हुए मनुष्य को दोष का कारण है। क्योंकि चमड़े के सम्बन्ध से घी, तेल, पानी इत्यादि में सदा जीव पैदा होते रहते हैं। जैसा कि कहा गया है—घी, तेल, पानी आदि का सम्बन्ध पाकर उस चमड़े में जीव पैदा हो जाते हैं—जैसे सूर्यकान्त के सम्बन्ध से आग और पानी में जीव पैदा हो जाना केवलीजिन ने कहा है।

अन्यत्र लिखा है—चमड़े का पानी पीनेवाले और घी, तेल आदि खानेवाले को दर्शनशुद्धि नहीं हो सकती। शौच, स्नान आदि के लिए भी जब चमड़े का पानी योग्य नहीं, तब उस पानी को पीनेवाला जिनशासन में व्रती कैसे हो सकता है ?

और भी कहा है—जो व्रती हैं, उन्हें चमड़े में रखे हुए हींग, घी, तेल, पानी आदि न खाना चाहिए। कारण उसमें सूक्ष्म जीव पैदा हो जाते हैं और उससे माँख खाने का ही दोष लगता है। इस प्रकार आचार्यों के उपदेश को मन में धारण कर माँस-त्याग व्रती को चमड़े में रखे हुए घी, तेल आदि खाना ठीक नहीं।

मधु (शहद) मक्खियों के वमन से पैदा होता है, नाना जीवों का घर है, पाप का कारण है, और निन्द्य है। यह अच्छे लोगों के खानेयोग्य नहीं। यह निन्द्य शहद देखने में खून के सदृश है।

जिनवचन-रत लोगों को उसका खाना ठीक नहीं।

शहद खाने से बड़ा ही घोर पाप होता है। इस कारण उसका खाना तो दूर रहे, व्रतियों को उसे शरीर में लगाने आदि के काम में भी न लेना चाहिए। इस मधु त्याग व्रत की शुद्धि के अर्थ जिनप्रणीत तत्त्व के जाननेवालों को गीले फूल भी नहीं खाना चाहिए।

बड़ आदि पाँच वृक्षों के फल जो पाँच उदुम्बर कहे जाते हैं, वे त्रस जीवों के घर हैं और दु:खों के मूल कारण हैं। उत्तम लोगों को उनका खाना उचित नहीं है। जो फल भील आदि पापी लोगों के खानेयोग्य हैं, अच्छे पुरुषों को तो उनका त्याग ही कर देना चाहिए।

इसके सिवा पुण्यधन से धनी व्रती लोगों को चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, परन्तु अजान फल सदा के लिए छोड़ देना चाहिए। विद्वान् पण्डित आशाधरजी ने आठ मूलगुण इस प्रकार कहे हैं—मद्य, माँस, मधु, रात्रिभोजन और पाँच उदुम्बर फल का त्याग, पंच परमेष्ठी की वन्दना, जीवदया और जल छानकर काम में लाना, ये आठ मूलगुण हैं।

इस प्रकार जिनशास्त्रानुसार आठ मूलगुणों का स्वरूप वहाँ कहा गया है। सुख प्राप्ति के लिए श्रावकों को इनका पालन करना चाहिए। ये आठ मूलगुण भव्य लोगों के हित करनेवाले और संसार का दु:ख नाश करनेवाले हैं। जो जन सम्यक्त्वसहित दृढ़ता के साथ सदा इनका पालन करते हैं, वे त्रिभुवन के बन्धु जिनधर्म में दृढ़ होकर सुख-सम्पत्ति, प्रताप, विजय, यश और आनन्द को प्राप्त करते हैं।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये गृहस्थों के बारह व्रत हैं। इस श्रावकचारित्र को मुनिजनों ने दूराचार का नाश करनेवाला और श्रेष्ठ सुख-सम्पत्ति का कारण बतलाया है। स्थूल हिंसादिक पाँच पापों का त्याग पाँच अणुव्रत हैं। मन-वचन-काय के संकल्प से त्रस जीवों की हिंसा न करने को पहला 'अहिंसा' नाम अणुव्रत कहते हैं। अहिंसा प्रशंसा योग्य है, जिसमें नाम-स्थापनादि से भी आटे आदि के बने जीव न मारे जायें। देवता की बलि, मन्त्रसिद्धि तथा औषधि आदि के लिए भी चेतन या अचेतन जीव* की हिंसा करना हितार्थियों को उचित नहीं। जिन-प्रणीत तत्त्व के समझनेवाले भव्य लोगों को मन, वचन, काय पूर्वक सदा ही त्रस जीवों की रक्षा करनी चाहिए। जिनभगवान ने पवित्र श्रावक-व्रतियों के यह 'पक्ष' बतलाया कि वे संकल्पी-हिंसा कभी न करें।

मारना, बाँधना, छेदना, ज्यादा बोझा लादना और खाने-पीने को न देना, ये पाँच अहिंसा व्रत के दोष हैं। अहिंसाव्रती को इन्हें छोड़ना चाहिए। इन दोषों से रहित त्रस जीवों की जो लोग दया करते हैं—मन, वचन, काय से किसी जीव को कष्ट नहीं देते हैं, वे श्रेष्ठ व्रती श्रावक हैं। जो श्रावक, इस प्रकार नाना भेदसहित दया पालते हैं और सदा जिनवचन में सावधान रहते हैं, वे इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि की सुख-सम्पदा, स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, रूप-सुन्दरता, भोग-विलास के साधन और ऊँचे कुल प्राप्त करते हैं

* अचेतन जीव से आशय यह है कि किसी पशु आदि की आकृति बनाकर संकल्पपूर्वक उसका घात करना।

और अन्त में रत्नत्रय के प्रभाव से त्रिलोकपूज्य केवलज्ञानी होकर जन्म, जरा, मरणरहित अनन्त, अविनाशी मोक्षलक्ष्मी का सुख भोगनेवाले होते हैं।

जो मूर्ख त्रस जीवों की हिंसा करते हैं, वे फिर उसके पाप से नाना प्रकार के निर्धनता, रोगीपना आदि दु:खों को भोगकर अन्त में कुगति में जाते हैं। वहाँ भी वे छेदना, भेदना और यन्त्रों में दबाकर मारना, आदि घोर से घोर दु:ख सहते हैं।

इस तरह वे अनन्त काल तक संसार में रुलते हुए दु:खों को उठाते हैं। इस कारण हे भव्यपुरुषों! जिनशास्त्रानुसार हिंसा का त्यागकर श्रेष्ठ सम्पत्ति के भोगनेवाले हो। जिनभगवान ने जीवदया सब सुखों की कारण और संसार के दु:खों की नाश करनेवाली कही है। जो लोग उसे मन-वचन-काय से पालते हैं, वे स्वर्गादि की सुख-सम्पदा लाभ कर अन्त में मुक्ति-स्त्री का सुन्दर, अतुल और शुद्ध सुख प्राप्त करते हैं।

स्थूल-झूठ और वह **सत्य** जिससे जीवों को कष्ट पहुँचे, न स्वयं बोलना चाहिए और न दूसरों से बुलवाना चाहिए और न लाभ, डर, द्वेष आदि के वश होकर कभी झूठ बोलना उचित है। यह '**स्थूल-असत्य-त्याग**' नाम का दूसरा अणुव्रत है। इस व्रत के व्रती को इतना और ध्यान में रखना चाहिए कि वह मर्मभेदी, कानों को दु:ख देनेवाले और दूसरे को अच्छे न लगनेवाले वचन भी न बोले। किन्तु दूसरों के हितरूप, सुन्दर, परस्पर विरोधरहित, मन और हृदय को प्यारे लगनेवाले और बहुत परिमित-थोड़े वचन बोले।

प्रिय वचन एक ऐसी मोहिनी है कि उससे क्रूर पशु भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो सबको प्यारे सत्य वचन बोला करते हैं, उनकी कीर्ति त्रिलोक में फैल जाती है। झूठा उपदेश करना, किसी की एकान्त की बातों को प्रगट कर देना, चुगली करना, जाली दस्तावेज बनाना और किसी की धरोहर पचा जाना, ये पाँच असत्य-त्याग-व्रत के दोष-अतिचार हैं। जिन-वचन-रत सत्यव्रती को इनका भी त्याग करना चाहिए। सत्य बोलने से निर्मल यश, लक्ष्मी, विद्या, प्रसिद्धि, लोक-मान्यता आदि अनेक श्रेष्ठ गुण प्राप्त होते हैं। इस कारण असत्य छोड़कर सत्य ही बोलना चाहिए।

भूले हुए, रास्ते में पड़े हुए और जंगल इत्यादि में गाड़े हुए दूसरे के धन आदि को बिना दिये न लेना, उसे मुनि लोग '**स्थूल-स्तेय-त्याग**' नाम तीसरा अणुव्रत कहते हैं। जो दूसरों की धन-धान, सोना-चाँदी, मोती-माणिक आदि चीजों को नहीं लेते हैं, वे स्तेय-त्याग-व्रत के प्रभाव से परजन्म में नाना तरह की सम्पदा के स्वामी होते हैं और जिन्होंने लोभ के वश हो दूसरे का धन चुराया, उसने उसके प्राणों को भी हर लिया। इससे बढ़कर और क्या पाप होगा!

जो मूर्ख दूसरों का धन चुराकर अपने घर ले जाता है—कहना चाहिए कि उसने अपनी भी जमा-पूँजी नष्ट कर दी। इस चोरी से वह निर्धन, दु:खी, रोगी, कुरूप आदि होकर संसार में अनन्त काल तक रुला करता है। इसलिए सन्तोष कर मन, वचन, काय से सबको 'चोरी-त्याग-व्रत' पालना चाहिए। ऐसा करने से उन्हें सुख प्राप्त होगा।

चोरी का प्रयत्न करना, चोरी का माल लेना, राजाज्ञा का उल्लंघन करना; तोलने या मापने के बाँट इत्यादि ज्यादा-कम रखना और कम कीमत की चीज में अधिक कीमत की और अधिक कीमत की में कम कीमत की चीज़ मिलाना, ये पाँच स्तेयत्यागव्रत के अतिचार हैं।

अपने व्रत की रक्षा के लिए इन बातों को छोड़ना चाहिए। इस प्रकार जिन भगवान ने जो स्तेयव्रत का स्वरूप कहा, उसे जो निर्मल मनवाले सम्पुरुष पालते हैं, वे स्वर्गादिक की लक्ष्मी का सुख प्राप्त कर अन्त में परम सुखमय मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जो सत्पुरुष परस्त्रियों से सम्बन्ध न कर अपनी ही स्त्री में सन्तुष्ट रहते हैं, उनके '**परस्त्री-त्याग**' या '**स्वदार-सन्तोष**' नाम का चौथा अणुव्रत होता है। हाव-भाव, विलास युक्त परस्त्रियाँ अपने घर पर ही स्वयं क्यों न आई हों, शीलवान पुरुषों को उनसे संग न करना चाहिए। जिनने मन, वचन, काय से परस्त्री का त्याग कर दिया, वे ही सच्चे धीर हैं, पण्डित हैं, शूरवीर हैं और गुणों के समुद्र हैं।

सत्पुरुष परस्त्री का रूप देखकर वर्षा से नीचा मुँह किये हुए बूढ़े बैल के सदृश झट से नीचा मुँह कर लेते हैं। अच्छे धर्मात्मा लोगों के मन में न्यायोपार्जित भोग ही जब नहीं रुचते, तब न्याय रहित भोगों की तो बात ही क्या कहना? दूसरे के लड़के-लड़की का ब्याह करवाना, शरीर के अवयवों से कुचेष्टायें-बुरे इशारे करना, कामस्थान को छोड़कर अन्य अंगों से काम-क्रीड़ा करना, विषय-भोगों की बड़ी तृष्णा रखना और व्यभिचारिणी स्त्रियों के घर पर

जाना-आना, ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रत के दोष हैं। परस्त्री-त्यागव्रती को इनका भी त्याग करना चाहिए।

इस प्रकार जो सत्पुरुष परस्त्री का मन-वचन-काय से त्याग करते हैं, वे परम-पद-मोक्ष प्राप्त करते हैं। और जो परस्त्री-लम्पटी हैं, वह मूर्ख उसके पाप से फिर दुर्गति में जाता है। इस कारण परस्त्री का त्याग तो दूर ही से कर देना चाहिए। और जो स्त्रियाँ हैं, उन्हें चाहिए कि वे कामदेव-सदृश सुन्दर मनुष्य को भी देखकर उसे अपने भाई या पिता के समान समझें। जिनभगवान के वचनामृत का पानकर जो पवित्र शील के धारक होते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ सम्पदा प्राप्त करते हैं और चन्द्रमा के समान निर्मल उनकी कीर्ति सब जगत में फैल जाती है।

धन-धान्य, सोना-चाँदी, दासी-दास आदि दस प्रकार परिग्रह की संख्या का प्रमाण करना—मैं इतना धन या इतना सोना-चाँदी आदि रखकर बाकी का त्याग करता हूँ। यह पाँचवाँ '**परिग्रह-परिमाण**' नाम का अणुव्रत है। क्योंकि बिना ऐसी प्रतिज्ञा किये सैकड़ों नदियों से न तृप्त होनेवाले समुद्र की तरह मनुष्य को कभी सन्तोष को प्राप्त नहीं होता। यह जानकर बुद्धिमानों को परिग्रह का परिमाण करना ही चाहिए। ऐसा करने से वे जो सन्तोष लाभ करेंगे, उससे उन्हें दोनों लोक में सुख मिलेगा।

पशुओं की शक्ति का विचार न कर लोभवश उन्हें अधिक चलाना, बिना जरूरत की चीज़ों का संग्रह करना, दूसरे के पास अधिक परिग्रह देखकर आश्चर्य करना, अधिक लोभ करना और शक्ति से ज्यादा पशुओं पर बोझा लादना, ये पाँच परग्रिह-परिमाणव्रत

के अतिचार हैं। इस व्रती को इनका त्याग करना चाहिए।

जो बुद्धिमान् श्रावक इस प्रकार पाँच अणुव्रतों को प्रमाद-आलस छोड़कर प्रेम से पालते हैं, वे संसार में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सम्पदा प्राप्तकर अन्त में बड़े भारी संसार-समुद्र को तैरकर मोक्ष जाते हैं। इस प्रकार पाँच अणुव्रतों का स्वरूप कहा गया।

कुछ आचार्यों के मत से श्रावकों के लिए **रात्रि-भोजन-त्याग** नाम एक और छठा अणुव्रत भी है। रात्रि में भोजन करने से छोटे-बड़े अनेक जीव खाने में आ जाते हैं। इस कारण रात्रि में भोजन करना महापाप का कारण है और उससे माँसत्यागव्रत की रक्षा भी नहीं हो सकती। इसलिए वह त्यागनेयोग्य है।

रात्रि में सूरज के दर्शन नहीं होते, इस कारण उस समय स्नान करना मना किया गया है। मुग्ध-असमझ पक्षीगण, जो एक-एक अन्न का दाना चुगा करते हैं, रात में नहीं खाते, तब धर्मात्मा, निर्मल मनवाले जनों को अन्य नीच जनों की तरह रात्रि में खाना उचित है क्या? रात्रि में भोजन करते समय यदि मक्खी खाने में आ जाये तो उल्टी हो जाती है, गले को कष्ट पहुँचता है और यदि जूं कहीं खाने में आ गई तो जलोदर हो जाता है।

सुना जाता है कि पहले किसी ब्राह्मण ने रात्रि में भोजन करते समय किसी शाक के धोखे में एक मेंढ़क को मुँह में डाल लिया था, तब छोटे-छोटे जीवों की तो बात ही क्या है। इस कारण जिनप्रणीत व्रत में प्रीति रखनेवालों को तो रात्रि का भोजन मन-वचन-काय से छोड़ ही देना चाहिए। उन्हें इधर तो भोजन करना चाहिए सवेर दो घड़ी दिन चढ़े बाद, और उधर शाम को दो घड़ी दिन बच रहे उसके पहले।

जो धर्मात्मा रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देते हैं, उन्हें वर्षभर में छह महीने के उपवास का फल होता है। जो लोग रात्रिभोजन का त्याग किये हुए हैं, उन्हें दिन में भी ऐसी जगह भोजन न करना चाहिए जहाँ पर अंधेरा हो। इत्यादि बातों पर विचार कर जो रात्रिभोजन का त्याग करते हैं, वे अपने कुलरूप कमल को प्रफुल्ल करने को सूरज सदृश हैं।

रात्रिभोजन के छोड़ने से रूप-सुन्दरता, सुख-सम्पदा, निर्मल कीर्ति, काान्ति, शान्ति, निरोगता, पुत्र-स्त्री, धन-दौलत आदि सब बातों का मनचाहा सुख प्राप्त होता है। और जो लोग रात्रि में भोजन करते हैं, वे काणें, बहरे, गूँगे, दुखी, दरिद्री, लूले, लँगड़े आदि होकर नाना दु:ख भोगते हैं। यह जानकर स्वर्ग-मोक्ष के सुख की प्राप्ति के लिए रात्रिभोजन का त्याग करना ही उचित है।

इस प्रकार जिनप्रणीत धर्म का सार समझकर, जिसके द्वारा उदार परम पद की प्राप्ति हो सकती है, वह सैकड़ों कुगतियों का रोकनेवाला, और पुण्य का कारण रात्रिभोजन का त्याग पवित्र हृदयवाले जनों को करना चाहिए।

सिवाय इसके श्रावकों को ज्ञान-विनय और सन्तोष के लिये भोजनादि करते समय **मौनव्रत** धारण करना चाहिए। यह मौनव्रत मल-मूत्र करते समय और स्नान, पूजन, भोजन, स्तवन तथा सुरति के समय रखना चाहिए। जो कुछ भी वाक्य-वचन बोले जाते हैं, वे सब ही ज्ञान के प्रकाशक हैं, इस कारण ज्ञान का सदा विनय हो, इस अभिप्राय से उक्त सात जगह पवित्र मौनव्रत रखना कहा गया। इस प्रकार ऋषियों द्वारा कहे गये मौनव्रत का जो

पालन करते हैं, वे बड़े ज्ञानी होते हैं। सरस्वती की उन पर कृपा होती है। वे उस कृपा और मौनव्रत की शुद्धि से दिव्य स्वर, सुन्दरता और सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

निर्मल जल के सम्बन्ध से जैसे कमल होते हैं, उसी प्रकार 'मौनव्रत' द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। इस मौनव्रती को भोजन के समय चपलता, हुँकार, हँसी, लिखना, इशारा आदि बातें न करनी चाहिए। इतना और विचार रखना उचित है कि अग्नि की तरह सर्वभक्षीपने को छोड़कर उसे बड़ी शान्ति के साथ भोजन करना चाहिए।

श्रावकों को भोजन करते समय मूलगुण की शुद्धि के लिए **सात प्रकार अन्तराय** टालने चाहिए। वे अन्तराय ये हैं—माँस, रक्त, गीता चमड़ा, हड्डी, पीव और मृत-शरीर। अर्थात् भोजन करते हुए ये वस्तुयें यदि देखने में आ जायें तो उसी समय भोजन छोड़ देना चाहिए। इसके सिवा त्याग किया भोजन किसी को खाते हुए देखकर या चाण्डाल आदि नीच जाति के लोग देख पड़ें—उनके शब्द सुनने में आ जाये अथवा मल-मूत्र आदि दिख जाये तो भी भोजन छोड़ देना चाहिए।

श्रावकों को **जल छानकर काम में लाना चाहिए।** मुनिजनों ने इसे पुण्य का कारण कहा है। जल छानने से जीवों की दया पलती है। जल छानने का कपड़ा अच्छा गाढ़ा होना चाहिए। छन्ने का प्रमाण शास्त्रों में बतलाया है कि वह छत्तीस अंगुल लम्बा और चौबीस अंगुल चौड़ा हो। इस कपड़े को दुहरा करके पानी छानना चाहिए। जिनधर्म में दृढ़ दयावान् पुरुषों को जल छानने में कभी

प्रमाद-आलस करना ठीक नहीं है। जो लोग पानी छानकर पीते हैं, वे ही भव्य हैं और बुद्धिमान हैं। नहीं तो पशुओं के समान बुद्धिहीन उन्हें भी समझना चाहिए।

छाना हुआ पानी एक मुहूर्त तक, प्रासुक दो पहर तक और खूब गरम किया पानी आठ पहर तक काम में लिया जा सकता है। इसके बाद उसमें फिर जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पानी कपूर, इलायची, लौंग आदि सुगन्धित या कसेली वस्तुओं से प्रासुक किया जाता है। जैनधर्म तथा नीति के मार्ग में जल का छानना धर्म बतलाया गया है और यह जग भर में प्रसिद्ध है कि देखकर पाँव रखना चाहिए, छानकर पानी पीना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए और पवित्र मन से आचरण करना चाहिए।

जल छानते समय इतना ध्यान और रखना चाहिए कि जिस स्थान—कुँए, बावड़ी, नदी, तालाब आदि से जल लाया गया है, और छानकर जो बिनछनी का बाकी जल बचा है, उसे पीछे उसी स्थान पर बड़ी सावधानी के साथ पहुँचा देना चाहिए। जल छानने में जो लोग सदा इतना यत्न करते हैं, वे सुखी होते हैं और धर्म-प्रेमी हैं।

श्रावकों को कन्दमूल, अचार, मक्खन, फूल का शाक, बेल-फल, तूँबी, कांजी, अदरख आदि वस्तुएँ न खानी चाहिए। कारण ये अनन्त कायिक हैं। इसके सिवा तुच्छफल भी न खाना चाहिए। उससे महापाप होता है। जिन्हें जिनवाणी पर विश्वास है, उन दयालु पुरुषों को कन्दमूल तो कभी न खाना चाहिए।

अचार में त्रस जीव बड़े जल्दी उत्पन्न हो जाते हैं। इसके खाने

पर अधिक क्या कहें—उसका माँस-त्यागव्रत नष्ट ही हो जाता है। कांजी में एकेन्द्रिय आदि अनन्त जीव पैदा हो जाते हैं। इस कारण माँसव्रत की रक्षा करनेवाले को उसका खाना उचित नहीं। जैसा कि लिखा है—कांजी में चार पहर बाद एकेन्द्रिय, छह पहर बाद दो इन्द्रिय, आठ पहर बाद तीन इन्द्रिय, दस पहर बाद चार इन्द्रिय और बारह पहर बाद पाँच इन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं।

इसी तरह मक्खन में भी दो मुहूर्त बाद एकेन्द्रिय आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण वह भी खानेयोग्य नहीं है। गाय, भैंस आदि जिस दिन जने, उसके पन्द्रह दिन बाद उनका दूध खाना उचित है। छांछ से जमाये हुए दही और उसकी छांछ दो दिन की खाई जा सकती है, इसके बाद खानेयोग्य नहीं रहती।

इस प्रकार कन्दमूलादि जो-जो वस्तुयें जिनागम में त्यागनेयोग्य बतलाई हैं—उन सबका उत्तम श्रावकों को त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार आठ मूलगुण और पाँच अणुव्रत का वर्णन किया गया। अब गुणव्रत का वर्णन किया जाता है—

श्रुतज्ञानी आचार्यों ने श्रावकों के दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थ-दण्डव्रत ऐसे तीन गुणव्रत कहे हैं। मृत्युपर्यन्त सब दिशाओं की मर्यादा कर उसके बाहर न जाने को पहला '**दिग्व्रत**' नाम गुणव्रत कहते हैं। वह मर्यादा नदी, समुद्र, पर्वत, देश, गाँव, योजन आदि के द्वारा की जाती है अर्थात् मैं इस दिशा में अमुक नदी तक और इस दिशा में अमुक दूर तक जाऊँगा—उसके आगे जाने की मेरे प्रतिज्ञा है।

इसी तरह दशों दिशाओं की मर्यादा दिग्व्रत में की जाती है।

ऊपर, नीचे और तिर्यग्दिशा में की हुई मर्यादा को तोड़कर उसके बाहर जाना, मर्यादा की सीमा को बढ़ा लेना और मर्यादा को भूल जाना, ये दिग्व्रत के पाँच अतिचार हैं। दिग्व्रती को इन्हें छोड़ना चाहिए।

ऊपर जो दिग्व्रत की मर्यादा की गई है, उसकी सीमा को अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन और कम करना वह '**देशव्रत**' नाम का दूसरा गुणव्रत है। यह मर्यादा भी घर, गाँव, नदी, योजन आदि द्वारा की जाती है। ऐसा परमागमरूपी नेत्र के धारक मुनिजनों का कहना है। मर्यादा के बाहर किसी को भेजना, पुकारना, बुलाना, अपना शरीर वगैरह दिखलाकर इशारा करना और पत्थर वगैरह फैंकना, ये पाँच देशव्रत के अतिचार हैं।

'**अनर्थदण्ड**' नाम तीसरे गुणव्रत के पाँच भेद हैं। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दु:श्रुति और प्रमादचर्या। पशुओं को जिससे क्लेश पहुँचे, ऐसा और वाणिज्य-व्यापार के आरम्भ का उपदेश देना 'पापोपदेश' नाम पहला 'अनर्थदण्डव्रत' है। तलवार, बन्दूक, छुरी, कटार, रस्सी, साकल, मूसल, आग आदि हिंसा की कारण वस्तुओं का दान देना 'हिंसादान' नाम दूसरा दु:ख का कारण अनर्थदण्ड है। द्वेषभाव से शत्रुओं के बध-बन्धन-मारने तथा परस्त्री आदि के सम्बन्ध में हर समय बुरा चिंतन करते रहने को 'अपध्यान' नाम तीसरा अनर्थदण्ड कहते हैं। राग, द्वेष, आरम्भ, हिंसा, मिथ्यात्व आदि के बढ़ानेवाले शास्त्रों का सुनना 'दु:श्रुति' नाम अनर्थदण्ड है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन पाँच स्थावरों की वृथा हिंसा करना, बिना किसी मतलब के इधर-उधर भटकते

फिरना, अथवा बिल्ली, कुत्ता, तोता, बन्दर, कबूतर मोर आदि जीवों को घर में पालना ये सब 'प्रमादचर्या' नाम पाँच दुर्ध्यान का कारण अनर्थदण्ड कहा।

काम-विकार पैदा करनेवाले बुरे-अश्लील वचन बोलना, ऐसी ही शरीर की बुरी चेष्टा करना, बिना प्रयोजन के बहुत बोलना, बहुत शिकार आदि करना और बिना विचारे कोई काम करना, ये पाँच अनर्थदण्डव्रत के दोष या अतिचार हैं।

श्रावकों के **चार शिक्षाव्रत** है। सामायिक, निर्जरा का कारण प्रौषधोपवास, भोगोपभोग-परिमाण और अतिथि-संविभाग। अब इनका विस्तृत वर्णन किया जाता है—

स्वीकृत काल तक सब प्रकार के सावद्य-आरम्भ का त्याग करने को धर्मज्ञ विद्वानों ने पवित्र '**सामायिक व्रत**' कहा है। इसका स्पष्टार्थ यह है कि जीव मात्र में समता भाव, संयम-इन्द्रियजय, शुद्ध भावना और आर्त्त-रौद्रभाव का त्याग, इतनी बातें सामायिक में होनी चाहिए। जिनमन्दिर, घर, जंगल आदि किसी एकान्त स्थान में स्वस्थता-निराकुलता के साथ पद्मासन बैठकर सामायिक करनी चाहिए।

सामायिक में बड़े वैराग्य भावों से पाँच परम गुरु-अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु का भक्तिपूर्वक तीनों काल ध्यान करना चाहिए, जैसा कि अन्यत्र कहा है—जिनवाणी, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, पाँच परमेष्ठी और जिनभवन—इनकी नित्य त्रिकाल वन्दना करना, यह सामायिक है। सामायिक करनेवाले को यह चिन्तन करते रहना चाहिए कि—मैं एक हूँ, कर्मों से घिरा हुआ होकर भी शुद्ध-बुद्ध हूँ।

'संसार में न कोई मेरा है और न मैं ही किसी का हूँ।' इसके सिवा चिन्ता, आरम्भ, गर्व, राग, द्वेष, क्रोध आदि के विचारों का त्याग कर देना चाहिए। सामायिक करते हुए यदि जाड़ा, घाम आदि का कष्ट होने लगे, डांस-मच्छर उपद्रव करें तो इन सब कष्टों को शान्ति के साथ सह लेना चाहिए। जिनवाणी के ज्ञान का यही फल होना चाहिए कि उस समय धीरता न छूटे।

सामायिक में बैठते समय चोटी बाँध लेनी चाहिए, मुट्ठी बन्दकर रखना चाहिए। पद्मासन माँड़कर हाथ पर हाथ धरकर बैठना चाहिए और वस्त्र वगैरह को अच्छी तरह चारों ओर से बाँधकर—समेटकर बैठना चाहिए। यह सामायिक ऊपर कहे गये पाँच व्रतों को पूर्णता पर पहुँचानेवाला, धर्म का कारण और दुःख का नाश करनेवाला है। इस कारण सामायिक को नित्य ही करना चाहिए।

पूर्वाचार्यों के कहे अनुसार जो भव्यजन त्रिशुद्धिपूर्वक इस भव-भ्रमण को मिटानेवाले सामायिकव्रत को करते हैं, वे जिन-भक्ति-रत सत्पुरुष स्वर्ग-सुख भोगकर अन्त में मोक्ष-सुख के पात्र होते हैं। मन-वचन-काय के योगों द्वारा बुरा चिन्तन करना, अनादर करना और सामायिक करना भूल जाना, ये पाँचों सामायिक व्रत के अतीचार हैं।

श्रावकों को अष्टमी और चतुर्दशी के दिन **प्रोषधव्रत** करना चाहिए। यह कर्म-निर्जरा का कारण है। प्रोषध के दिन अन्न-पान-खाद्य-लेह्य इन चार प्रकार के आहार का त्याग करना चाहिए। उपवास के पहले दिन एक बार भोजन कर उपवास करना और

पारणा के दिन भी एक बार भोजन करना, यह उत्कृष्ट **प्रोषधव्रत** है।

इस दिन खाँडना, पीसना, चूल्हा जलाना, पानी भरना और झाड़ू लगाना, ये पाँच पाप न करना चाहिए। इसके सिवा नहाना, धोना, तम्बाकू सूँघना, आँखों में काजल या सुरमा लगाना, शरीर सिंगारना आदि करना भी ठीक नहीं है। किन्तु देव-गुरु-शास्त्र की सेवा-पूजा, स्वाध्याय, ध्यान आदि में वह दिन शान्ति से बिताना चाहिए। इस दिन स्वयं कर्णांजलि द्वारा धर्ममृत पीना चाहिए और अन्य भव्य-जन को पिलाना चाहिए।

इस प्रकार जो भव्य प्रोषधव्रत करता है, उसके कर्मों की निर्जरा होना निश्चित है। किसी चीज को बिना देखभालकर उठाना और रखना, इसी तरह बिछौना बिना देखे उठाना और रखना, प्रोषधव्रत में अनादर करना और उसे भूल जाना ये पाँच प्रोषधव्रत के दोष हैं।

भोगोपभोग परिमाण-व्रत में दो प्रकार नियम किया जाता है। एक तो यमरूप और दूसरा नियमरूप। यम जीवन पर्यन्त होता है और नियम काल की मर्यादा को लेकर किया जाता है। 'भोग' वह है जो एक बार ही भोगने में आवे, जैसे भोजन आदि खाने-पीने की वस्तुएँ। और जो बार-बार भोगने में आवे, वह 'उपभोग' है। वस्त्र, भूषण, वाहन, शय्या आदि। इन भोगोपभोगवस्तुओं की जो संख्या की जाती है, वह '**भोगोपभोगपरिमाण**' नाम का तीसरा शिक्षाव्रत है।

भोगोपभोग की वस्तुओं में अत्यन्त आदर करना, बार-बार

उन्हें याद करना, उनमें अत्यन्त लोलुप होना, भोगी हुई बातों का अनुभव करना और अधिक तृष्णा रखना, ये पाँच भोगोपभोग परिमाणव्रत के दोष हैं।

संविभाग नाम है त्याग का और त्याग शब्द का अर्थ है दान। वह दान अतिथि-सुपात्र को यथाविधि देना, उसे '**अतिथिसंविभाग**' नाम चौथा शिक्षाव्रत कहते हैं। ज्ञानी मुनियों ने उस पात्र के— उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ये तीन भेद किये हैं। पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समिति को निरन्तर पालनेवाले मुनि **उत्तम-पात्र** हैं। ये बाह्याभ्यन्तर परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ महापात्र संसार-समुद्र से पार उतारने के लिए जहाज-समान स्व-पर-तारक हैं।

सम्यक्त्वसहित बारह व्रतों को धारण करनेवाला श्रावक **मध्यम-पात्र** कहा गया है। और जो केवल सम्यक्त्व का धारक है, वह जिनभक्तिरत सम्यग्दृष्टि **जघन्य-पात्र** है। इन तीनों प्रकार के पात्रों को यथाविधि नित्य चार प्रकार का दान दयालुओं को देना चाहिए।

पूर्वाचार्यों ने जो विधि, दाता के गुण और दान के भेद बतलाये हैं, उनका थोड़े में यहाँ भी वर्णन किया जाता है। पुण्य से महापात्र मुनि यदि अपने घर आहार के लिए आ जाये तो ये **नौ विधि** करना चाहिए। आदर से उन्हें घर में ले जाना, ऊँचे स्थान पर बैठाना, उनके पाँव पखारना और पूजा करना, नमस्कार करना और मन, वचन, काय तथा भोजन की शुद्धि रखना।

श्रद्धा, भक्ति, निर्लोभता, दया, शक्ति, क्षमा और विज्ञान, ये **सात दाता के गुण** हैं। पहले यह भावना हो कि 'पात्र मेरे घर पर

आवे', और जब मुनि सामने आ जाये, तब प्राप्त निधि की तरह हर्षित होकर उनके विषय में श्रद्धा करे। मुनि का जब तक आहार समाप्त न हो, तब तक बड़े धर्म-प्रेम से उनकी सेवा करता हुआ, उनके पास ही खड़ा रहे, यह दाता का दूसरा 'भक्ति' नाम गुण है।

इस मुनिदान के फल से मुझे राज्य-वैभव या और सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो—इस प्रकार की इच्छा का न करना दाता का तीसरा 'निर्लोभता' गुण है। किसी कार्य के लिए घर में जाना पड़े तो जीव देखकर चलना चाहिए—यह 'दया' नाम का चौथा गुण है। यदि आहार में कुछ अधिक भी खर्च हो जाये तो दु:खी न हो, समुद्र समान गम्भीर दाता का यह 'शक्ति' नाम पाँचवाँ गुण है।

घर में बाल-बच्चे, स्त्री आदि से कोई अपराध बन पड़े तो उन पर गुस्सा न हो, यह 'क्षमा' छठा गुण है। पात्र, अपात्र की विशेषता को जानता हो, गुण दोषों का विचार करनेवाला हो और देने, न देने योग्य वस्तु का जानकार हो, दाता का यह सातवाँ 'ज्ञान' नाम गुण है। जैसा कि, दाता के ज्ञान गुण के सम्बन्ध में अन्यत्र लिखा है—

''मुनि को ऐसा आहार देना योग्य नहीं—जिसका वर्ण और का और हो गया हो, बेस्वाद हो, बिंधा हो, तकलीफ पहुँचानेवाला हो, बहुत पक गया हो, रोग का कारण हो, दूसरे का जूठा हो, नीच लोगों के योग्य हो, किसी दूसरे के अर्थ बनाया गया हो, निंद्य हो, दुर्जनों का छुआ हो, यक्ष देवी, देवता का लाया हुआ हो, दूसरे गाँव से आया हुआ हो, मन्त्र-प्रयोग से मँगाया गया हो, भेंट में आया हुआ हो, बाजार से खरीदा गया हो, प्रकृति के विरुद्ध हो और बेसमय का या बिना ऋतु का हो।''

जिनागम में—आहार, औषध, शास्त्र और अभय ये चार प्रकार के दान कहे गये हैं। जो श्रावक नौ भक्ति और सात गुण-युक्त होकर शक्तिपूर्वक सुपात्र के लिए अन्नदान करता है, वह जन्म-जन्म में पुण्य का पात्र और सुखी होता है। कुगति में वह कभी नहीं जाता। सुपात्रदान के फल से—धन-दौलत, रूप-सौभाग्य प्राप्त होता है। कीर्ति सारे लोक में फैल जाती है। रोग, शोक आदि कोई कष्ट नहीं होता। ऐसे लोग बड़े कुल में पैदा होते हैं, बड़े पराक्रमी होते हैं और राज्यवैभव प्राप्त करते हैं। स्वर्गादिक का सुख प्राप्त करनेवाले अन्नदानी के सम्बन्ध में क्या कहे, वह तो ऐसा भाग्यशाली है जो स्वयं तीर्थंकर भी उसके घर पर आते हैं।

जो नाना प्रकार के रोगों का कष्ट उठा रहे हैं, ऐसे दुखी जीवों को जीवदान-सदृश श्रेष्ठ **औषधिदान** देना चाहिए। जिसने तीन प्रकार के पात्रों को श्रेष्ठ औषधिदान दिया, वह दाता जन्म-जन्म में फिर निरोग होता है, रोग से शरीर नष्ट होता है, शरीर नष्ट होने पर तप नहीं बन सकता, और जिनप्रणीत तप किये बिना मोक्ष का सुख प्राप्त नहीं होता। इस कारण भव्यजनों को हर प्रयत्न द्वारा धर्मप्रेम से साधर्मियों को औषधिदान देना उचित हैं।

तीसरा **शास्त्रदान** है। श्रावकों को चाहिए कि वे सुपात्रों को त्रिलोक-पूजित जिनप्रणीत शास्त्रों का दान दें। यह दान बड़े सुख का कारण है। इस दान के फल से दाता परजन्म में सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करता है। उसकी कीर्ति त्रिलोक में फैल जाती है। 'ज्ञान' यह मनुष्यों का उत्कृष्ट नेत्र है, तब जिसने सुपात्र को यह दान दिया उसके पुण्य का क्या कहना ? इस कारण जिनप्रणीत शास्त्र

लिखकर या लिखवाकर भक्तिसहित पात्र को भेंट करना चाहिए। यह दान स्वर्ग-मोक्ष के सुख का कारण है। अपने को श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो, इसलिए श्रावकों को संसारसमुद्र से पार पहुँचानेवाला यह शास्त्रदान देना ही चाहिए।

जो भय से डरते हैं और इसी कारण दुखी है, उनके लिए श्रावकों को **अभयदान** देना चाहिए। यह दान बड़े सुख का कारण है। जिसने जीवों को अभयदान देकर निर्भय किया, कहना चाहिए कि उसने उसके प्राणों को बचा लिया। इन दान से दाता त्रिभुवन में निर्भय, शूरवीर, धीर, निर्मलहृदय और बुद्धिमान होता है। बाकी के जितने भी दान दिये जाते हैं, देखा जाये तो वे सब दया के लिये हैं। तब जिसने अभयदान दिया, उसने तो साक्षात् ही दया की, यह जानकर सुपात्र के लिए भी यथायोग्य अभयदान देना चाहिए। सिवा इनके अन्य जन के लिए भी यथायोग्य अभयदान देना योग्य है।

इस प्रकार त्रिविध पात्रों को जिसने चारों प्रकार का दान दिया, कहना चाहिए कि उसने धर्म वृक्ष को सींच दिया। पात्रदान के सम्बन्ध में लिखा है—जो आकाश में नक्षत्रों की संख्या और समुद्र में कितने चुल्लु पानी है—यह बतला सकता है और जो जीवों के भवों की संख्या भी कह सकता है, परन्तु वह यह बतलावे कि सत्पात्र के लिए जो धन व्यय किया गया, उसके पुण्य का परिणाम कितना है।

जिसने जैनधर्म का आश्रय ले रखा हो, उसका भी पोषण श्रावकों को करना चाहिए। और जो जिनधर्म से सर्वथा ही विपरीत

हो तो उसे दान देना विवेकियों को उचित नहीं। अन्यत्र लिखा है—मिथ्यादृष्टियों को दान देनेवाले दाता ने मिथ्यात्व ही बढ़ाया। क्योंकि साँप को पिलाया हुआ दूध विष ही बढ़ाता है।

सुपात्र और अपात्र के दान में बड़ा ही भेद है। सुपात्र स्व-पर को तारनेवाले जहाज के समान है और अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि कुपात्र स्व-पर को डुबानेवाले पत्थर के समान हैं, अन्य शास्त्र में पात्रापात्रों का लक्षण इस प्रकार बतलाया है—**'अनगार मुनि उत्कृष्ट पात्र हैं'** अणुव्रती मध्यम पात्र हैं, अव्रती सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं और जिसके न व्रत है और न सम्यक्त्व है, वह अपात्र है। निर्मल पानी जैसे वृक्षों के भेद से नानारूप में परिणत होता है, उसी तरह पात्र-अपात्र को दिये आहार का परिणमन होता है। उर्वरा पृथ्वी में बोये हुए बीज की तरह पात्रदान बहुत फल का देनेवाला होता है। वही बीज उर्वरा पृथ्वी में न बोया जाकर यदि खारयुक्त जमीन में बो दिया जाये तो वृथा जाता है। ठीक इसी तरह कुपात्र को दिया दान दाता को कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकता। इत्यादि भेदों का जाननेवाला जो दाता नित्य सुपात्र को भक्तिसहित दान देता है, वही बुद्धिमान दाता है।

इस प्रकार सुपात्र-दान के फल से भव्य जन मन-चाही धन-दौलत, सोना-चाँदी, मणि-माणिक, स्वर्गादि का सुख, उच्च कुल, परिजन—स्त्री, पुत्र आदि प्राप्त कर अन्त में मोक्ष जाते हैं। यह जानकर धर्मात्माओं को सुपात्र के लिए भक्तिपूर्वक चार प्रकार का दान निरन्तर देना चाहिए।

ये चारों ही दान श्रेष्ठ सुखों के कारण है। दान योग्य वस्तु को

सचित्त-हरे पत्तों में रख देना, उनसे ढँक देना, दान करना भूल जाना, अनादर करना और किसी को दान करते देखकर मत्सर करना, ये पाँच '**अतिथिसंविभाग**' नाम चौथे शिक्षाव्रत के दोष हैं। इस प्रकार जिनप्रणीत धर्म-कर्म-रत भव्य श्रावक अप्रमादी होकर खुश दिल से अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार श्रेष्ठ पात्रों को भोजन आदि चार प्रकार का उत्तम दान देकर दिव्यश्री को प्राप्त करें।

जिनपूजा दोनों लोक में सुख देनेवाली है। श्रावकों को वह सदा करनी चाहिए। यदि अपनी शक्ति हो तो एक सुन्दर जिनभवन बनवाकर उसे ध्वजा इत्यादि से मण्डित करना चाहिए। इसके बाद सोने, रत्न आदि की पाप नाश करनेवाली श्रेष्ठ प्रतिमायें बनवाकर उनकी विधिसहित बड़े ठाठ-बाट से पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कर उन्हें मन्दिर में विराजमान करना चाहिए। जो भव्य श्रावक पवित्र मन से ऐसा करते हैं, वे मोक्षरूपी उत्कृष्ट लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।

इस विषय में लिखा है कि 'जो धर्मात्मा पुरुष भक्तिवश हो कुन्दरु के पत्ते बराबर तो जिनभवन और जौ के बराबर प्रतिमा बनवाते हैं, उनके पुण्य का भी वर्णन करने को सरस्वती समर्थ नहीं, तब तो लोग जिनभवन और जिनप्रतिमा ये दोनों ही बनवाते हैं—उनके पुण्य का तो कहना ही क्या?''

यदि थोड़े में कहा जाये तो उन निकट-भव्य, जिनभक्ति-रत लोगों के लिए इन्द्र-चक्रवर्ती की लक्ष्मी कुछ दुर्लभ नहीं है।

लिखा है—''एक ही जिनभक्ति दुर्गति के रोकने, पुण्य के प्राप्त कराने और मुक्तिश्री के देने को समर्थ है। जो लोग जिनप्रतिमा का अभिषेक करते हैं, उन्हें मेरुपर्वत पर देवतागण स्नान कराते हैं

और जो जल आदि आठ द्रव्यों से जिनदेव को सदा पूजते हैं, वे देवताओं द्वारा पूजे जाते हैं।

जिन भगवान इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती राजे-महाराजे आदि सभी महापुरुषों द्वारा सदा पूजे जाते हैं और त्रिभुवन का हित करनेवाले हैं, उन केवलज्ञानीजिन की पूजा वगैरह भले ही करो, परन्तु उससे केवलीजिन को कुछ लाभ नहीं; किन्तु लाभ है तो वह पूजन करनेवाले भव्य श्रावकों को है।

इस कारण धर्मतत्त्व के जानकार जो सुखार्थी जन स्वर्ग-मोक्ष के कारण जिनचरणों की भक्ति से पूजा करते हैं, वे सब जग में पूज्य होकर फिर केवलज्ञानरूपी साम्राज्य के स्वामी बनते हैं।

इस प्रकार जिन पूजन समाप्त कर फिर उन्हें जिनस्तुति पढ़नी चाहिए। जिनस्तुति भी पाप का नाश करनेवाली है। इसके बाद उन्हें मन, वचन, काय की शुद्धि से पाँच परमेष्ठी का जप करना चाहिए। जप सब दुर्गति का नाश करनेवाला और त्रिभुवन में एक श्रेष्ठ वस्तु है। यह परमेष्ठी-वाचक पैंतीस अक्षरों का **नमस्कार-मन्त्र** सब दुखों का क्षय करनेवाला है। इस महामन्त्र के प्रभाव से तिर्यंच भी स्वर्ग को गये, तब इसे अच्छी तरह जपनेवाले मनुष्यों का तो क्या कहना?

एकीभाव स्तोत्र में लिखा है—"भगवन्! जीवन्धरकुमार ने मरते हुए कुत्ते को आपके नमस्कार रूप महामन्त्र का उपदेश दिया था—वह मन्त्र उसे सुनाया था। उसके प्रभाव से वह रात-दिन पाप करनेवाला कुत्ता भी स्वर्ग गया; तब प्रभो! जो इस नमस्कारमन्त्र का मणिमाला से जाप करे, वह यदि इन्द्र के वैभव को प्राप्त हो तो

उसमें क्या कोई सन्देह है ?''

इस मन्त्र के सिवा गुरु के उपदेश से अन्य सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक आदि परमेष्ठी-वाचक मन्त्रों का भी जाप करना चाहिए। जाप किन-किन चीज़ों से करना चाहिए—इसके लिए एक जगह लिखा है—पालथी लगाकर ऊँगली के पेर में, कमलगट्टे या स्वर्ण, रत्न, मोती आदि की माला द्वारा जाप करनी चाहिए।

जाप करते समय इतना ध्यान रहना चाहिए कि माला हिले-डुले नहीं। जैसे ही जिन की पूजा की जाती है, उसी तरह श्रावकों को सिद्ध भगवान, जिनवाणी और गुरु की भी पूजा करनी उचित है। इनकी पूजा भी दोनों लोक में सुख की देनेवाली है। इस पूजा से भव्यजन पूज्यतम होते हैं। सुखार्थी जन को पूज्य-पूजा का उल्लंघन करना ठीक नहीं।

भरत चक्रवर्ती आदि अनेक महापुरुषों ने जिनपूजा का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ फल प्राप्त किया है, उसे जिनभगवान के बिना और कौन वर्णन कर सकता है ? परन्तु पूजा के फल के उदाहरण में मेंढक उल्लेख विशेष कर किया जाता है। जैसा कि समन्तभद्रस्वामी ने रत्नकरण्ड में लिखा है—

''राजगृह नगर में एक आनन्द से मस्त हुए मेंढ़क ने केवल एक फूल से जिनचरण की पूजा का श्रेष्ठ फल महात्मा लोगों से कहा था।'' अर्थात् वह उस पूजा के फल से स्वर्ग गया। इसकी कथा 'आराधना-कथाकोष' 'पुण्याश्रव' आदि ग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

इसी तरह श्रावक को जिनागमप्रणीत सात क्षेत्रों में भी धनरूपी बीज बोना चाहिए। इससे भी सैकड़ों सुख प्राप्त होते हैं। लिखा है कि—'जो जिनभवन, जिनबिम्ब, जिनवाणी और चार संघ इन सात क्षेत्रों में अपने धनरूपी बीज को बोता है, वह बड़ा पुण्यात्मा है।

इस प्रकार जिनभगवान पुण्य के कारण, सुरासुर-पूजित और संसार-सागर से पार करनेवाले हैं, उनकी जो भव्य श्रावक मन-वचन-काय से पूजा करते हैं, वे स्वर्गादिक का श्रेष्ठ सुख प्राप्त कर बाद कभी नाश न होनेवाला मोक्ष का सुख भोगते हैं।

तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन दोनों को मिलाकर पण्डित लोग श्रावकों के 'शीलसप्तक' भी कहते हैं। पाँच अणुव्रत और शीलसप्तक इस प्रकार मुनिजनों ने गृहस्थों के शुभ बारह व्रत कहे हैं। इनका जो लोग नित्य पालन करते हैं, वे पहले इन्द्रादिक की सम्पदा का सुख भोगकर फिर मोक्ष चले जाते हैं।

इन बारह व्रतों के सिवाय पूर्वाचार्यों ने श्रावकों के लिए **ग्यारह प्रतिमायें** और उपदेश की है। वे सब श्रेष्ठ सुखों की देनेवाली हैं। उनके नाम ये हैं—1. दर्शनप्रतिमा, 2. व्रतप्रतिमा, 3. सामायिक-प्रतिमा, 4. प्रोषधोपवासप्रतिमा, 5. सचित्तत्यागप्रतिमा, 6. रात्रि-भोजनत्यागप्रतिमा, 7. ब्रह्मचर्यप्रतिमा, 8. आरम्भत्यागप्रतिमा, 9. परिग्रहत्यागप्रतिमा, 10. अनुमतित्यागप्रतिमा और 11. उद्दिष्ट-त्यागप्रतिमा।

इन ग्यारहों प्रतिमाओं का आगमानुसार संक्षेप में स्वरूप लिखा जाता है। जुआ खेलना, माँस खाना, शराब पीना, शिकार करना,

वेश्या सेवन, परस्त्री सेवन और चोरी करना—ये सात व्यसन हैं, इनका त्यागकर जिसने आठ मूलगुण ग्रहण कर लिये हैं, जो सदा जिनभक्ति में रत और शुद्ध सम्यग्दर्शन का धारक है, वह जिनधर्म प्रेमी **दर्शनप्रतिमाधारी** श्रावक कहा गया है।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन बारह व्रतों को पालन करनेवाला **व्रतप्रतिमाधारी** श्रावक है।

मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक जो त्रिकाल नियमपूर्वक सामायिक करता है, वह **सामायिक** नामक तीसरी प्रतिमा का धारक है।

अष्टमी और चतुर्दशी को नियम से प्रोषधोपवास करनेवाला **प्रोषधोपवास** नामक चौथी प्रतिमाधारी श्रावक है।

जो सचित्त फल, जल आदि को उपयोग में नहीं लाता, वह दयालु पाँचवीं **सचित्तत्यागप्रतिमाधारी** कहा गया है।

अन्न, पान, स्वाद्य और लेह्य इन चार प्रकार के आहारों को जो रात में नहीं खाता, वह **रात्रिभोजनत्याग** नाम छठी प्रतिमाधारी श्रावक है।

विषयों से विरक्त होकर जो मन-वचन-काय से ब्रह्मचर्य को पालता है—वह सातवीं **ब्रह्मचर्य नाम प्रतिमा** का धारक श्रावक कहा गया है।

नौकरी-चाकरी, खेती, वाणिज्य-व्यापारादि सम्बन्धित सब प्रकार का आरंभ त्याग कर देता है—वह जीवदया-प्रतिपालक आठवीं **आरंभत्यागप्रतिमा** का धारक है।

दस प्रकार बाह्य[1] और चौदह प्रकार अभ्यन्तर[2] इस प्रकार जो चौबीस तरह के परिग्रह का त्याग कर देता है– वह महासन्तोषी नौवीं **परिग्रहत्यागप्रतिमाधारी** श्रावक है। इनमें बाह्यपरिग्रहत्यागी तो बहुत हो जाते हैं, परन्तु अभ्यन्तर परिग्रहत्यागी बड़ा ही दुर्लभ है।

विवाह आदि घर–गृहस्थी के सब सावद्य–पाप कार्यों में जो किसी प्रकार की सम्मति नहीं देता, वह **अनुमतित्याग** नामक दसवीं प्रतिमाधारी श्रावक है।

जो घर को त्यागकर वन चला जाये और वहाँ ब्रह्मवेष धारण कर मुनिसंघ में रहे, वह ग्यारहवीं **उद्दिष्ट–त्याग** प्रतिमाधारी श्रावक है। यह अपने उद्देश्य से बने हुए भोजन को नहीं करता—अतएव इसे उद्दिष्ट–त्यागी कहते हैं। इस श्रावक के दो भेद हैं। एक, एक वस्त्र का रखनेवाला और दूसरा, केवल लँगोट मात्र का धारक। इनमें जो दूसरा श्रावक है, वह धीर रात में सदा प्रतिमा–योग नियमपूर्वक धरता है, हाथों से बालों को उखाड़ता है, पींछी रखता है, और बैठकर, पर पाणिपात्र में भोजन करता है।

यह श्रावक बड़ा पवित्र और श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है और श्रावकों के घर में कृत–कारित–अनुमोदना रहित एकबार भोजन करता है। त्रिकालयोग का नियम, वीरचर्या, सिद्धान्त–अङ्ग–पूर्वादि ग्रन्थों

---

1. क्षेत्र, वास्तु–घर वगैरह, धन, धान्य, द्विपद–दास–दासी, गाय, भैंस आदि चौपदे, गाड़ी आदि वाहन, शय्यासन, कुप्य–कपास आदि और भाण्ड–ताँबा आदि के बर्तन। ये दस बाह्य परिग्रह हैं।

2. मिथ्यात्व, वेद–स्त्री–पुरुष–नपुंसक, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अनन्तानुबन्धी क्रोध–मान–माया–लोभ, और राग, द्वेष ये चौदह अभ्यन्तर परिग्रह हैं।

का अध्ययन और सूर्यप्रतिमायोग इन बातों को यह श्रावक नहीं कर सकता।

इन ग्यारह श्रावकों में आदि के छह जघन्य श्रावक हैं, बाद के तीन मध्यम श्रावक हैं और अन्त के दो उत्कृष्ट श्रावक कहे गये हैं। पाप जीव का वैरी है और धर्म मित्र है, इसे जो जानता है, वही ज्ञाता है—आत्महित का जाननेवाला है।

जो भव्य यह जानकर, कि जैनधर्म बड़ा ही पवित्र और त्रिभुवन को पवित्र करनेवाला धर्म है, उसका सम्यक्त्वसहित पालन करता है—वह त्रिलोक-कमल को प्रफुल्ल करनेवाला सूरज है, सर्व-श्रेष्ठ है, त्रिलोक-पूजित है। वह अन्त में केवलज्ञानी होकर मोक्षलाभ करता है।

इस प्रकार जिन शास्त्र-निपुण पवित्र मुनिजनों ने सम्यक्त्वसहित जिन निर्मल ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन किया, उनका जो जन पालन करते हैं, वे दिव्य स्वर्गीय-सुख भोगकर देव-पूज्य होकर फिर मोक्ष जाते हैं।

इन सब व्रतों के बाद एक और व्रत है। उसका नाम **सल्लेखना व्रत** है। जिनप्रणीत तत्त्व का मर्म जाननेवाले धीर-वीर मन के पुरुषों को अन्तसमय इस व्रत को अवश्य करना चाहिए। पूर्वाचार्यों ने इस व्रत की जैसी विधि कही है, वह थोड़े में यहाँ लिखी जाती है।

कोई महान उपसर्ग आ जाये, दुर्भिक्ष पड़ जाये, कोई भयानक रोग आदि हो जाये, जिसका कि कोई उपाय ही न बन सके और या बुढ़ापा आ जाये, उस समय ऐसे लोगों को संन्यास-सल्लेखना

धारण कर लेना उचित है।

इसका फल मुनिजनों ने दान-पूजा-तप-शील आदि कहा है। इसी कारण सत्पुरुष सल्लेखना को करते हैं। जो जिनधर्म के तत्त्वों के जाननेवाले इस सल्लेखना व्रत को ग्रहण करें, उन्हें पहले मन-वचन-काय की पवित्रता से सब प्रकार का परिग्रह त्यागकर राग-द्वेषादिक को भी छोड़ देना चाहिए।

इतना करके और क्षमा-वचनों से सबको सन्तुष्ट कर, उन्हें गुरु के पास जाना चाहिए। वहाँ गुरु के सामने बड़ी भक्ति से अपने सब पापों की आलोचना-निन्दा कर फिर उन्हें सल्लेखना-महान व्रत ग्रहण करना उचित है। शोक, भय, गर्व, तथा जीवित-मरण की चिन्ता आदि को छोड़कर फिर उन्हें केवल कर्मक्षय की चिन्ता करनी चाहिए।

इसके बाद उन सन्तोषी और जिनधर्म-धीर पुरुषों को धीरे-धीरे चार प्रकार का आहार परित्याग कर पंच नमस्कारमन्त्र के स्मरणपूर्वक अपने प्राण छोड़ने चाहिए—सब प्रकार की इच्छा-आशा छोड़कर केवल जिनभगवान के ही ध्यान में उन्हें रत हो जाना चाहिए।

मृत्यु आने पर नियम से मरना तो होगा ही, फिर क्यों न अच्छे पुरुषों को सुख का कारण संन्यास ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार जो बुद्धिमान संन्यास ग्रहण करते हैं, वे स्वर्गों में जाते हैं। वहाँ वे अणिमादि आठ ऋद्धियाँ, दिव्य रूप-सुन्दरता और देवांगना आदि श्रेष्ठ मनोमोहक वस्तुएँ प्राप्तकर चिरकाल तक सुख भोगते हैं।

वहाँ से फिर उत्कृष्ट मनुष्य जन्म लाभ कर अन्त में रत्नत्रय की आराधना कर मोक्ष चले जाते हैं। वहाँ सिद्धरूप में वे कर्मरहित होकर निराबाध, निर्मल आठ गुण और अनन्त सुख सहित अनन्त काल रहते हैं। इस अनन्त काल में भी उन सिद्धों में कोई प्रकार का परिवर्तन या सुख की कमी नहीं हो पाती। वे सदा फिर उसी अवस्था में रहते हैं। यह सब एक जिनधर्म का ही प्रभाव है।

इस कारण सबको अपनी बुद्धि जिनधर्म में दृढ़ करनी चाहिए। जीने और मरने की इच्छा, भय, मित्रों की चाह और निदान-आगामी विषयभोगों की चाह, ये पाँच सल्लेखना व्रत के दोष हैं।

इस प्रकार नेमिजिन द्वारा धर्म का पवित्र उपदेश सुनकर सब सभा सूर्योदय से प्रफुल्ल कमलिनी की तरह आनन्द के मारे प्रफुल्लित हो गयी।

इस प्रकार सुरासुर-पूजित नेमिप्रभु ने त्रिभुवन-हितकारी, स्वर्ग-मोक्ष का सुख देनेवाले रत्नत्रय-स्वरूप पवित्र धर्म का उपदेश किया। उसे सुनकर भव्यजन नमस्कार कर भव समुद्र से पार होने के लिए नेमिजिन की शरण गये।

इति एकादशः सर्गः।

बारहवाँ अध्याय
कृष्ण को नेमिजिन का तत्त्वोपदेश

जगद्गुरु श्री नेमिजिन केवलज्ञान से सूरज की तरह प्रकाशित हो रहे थे। **बारह गणधर** उनकी सेवा में मौजूद थे। त्रिभुवन के महा पुरुषों द्वारा उन्हें सम्मान प्राप्त था। सब विद्याओं के वे स्वामी कहलाते थे। लोकालोक को वे प्रकाशित कर रहे थे। सब तत्त्वों के रचयिता वे ही कहे जाते थे। सामान्य जन की तरह वे आहारादि दोषों से रहित थे। उन पर कोई उपसर्ग न होता था। चारों ओर उनके चार मुँह थे, तब भी उपदेश वे सत्य का ही करते थे, उन्हें स्वभाव से ही ऐसा अतिशय प्राप्त था जो वे स्वयं तथा उनके बारह गणधर भी आकाश ही में चलते थे। उनके द्वारा किसी जीव को कष्ट न पहुँचता था। उनके प्रभाव से चारों दिशाओं में दो सौ कोस तक दुर्भिक्ष-महामारी आदि न पड़कर पृथ्वी पवित्र और बड़ी खुश रहती थी।

भगवान के दिव्य शरीर का बड़ा ही प्रभाव था—उनकी छाया नहीं पड़ती थी। उनके नख-केश नहीं बढ़ते थे और पलक न गिरते थे। भगवान घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न दश अतिशयों से शोभित थे।

इस समय इन्द्र ने आकर लोगों के अभ्युदय की इच्छा से भगवान से प्रार्थना की—

'प्रभो! विहार कीजिए और उत्सुक भव्यजनों को प्रिय धर्मामृत पिलाकर तृप्त कीजिए।'

इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार हुई। यद्यपि भगवान कृतार्थ थे—उन्हें कुछ करना बाकी न रहा था, तथापि भव्यों के पुण्य से उन्होंने विहार किया। भगवान के इस विहारोत्सव के कारण देवताओं में खुशी के मारे बड़ी हलचल मच गई। वे लहराते हुए समुद्र से जान पड़ने लगे। उनसे सब आकाश भर गया। आनन्द से उछल-उछल कर वे भगवान का जय-जयकार कर रहे थे।

उस समय देवताओं के अनन्त विमानों से आकाश सत्पुरुषों के भरे-पूरे कुल के समान बिल्कुल भी खाली न रह गया। देव-देवांगनागण 'जय' 'जीव' 'नन्द' आदि कहकर आकाश से भगवान पर फूलों की वर्षा कर रहे थे।

उस समय इन्द्र की आज्ञा से देवताओं ने अपने दिव्य प्रभाव से निराधार आकाश में चलते हुए जगद्गुरु के पांवों के नीचे बड़ी भक्ति से सोने के कमल रचे। वे कमल बड़े ही कोमल और खिले हुए थे। उनकी सुगन्ध से दसों दिशायें महक रही थीं। उनमें रत्न की कर्णिकायें-कलियां बड़ी चमक रही थीं।

पद्मरागमणि की केसर, रत्न की कली-युक्त उन हजार दलवाले दिव्य सुवर्णमय कमलों पर चलते हुए नेमिप्रभु आकाश में कोई नवीन ही शरदऋतु के चन्द्रमा के सदृश जान पड़ते थे। उस समय भगवान के चरण-स्पर्श से जो उन कमलों से मकरंद-धूल गिरती जाती थी-जान पड़ता था कि वे दान करते हुए जा रहे हैं।

इस प्रकार सात कमल भगवान के पीछे और सात आगे हर समय शोभित रहते थे। इनके सिवा भगवान के पार्श्वभाग के जो कमल थे, वे उनके विहार समय आकाशरूपी आँगन में निधि-

सदृश जान पड़ते थे। इन कमलों से वह आकाश एक सुन्दर सरोवर-सदृश शोभता था। और देवताओं की कान्ति उसमें पानी की कमी को पूरा करती थी।

इस प्रकार वैभव के साथ भगवान विहार करते जाते थे। उनके आगे बजते हुए नगाड़ों की ओर की आवाज सब दिशाओं को गुँजा रही थी और हवा से हिलती हुई उनकी ध्वजायें धर्मोपदेश सुनने के लिए लोगों को प्रेम से बुला रही हों—ऐसी शोभित हुई थीं। उनके आगे हजार आरेवाला, सूर्य-सदृश चलता हुआ श्रेष्ठ धर्मचक्र बड़ी ही सुन्दरता धारण कर रहा था। वह धर्मचक्र अपने चमकते हुए दिव्य तेज से मानों सारे जगत् को धर्ममय बनाने की इच्छा से ही प्रभु के आगे-आगे जा रहा था।

भगवान की **मागधी-भाषा** उनकी त्रिभुवन के जीवों के साथ मित्रता सूचित कर रही थी। भगवान भव्यजनरूपी कमलों को प्रफुल्ल करते हुए आकाश में कोई अद्वितीय सूरज से शोभा पाते थे। उस समय आकाश में देवताओं की यह ध्वनि सब ओर फैल रही थी कि आइए! आइए!! आनन्दित होकर एक को एक पुकार रहा था। देवताओं को जो प्रसन्नता हुई—वह उनके हृदय में न समा सकी।

इस कारण प्रभु के आगे कितने ही देवता नाच रहे थे, कितने ही गा रहे थे और कितने उछल-कूद मचा रहे थे। प्रभु की महिमा से उस समय सारा आकाश सत्पुरुषों के मन की तरह निर्मल हो गया था और दिशायें अच्छे पुरुषों के आचरण-सदृश धूल-धूसरिता रहित हो गई थीं। देवतागण भगवान के उत्साह का गान कर रहे

थे। किन्नरगण प्रभु का कुन्द के फूल-सदृश निर्मल यश बखान करते थे और भक्ति से फूले हुए विद्याधर लोग अपनी-अपनी प्रियाओं के साथ आकाशरूपी रंगभूमि में नेमिजिन की पापनाशिनी पवित्र कीर्ति का पाठ पढ़ रहे थे।

उस समय कूड़े-करकट रहित पवित्र रत्नमयी पृथ्वी काँच के समान निर्मल जान पड़ती थी—वह मानो श्रेष्ठ लोगों की पवित्र बुद्धि ही है। वायुकुमार देवताओं ने तब आकर एक योजन तक की पृथ्वी को धूल-कंकर-पत्थर आदि रहित बना दिया, मेघकुमारों ने सुगन्धित जल की वर्षा से सब दिशाओं को सुगन्धित किया। उस समय भगवान के प्रभाव से गेहूँ, चावल, मूँग—आदि धान खूब फले-फूले। पृथ्वी ने उनके द्वारा एक घरानेदार स्त्री की सी शोभा धारण की। वृक्ष सब ऋतुओं के फल-फूलों से सत्पुरुषों के समान झुक गये।

इस प्रकार फल-फूल-पत्ते-धान आदि द्वारा फली-फूली भूमि लोगों के बड़ी सुख की कारण बन गई। विहार करते हुए भगवान के पीछे जो वायु बहा-जान पड़ा जिनके प्रभाव से वह भी उनकी भक्ति करने को सज्जित है। घर में निधि आने से जैसा आनन्द होता है, वैसा ही परमानन्द भगवान के विहार से आनन्द सब लोगों को हुआ। झारी, पंखा, दर्पण, कुम्भ आदि आठ मंगल-द्रव्य हाथों में लेकर देवांगनायें प्रभु के आगे-आगे चलती थीं।

देवतागण आनन्द से फूलकर इस प्रकार **चौदह अतिशय** रचते जाते थे। सैकड़ों सुन्दर देवाङ्गनाये उस समय नेमिप्रभु के आगे-आगे खुशी के मारे नृत्य करती हुई जा रही थीं। भगवान

आकाश में ऋद्धिधारी मुनियों और सैकड़ों विद्याधर-राजाओं से तथा पृथ्वी पर चार संघों और पशुओं द्वारा भक्ति से सेवा किये जा रहे थे।

जगद्गुरु नेमिप्रभु इस प्रकार पृथ्वी पर सब ओर फैले हुए बारह सभाओं के देव-मनुष्य आदि तथा **चौतीस अतिशयों** से शोभित हो रहे थे।

इस तरह त्रिभुवन-पिता, पवित्रात्मा, पृथ्वीतल को पवित्र करनेवाले, यादव-वंश-सूरज, लोक-चूड़ामणि, सुरासुर-पूजित भगवान नेमिजिन ने सोरठ, गुजरात, अवन्ति, चोल, कीर, कोंकण, काश्मीर, अंग बङ्ग (बंगाल), कलिंग, कर्णाटक, लाट, भोट (भूटान) आदि सब आर्यदेशों में विहार किया। भव्यबन्धु जिन ने उन-उन देशों में जाकर अपने, सर्वसन्देहों के नाश करनेवाले और सुखकारी उपदेश से लोगों का मिथ्यान्धकार नाशकर प्रबोध दिया।

उस समय अनेक जनों ने भगवान के पवित्र उपदेश से श्रेष्ठ रत्नत्रय मार्ग ग्रहण कर स्वर्ग-मोक्ष का सुख प्राप्त किया। जहाँ जगद्गुरु तीर्थंकरदेव विराजमान हों, वहाँ ऐसा कौन जन रह जाता है जो उनके तत्व को न समझे-न ग्रहण करे।

इस प्रकार देवगण-पूजित और शान्तिकर्ता नेमिप्रभु सब आर्य देशों में विहार कर पृथ्वी को पवित्र करते हुए **द्वारिका** लांघकर सब संघ के साथ **गिरनार** पर्वत के जंगल में आकर ठहरे।

इन्द्र की आज्ञा पाकर धनपति कुबेर ने उसी समय पहले के सदृश दिव्य **समवसरण** बनाया। कमलिनी को भूषित करनेवाले

सूरज की तरह भगवान नेमिप्रभु ने मानस्तम्भादि शोभा-सम्पन्न उस दिव्य समवसरण को अलंकृत किया।

भगवान के आगमन समाचार सुनकर सम्यग्दृष्टि त्रिखण्डेश **कृष्ण** और **बलदेव** अपनी सब सेना तथा सन्तुष्ट बन्धु-बान्धव परिजन के साथ बड़े राजसी ठाट से भगवान के दर्शन करने को आये। जिनकी दिव्य सभा को उन्होंने दूर ही से देखा। हवा से फड़कती हुई ध्वजाओं द्वारा वह उन्हें बुलाती हुई सी जान पड़ी। पहले प्रदक्षिणा कर बड़े जय-जयकार के साथ उन्होंने उसे पृथ्वीतल को पवित्र करनेवाली पावन सभा में प्रवेश किया।

अपनी सुन्दरता से मन को मोहित करनेवाली उस सभा की दिव्य शोभा को देखकर उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई—मानों जैसे उन्हें निधि मिल गई। पहले उन्होंने मानस्तम्भ, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष और स्तूप-कृत्रिम पर्वतों की प्रतिमाओं की पूजा की। इसके बाद निर्मल स्फटिक के बने हुए श्रीमण्डप में, सबके ऊपर के विशाल तीसरे चबूतरे पर सुसज्जित, सुवर्ण-रत्न के दिव्य सिंहासन पर विराजमान, जगद्गुरु नेमिजिन की श्रेष्ठ जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, रत्नदीप, धूप, फल आदि द्वारा उन्होंने पूजा की और चरणों में अर्घ्य चढ़ाया।

भगवान की इस समय की शोभा बड़ी ही मनोहर थी। वे अपने दिव्य प्रभाव से **आकाश में चार अंगुल निराधार** विराजमान थे। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य से उनका दिव्य शरीर दमक रहा था। इन्द्रादि देवतागण, विद्याधर, राजे-महाराजे उनकी पूजा कर रहे थे। जिस पर मोतियों की

मालायें लूम रही हैं—ऐसे तीन छत्र उन पर शोभा दे रहे थे। जिसे देखकर शोक रह नहीं पाता, ऐसे उस अशोकवृक्ष के नीचे भगवान विराजे हुए थे।

गिरते हुए झरने के सदृश जान पड़नेवाले उज्ज्वल चँवर उन पर ढुर रहे थे। उनके नगाड़ों की बुलन्द आवाज से पृथ्वी गूँज रही थी। कोटि सूरज समान तेजस्वी उनका भामण्डल चमक रहा था। देव-देवांगनागण उन पर नाना प्रकार के सुन्दर-सुन्दर फूलों की वर्षा करते थे।

भगवान अपनी **दिव्यध्वनिरूपी** सुधा-वर्षा से सब सभाओं को तृप्त कर रहे थे। ऐसे देवों के देव, त्रिभुवन वन्दनीय और संसार-समुद्र से पार करनेवाले नेमिप्रभु के दर्शन कर यादव-प्रभुओं को बड़ा आनन्द हुआ। इसके बाद उन्होंने भक्ति भरे हृदय से भगवान की स्तुति की।

हे प्रभो! आप लोक-कमल को प्रफुल्ल करनेवाले सूरज हों, परम उदयशाली हो, मिथ्यात्व अन्धकार को नाश कर जगत् को प्रकाशित किये हो। आप त्रिकाल के ज्ञाता हो, त्रिभुवन पूजित हो, भव्यों के आधार हो, निर्मद के योगिजन वन्दित हो। आप पवित्र हो, परमानन्दमय हो, दुर्गति के रोकनेवाले हो, सुरासुर पूजित हो। आप जगत् के जीवों के स्वामी हो, गुरु हो, बड़े गुणी हो, पितामह हो, पिता हो, सब जीवों के शरण हो।

नाथ! आपके गुण अनन्तानन्त हैं—उनका कोई पार नहीं। वे समुद्र से भी गम्भीर और मेरु पर्वत से कहीं अधिक उन्नत हैं। भगवन्! आपका चरणाश्रय बड़ा ही सुख का कारण है।

वह जन बड़ा ही अभागी है, जो आपके रहते हुए आपके तत्त्व को न समझे। स्वामिन्! जो सुख, लोग आपके चरणों के ध्यान से प्राप्त कर सकते हैं, वह दूसरों द्वारा स्वप्न में भी दुर्लभ है। इस कारण नाथ! प्रार्थना करते हैं कि जब तक हम संसार पार न कर लें, तब तक सर्वार्थ-साधिनी आपकी चरणभक्ति हमें सदा प्राप्त हो।

इस प्रकार नेमिजिन की स्तुति कर और बार-बार प्रणाम कर उन्होंने अपने को कृतार्थ समझा। इसके बाद सभा में अन्य जो वरदत्त गणधर तथा तपस्वी जन थे, उनकी भक्तिसहित वन्दना कर वे नर सभा में जाकर सिर झुकाये बैठ गये। और उन पवित्र-हृदय भाइयों ने अपनी दृष्टि भगवान के चरणों में लगाई। वहाँ उन्होंने दान-पूजा-व्रत-शील-उपवासमय सुख के कारण जिनप्रणीत पवित्र धर्म का उपदेश नेमिजिन द्वारा सुना।

इसके बाद त्रिखण्डेश श्रीकृष्ण सुरासुर-पूजित नेमिप्रभु को प्रणाम कर हाथ जोड़कर बड़े विनय के साथ बोले—

प्रभो! आपके द्वारा तत्त्वों के जानने की मेरी बड़ी इच्छा है। आप कहिए कि तत्त्व किसे कहते हैं? तब लोकबन्धु श्री नेमिजिन कृष्ण के प्रश्न से विस्तार के साथ तत्त्वोपदेश करने लगे। भगवान के इच्छा न होते हुए भी तीर्थंकर नाम पुण्य के प्रभाव से उनके मुखकमल से काँच में देख पड़नेवाले प्रतिबिम्ब की तरह निर्विकार दिव्यध्वनि निकली।

उस ध्वनि में तालु, ओठ, दाँत आदि का सम्बन्ध न रहने पर भी वह स्पष्ट अक्षरमय थी। उसे सुनकर सबका सन्देह दूर हो

जाता था। उसे नाना तरह की भाषा जाननेवाले सभी देश-विदेश के लोग समझ लेते थे। भगवान बोले-महाभव्य राजन्! सुनिये; मैं तुम्हें यथाक्रम से तत्त्व, तत्त्व का स्वरूप और तत्त्व का फल कहता हूँ।

आगम में जीव, अजीव (पुद्गल) धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह तत्त्व कहे गये हैं। जीवादिक पदार्थों का जो यथार्थ रूप-स्वरूप है, वह तत्त्व है। उसका निश्चय कर लेना भव्यों को मुक्ति का कारण है।

तत्त्व सामान्यपने एक ही है। वह जीव और अजीव के भेद से दो प्रकार का है। मुक्त, अमुक्त और अजीव इस तरह वह तीन प्रकार का है।

परमागम में जीव के मुक्त जीव और संसारी जीव ऐसे दो भेद किये हैं। और संसारी जीव के भी भव्य तथा अभव्य ऐसे दो भेद हैं। तब सब भेदों को इकट्ठा कर देने से तत्त्व चार प्रकार का हो जाता है। फिर यही तत्त्व पंचास्तिकाय के भेद से पाँच प्रकार का हो जाता है और पंचास्तिकाय ये हैं—जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय। इन पाँच अस्तिकायों में काल और शामिल कर दिया जाय तो तत्त्व छह भेदरूप हो जाता है। इस प्रकार तत्त्व के जिनागम में विस्तार से कोई अनन्तानन्त भेद बतलाये गये हैं।

इनमें जीव का लक्षण चेतना है। वह द्रव्यस्वभाव से नित्य है—उसका कभी नाश न हुआ, न है और न होगा। और मनुष्य-देव-पशु आदि पर्याय की अपेक्षा वह अनित्य है-नाशवान भी है।

जीव ज्ञाता-दृष्टा तथा पुण्य-पापों का कर्ता और भोक्ता है। वह शरीर के परिणामवाला, अनन्त गुणमय और उर्ध्वगति-स्वभावसहित है। ऐसा होकर भी वह कर्मों के वश हुआ संसार में घूमा करता है।

इस कारण ऋषिगण उसे संसारी कहते हैं। वह अपने संकोच और विस्ताररूप स्वभाव को लिये प्रदेशों से प्रदीप की तरह घट-बढ़ सकता है। अर्थात् जैसे प्रदीप को एक मकान में रखने से वह सारे मकान को प्रकाशित करता है और वही प्रदीप यदि एक घड़े में रख दिया जाये तो वह उस घड़े मात्र में ही प्रकाश करेगा।

उसी तरह जीव को उसके कर्मों के अनुसार जैसा छोटा या बड़ा—कभी हाथी का शरीर और कभी एक चींटी का शरीर मिलेगा, उसी के अनुसार उसके प्रदेशों में दीपक की तरह संकोच -विस्तार हो जायेगा। परन्तु इतना ध्यान रखना चाहिए कि उसके प्रदेशों की जितनी संख्या है-उसमें किसी प्रकार की घट-बढ़ नहीं होगी। यह संकोच-विस्तार जीव का स्वभाव है।

यह जीव चौदह मार्गणा और चौदह ही गुणस्थानों से जाना जाता है। उन चौदह मार्गणाओं के नाम अन्य ग्रन्थ से लिखे जाते हैं। 1. गतिमार्गणा, 2. इन्द्रियमार्गणा, 3. कायमार्गणा, 4. योगमार्गणा, 5. वेदमार्गणा, 6. कषायमार्गणा, 7. ज्ञानमार्गणा, 8. संयममार्गणा, 9. दर्शनमार्गणा, 10. लेश्यामार्गणा, 11. भव्य-मार्गणा, 12. सम्यक्त्वमार्गणा, 13. संज्ञीमार्गणा, और 14. आहार-मार्गणा।

इस जीव के औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, मिश्रभाव,

औदयिकभाव और पारिणामिकभाव, ये पाँच स्वतत्त्व कहे जाते हैं। अर्थात् जीव ही के ये होते हैं। इन गुणों से जीव जाना जाता है। जीव उपयोगमय है। उपयोग दो प्रकार का है। एक-**ज्ञानोपयोग** और दूसरा - **दर्शनोपयोग।** इनमें ज्ञानोपयोग—आठ प्रकार का है। यथा—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतिज्ञान और कु-अवधिज्ञान।

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं। यथा—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। ज्ञान साकार है, इस कारण कि वह पदार्थों के विशेषरूप को ग्रहण करता है—वस्तुओं के विशेष आकार-प्रकारादिक का वह ज्ञान कराता है। और दर्शन निराकार है, इस कारण कि उसमें केवल पदार्थों की सत्ता का आभास मात्र होता है। इत्यादि गुणों द्वारा बुद्धिमानों को जीव का स्वरूप जानना चाहिए।

ऊपर सामान्यता से कही गई बातों का विस्तार से वर्णन 'गोम्मटसार', 'सर्वार्थसिद्धि' आदि ग्रन्थों में किया गया है। वह जिज्ञासु पाठकों को उन ग्रन्थों के स्वाध्याय से जानना चाहिए। (जान पड़ता है ग्रन्थ-विस्तार के भय से ग्रन्थाकर्त्ता ने पदार्थों का यह सामान्य विवेचन किया है।)

जीव के सम्बन्ध में ग्रन्थकार कुछ थोड़ा और भी लिखते हैं। इसे 'जीव' इसलिए कहते हैं कि यह अनन्त काल से 'जीता आ रहा है', वर्तमान में 'जीता है', और भविष्यत् में अनन्त काल तक 'जीता रहेगा।'

इसके दस प्राण हैं, इस कारण इसे 'प्राणी' कहते हैं। यह

नाना जन्मों को धारण करता है, इसलिए इसे 'जन्तु' कहते हैं। क्षेत्र इसका स्वरूप है, और उसे यह जानता है, अत: इसे 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं। उत्कृष्ट भोगों का यह स्वामी है, इस कारण इसे 'पुरुष' कहते हैं। आत्मा को यह आत्मा द्वारा पवित्र करता है, इसलिए परमागम के जाननेवालों ने इसे 'पुमान्' कहा है। यह नित्य अनेक भवों में आता है, इसलिए इसे 'आत्मा' कहते हैं। आठ कर्मों में रहता है, इस कारण इसे 'अन्तरात्मा' कहते हैं। ज्ञानगुणवाला है इसलिए 'ज्ञानी' कहा गया है।

इस प्रकार नाना पर्याय नामों से तत्त्वज्ञों को जीव की पहचान करनी चाहिए। यह जीव नित्य है—अविनाशी है और पर्यायें सब नाशवान् हैं। इस जीव का लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन गुणमय कहा गया है।

इस प्रकार गुणयुक्त आत्मा को जो लोग जान लेते हैं, वे भव्य हैं और सम्यग्दृष्टि हैं, और सब मिथ्यादृष्टि हैं। 'न आत्मा है और न मोक्ष है, न कर्ता है और न भोक्ता है।' ऐसा कहना मिथ्यादृष्टियों का है और पाप का कारण है। इसे छोड़कर जो आत्मा का अभी स्वरूप कहा गया, राजन्! तुम उसी पर विश्वास करो।

फिर इस जीव के **संसारी और मोक्ष** ऐसे दो भेद किये गये हैं। वह संसारी तो इसलिए है कि—कर्म-परवश हुआ नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देव इस प्रकार चार गतिरूप अपार संसार में सरता है—भ्रमण करता है। और त्रिभुवन-श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्-चारित्ररूप रत्नत्रय द्वारा सब कर्मों का नाशकर अनन्त सुखमय मुक्त अवस्था प्राप्त कर लेता है, इस कारण इसे 'मुक्त जीव' कहा है।

देव-गुरु-शास्त्र के निर्मल श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह मोक्ष का कारण है। जीवादिक पदार्थों के सत्य स्वभाव का जो प्रकाशक-ज्ञान करानेवाला है, वह 'ज्ञान' 'सम्यग्ज्ञान' है। यह ज्ञान अज्ञानान्धकार के विस्तार का नाश करनेवाला और धर्म का उपदेशक है। हिंसादि के त्यागरूप तेरह प्रकार के चारित्र को **सम्यक्चारित्र** कहा है।

सबके साथ माध्यस्थभाव रखना उसका लक्षण है। इन तीनों की परिपूर्णता ही मोक्ष का साक्षात् मार्ग कहा है। श्रेष्ठ सम्यक्त्व के होते ही ज्ञान और चारित्र भव्यों को मोक्ष-सुख के कारण हो सकते हैं और 'ज्ञान' जब दर्शन-चारित्र युक्त हो, तब उसे जिनसेनादि आचार्यों ने मुक्ति का साधन कहा है। जो चारित्र; ज्ञान और दर्शन युक्त नहीं, वह अन्धे के उद्योग की तरह कुछ फल का देनेवाला भी नहीं।

अन्यत्र इन तीनों के सम्बन्ध में लिखा है कि 'सम्यग्दर्शन से दुर्गति का नाश होता है, सम्यग्दर्शन से कीर्ति होती है, और चारित्र से लोक में पूज्यता होती है और इन तीनों के एकत्र मिल जाने से मुक्ति होती है।'

मिथ्यादृष्टियों ने एकान्त से इन तीनों में से एक-एक ही को ग्रहण कर लिया, इस कारण उनके लोक में छह भेद हो गये। श्री सर्वज्ञ जिनभगवान ने जो पवित्र धर्म का लक्षण कहा, वही सत्य है—यथार्थ है और मोक्ष का देनेवाला है और नहीं; यह उस सम्यग्दर्शन की शुद्धता है।

आप्त—देव वह है जो भूख-प्यास आदि अठारह दोषों से

रहित हो, और केवलज्ञानी हो। बाकी सब आप्ताभास—नाममात्र के आप्त हैं। उनमें सच्चे आप्त का कोई लक्षण नहीं है। और उन जिनभगवान के जो वचन हैं, वही सच्चा आगम है, शेष तो वचनों का केवल विकार है। पदार्थ, तत्त्वज्ञों ने जीव और अजीव के भेद से दो प्रकार का बतलाया है।

जीव का लक्षण पहले कह दिया गया है। वह जीव भव्य, अभव्य और मुक्त ऐसे तीन प्रकार का है। 'भव्य' वह है जो सोने से पृथक् किये पाषाण की तरह कर्मों से पृथक् होकर सिद्धि लाभ करेगा और 'अभव्य' अन्ध-पाषाण की तरह, जो किसी भी यत्न से सोने से अलग नहीं किया जा सकता, कभी कर्मों से मुक्त न होगा।

'मुक्त' वह है जिसने आठ कर्मों को नाशकर आठ गुण प्राप्त कर लिये और जो त्रिलोक-शिखर पर विराजमान होकर अनन्त सुख भोगता है। उसे 'सिद्ध' कहते हैं। वे सिद्ध भगवान कर्मांजनरहित हैं और साकार होकर भी निराकार हैं। इसका भाव यह है कि सिद्ध आत्मा को जैनधर्म में पुरुषाकार कहा है। यथा—'पुरुसायारो अप्पा'।

जीव जितने छोटे या बड़े मनुष्य-देह से मुक्त होता है, उससे कुछ कम आकार में शुद्ध आत्मा मोक्ष में रहता है। उसी कारण आत्मा को आकारसहित कहा है और दूसरा आकार का अर्थ है, जो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाला हो। जैसे जड़ वस्तु घट-पट वगैरह। ऐसा आकार सिद्धों का नहीं है। इस कारण वे निराकार भी हैं। इन सिद्ध का ध्यान करने से भव्य मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। त्रिखण्डेश हरे! इस प्रकार तुम्हें जीवतत्त्व का स्वरूप कहा गया।

अब **अजीव तत्त्व** का स्वरूप कहा जाता है। सुनिये! धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल इन भेदों से अजीव पाँच प्रकार का है। इनमें जीव-पुद्गल को चलने के लिए उपकारक-उदासीनरूप से जो सहायक हैं—किन्तु प्रेरक नहीं है, वह **धर्मद्रव्य** है। जैसे पानी मछलियों को चलने में सहायक है, परन्तु प्रेरणा करके उनको नहीं चलाता है।

अधर्मद्रव्य जीव-पुद्गल को ठहराने में उदासीनरूप से सहायक है-बलात्कार वह चलते हुए जीव-पुद्गल को नहीं ठहराता। जैसे वृक्ष की छाया राहगीर को जबरन न ठहराकर यदि वह स्वयं ठहरना चाहे तो उसे उदासीनरूप से स्थान देती है। जीव-अजीवादि द्रव्यों को जो **अवकाश** दे स्थान दे, वह **आकाश** है। वह अमूर्तिक-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण रहित, सर्वव्यापी और निष्क्रिय है।

काल का लक्षण है वर्तना। वह वस्तुओं की अवस्था का परिवर्तन करता रहता है। जिनने उसकी अनेक पर्यायें—अवस्थायें कही हैं। जैसे कुम्हार के चक्र को घुमाने में उसके नीचे की शिला निमित्त कारण है, उसी तरह वर्तनालक्षण काल वस्तुओं के परिणमन में निमित्तकारण है।

व्यवहार-काल से मुख्य-काल-निश्चयकाल जाना जाता है। जैसे जंगल में सटा देखकर सिंह का ज्ञान हो जाता है। वह निश्चयकाल लोक-प्रमाण है। उसके अणु रत्न-राशि की तरह सब पृथक्-पृथक् रहेंगे। इसी कारण काल को केवलीजिन ने अकाय भी कहा है।

अचार्यों ने जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश को पंचास्तिकाय

कहा है। वह इसलिए कि इनके प्रदेश मिले हुए हैं। यहाँ सवाल हो सकता है कि पुद्गल के शुद्ध परमाणु में तो और कोई प्रदेशों की मिलावट नहीं है, फिर वह काय कैसे कहा जा सकता है? इसका उत्तर आचार्यों ने दिया है कि यद्यपि शुद्ध परमाणु में कोई अन्य मेल-मिलाप नहीं है, तथापि उसमें वह शक्ति सदा रहती है, जिससे अन्य परमाणु आकर उससे सम्बन्ध कर सकते हैं। इस शक्ति की अपेक्षा परमाणु भी सकाय है। परन्तु काल के अणुओं में यह शक्ति ही नहीं है।

धर्म-अधर्म-आकाश-काल, ये चार द्रव्य अमूर्तिक, निष्क्रिय, नित्य और अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं। हाँ, और कृष्ण! जीव भी अमूर्तिक है।

मूर्तिक केवल एक पुद्गल द्रव्य है। उसके भेद मैं अब तुम्हें कहता हूँ। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द-आदि पुद्गल कहे जाते हैं। इनमें हर समय पूरण-गलन होता रहता है, इस कारण इनका पुद्गल नाम सार्थक है। स्कन्ध और अणु इन भेदों से पुद्गल दो प्रकार का है। स्निग्ध और रूक्ष गुणवाले परमाणुओं के समूह को स्कन्ध कहते हैं।

इस स्कन्ध का फैलाव दो-अणुओं के स्कन्ध से लेकर सुमेरु-सदृश महास्कन्ध पर्यन्त है। छाया, आतप, अन्धकार, चाँदनी, पानी आदि स्कन्धों के भेद हैं। महापुराण में कहा गया है—परमाणु स्कन्धरूप कार्य से जाना जाता है। वह स्निग्ध-रूक्ष और शीत-उष्ण इन दो-दो स्पर्शवाला है अर्थात् स्निग्ध और रूक्ष में से एक स्निग्ध या रूक्ष और शीत तथा उष्ण में से एक शीत या उष्ण ऐसे दो

स्पर्शवाला है। पाँच वर्णों में से एक वर्ण और छह रसों में से एक रसवाला है। परमाणु नित्य होकर भी पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।

पुद्गल के छह भेद हैं। यथा—सूक्ष्म-सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल स्थूलसूक्ष्म, स्थूल और स्थूलस्थूल। अणु पुद्गल का सूक्ष्मसूक्ष्म भेद है। वह न देख पड़ता है और न छुआ जा सकता है। कर्म वर्गणायें पुद्गल का दूसरा सूक्ष्म भेद है। उनमें अनन्त परमाणु हैं। शब्द-स्पर्श-रस-गन्ध यह सूक्ष्मस्थूल का भेद है।

इस कारण कि ये आँखों द्वारा न देखे जाकर भी अन्य इन्द्रियों से ग्रहण किये जाते हैं। छाया, चाँदनी, आतप आदि स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं। इसलिए कि वे आँखों से देखे जाते हैं, परन्तु नष्ट नहीं किये जा सकते। स्थूल पुद्गल वह है जो पृथक् होकर पीछे मिल सके—जैसे पानी, घी, तेल आदि। और वह स्थूलस्थूल पुद्गल कहलाता है जो एक बार टूटकर फिर न मिल सके—जैसे पृथ्वी, पत्थर, काठ आदि। इस प्रकार जिनप्रणीत पदार्थों का जो श्रद्धान करता है, वह मोक्ष जाता है।

लोकालोक के जाननेवाले और सुरासुरपूजित, जगद्गुरु नेमिप्रभु ने इस प्रकार छह द्रव्यों का स्वरूप कहकर पुनः विनय से नत-मस्तक और भक्ति-रत कृष्ण को जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष—इन **सात तत्त्वों का स्वरूप,** मोक्ष का साधन—दो प्रकार का **रत्नत्रय,** इसका फल, **शलाका-पुरुषों का चरित,** चार गति, उनके त्रिकालगत भेद आदि सब त्रिलोक की साररूप श्रेष्ठ बातों को बड़े विस्तार के साथ कहा—लोक को प्रकाशित करनेवाले सूरज की तरह सब स्पष्ट समझा दिया।

इस प्रकार नेमिजिन के द्वारा श्रेष्ठ तत्त्वोपदेश को कृष्ण ने बलदेव के साथ-साथ सुना। उस उपदेश के प्रभाव से कृष्ण को सब सुखों के कारण सम्यक्त्व-रत्न की प्राप्ति हो गई। इससे कृष्ण बड़े सन्तुष्ट हुए। उनने बड़ी भक्ति से प्रभु को सिर नवाया। इसके बाद धर्मामृत पीकर प्रसन्न हुए बलदेव और कृष्ण ने बड़े आनन्द से भगवान की प्रार्थना की।

इनके सिवा अन्य जिन-जिन लोगों ने भगवान् का पवित्र उपदेश सुना—उनमें कितनों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया, कितनों ने जिनदीक्षा ले ली और कितनों ने अणुव्रतों को ग्रहण किया। तात्पर्य यह कि भगवान की कृपा से सभी सुखी हुए।

इस प्रकार बारहों सभा के देव, मनुष्यादिक भगवान के उपदेशामृत का पान कर बड़े ही सन्तुष्ट हुए। वे तत्वार्थ का पवित्र उपदेश करनेवाले और केवलज्ञानरूपी चन्द्रमा, लोक-श्रेष्ठी नेमिजिन सत्पुरुषों को सुख दें। वे देवों के देव और सुरासुर-पूजित नेमिप्रभु मुझे भी अपने चरणों की कल्याणकारिणी भक्ति दे।

इस प्रकार जिनकी देवताओं ने पूजा की, जो लोकालोक के प्रकाशक हैं, जिनने भव्यजनरूपी कमलों को सूरज के सदृश प्रफुल्ल कर, मिथ्यात्व-अन्धकार को नष्ट किया और जो केवलज्ञान प्राप्त कर गुण-सागर हुए, वे त्रिभुवन-बन्धु, स्वर्ग-मोक्ष के देनेवाले **नेमिप्रभु** श्रेष्ठ सुख दें।

इति द्वादशः सर्गः।

तेरहवाँ अध्याय
देवकी, बलदेव और कृष्ण के पूर्वभव।

वसुदेव की सहधर्मिणी सती देवकी वरदत्त गणधर से हाथ जोड़कर बोली—एक बार प्रभो! अपने शुद्ध चारित से पृथ्वीतल को पवित्र करते हुए तीन मुनियुगल मेरे घर पर आहार करने को पधारे। भगवान! उन्हें देखकर मुझे अत्यन्त प्रेम उद्‌भवित हुआ। इसका क्या कारण है देव? यह सुनकर ज्ञान ही जिनका शरीर है, वे वरदत्त गणधर बोले—देवी, सुनो! मैं इस सम्बन्ध का सब कारण तुम्हें बताता हूँ।

★ ★ ★

इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष प्रसिद्ध देश है। उसमें **मथुरा** नाम की नगरी बहुत सुन्दर और जिनभवनों से युक्त है। उसका राजा **सूरसेन** है। वह बड़ा ही प्रजापालक, प्रतापी, शत्रुजयी और नीतिमान् है। इसी मथुरा में एक **भानुदत्त** नामक बड़ा धर्मात्मा सेठ रहता है। उसकी सेठानी **यमुना** बड़ी साध्वी और सुन्दरी है। उसके कोई सात पुत्र थे। उनके नाम थे—**सुभानु, भानुकीर्ति, भानुषेण, भानु, सूरदेव, सूरदत्त और सूरसेन।**

एक दिन मथुरा में **अभयनन्दी** नामक मुनि पधारे। नृपति **सूरसेन** और **भानुदत्त** उनकी वन्दना को गये। बड़ी भक्ति से मुनि को नमस्कार कर उन्होंने उनके द्वारा जिनप्रणीत श्रेष्ठ धर्म का उपदेश सुनाया। उससे उन्हें बड़ा वैराग्य हो गया। तब वे सब

राज्य वैभव, धन-दौलत छोड़कर स्व-पर के हित की इच्छा से साधु हो गये।

सेठ की पत्नी यमुना भी वैराग्य से जिनदत्ता आर्यिका के पास दीक्षा लेकर योगिनी बन गई। माता-पिता के इस प्रकार वनवासी हो जाने से उन सातों भाईयों को बड़ी स्वतन्त्रता मिल गई। उनके पास धन तो मनमाना था ही, सो उस धन को व्यसनों में स्वाह करने लगे। उन्हें इस प्रकार दुराचारी और यम के सदृश क्रूर तथा चोर देखकर मथुरा के नये राजा ने बस्ती से निकाल दिया।

यहाँ से चलकर वे सातों भाई मालवे की प्रसिद्ध नगरी उज्जैन के डरावने मसान में आकर ठहरे। उस समय रात अधिक बीत चुकी थी। वे अपने छोटे भाई सूरसेन को वहाँ बैठाकर बाकी छहों भाई शहर में चोरी करने को चल दिये।

इस कथा को यहीं छोड़कर और दूसरी कथा लिखी जाती है। उसका इसी कथा से सम्बन्ध है।

★ ★ ★

उज्जैन के राजा का नाम **वृषभध्वज** था। राजा के पास **दृढ़प्रहारी** नाम का एक बड़ा ही वीर हजार शूरवीरों का प्रधान नायक नौकर था। उसकी स्त्री का नाम **वप्रश्री** था। उनके **वज्रमुष्टि** नाम का पुत्र था। वहाँ **विमलचन्द** सेठ रहता था। सेठ की स्त्री का नाम **विमला** था। इनके **मंगी** नाम की एक पुत्री हुई। वह बड़ी सुन्दरी थी। मंगी का विवाह वज्रमुष्टि के साथ हुआ।

बसन्तऋतु में एक दिन राजा वृषभध्वज वनविहार के लिए गया। शहर के सेठ-साहूकार भी गये। मंगी भी बाग से एक

फूलमाला लाने की इच्छा से जाने को तैयार हुई। मंगी का यह जाना उसकी दुष्ट सास वप्रश्री को अच्छा न लगा। मंगी से वह चिढ़ गई। तब उसने क्रोधित होकर एक घड़े में भयानक काला साँप रखकर ऊपर से उसे फूलमाला से भर दिया। इसके बाद वह बड़े मीठेपन से अपनी बहू मंगी से बोली—

बहू! बाग में काहे को जाती हो। मैंने तो तुम्हारे लिए यहीं माला ले रखी है। देखो, वह घड़े में रखी है। जाकर उसे ले—आओ। हाय! पापी स्त्रियाँ क्रोध चढ़ जाने पर क्या नहीं कर डालती! वे सर्पिनी के समान झट से दूसरों के प्राणों को हर लेती हैं।

बेचारी भोली मंगी सास के कहने से माला लाने को चली गई। उसने ज्यों ही घड़े में हाथ डाला कि त्यों ही उसे उस दुष्ट कालसर्प ने डस लिया। उसी समय जहर उसके सब शरीर में फैल गया। वह मरी हुई के सदृश गश खाकर गिर पड़ी। मोह से अन्धा हुआ प्राणी जैसे अपने हित-अहित को नहीं जानता, वही दशा मंगी की हो गई। उसे कुछ भी सुध-बुध न रही। उसकी सास वप्रश्री ने तब उसके शव को घास में लपेट कर मसान में फिंकवा दिया?

वज्रमुष्टि भी बाग में गया हुआ था। मंगी के प्रति उसका बहुत प्यार था। वह मंगी को बाग में न आई देखकर घर पर आया। मंगी उसे वहाँ भी न दीख पड़ी। तब उसने घबराकर अपनी माँ से पूछा—माँ! मंगी कहाँ है?

सुनकर वप्रश्री बोली—बेटा, क्या कहूँ? उसे तो कालरूपी

सांप ने काट लिया। मैंने मोहवश उसे न जलाकर घास में लपेट कर मसान में डलवा दी है। सुनकर ही वज्रमुष्टि हाथ में तलवार लिए उसी समय घर से निकल गया। मंगी के शोक से दु:खी होकर वह सीधा उसी ओर मसान में पहुँचा। रात हो गई थी, वहाँ उसने उस भयंकर मसान में एक **वरधर्म** नामक पवित्र मुनि को ध्यान में बैठे हुए देखे। भक्ति से नमस्कार कर वह उससे बोला—प्रभो! यदि मैं अपनी प्रिया को फिर से देख पाऊँगा तो आपके सुखकर्ता चरणों की हजार दलवाले कमलों से पूजा करूँगा। यह कहकर वज्रमुष्टि जंगल में मंगी को ढूँढ़ने लगा। भाग्य से मुनि को छूकर आई हुई हवा के लगने से मंगी सचेत हो उठी।

उसे सचेत देखकर वज्रमुष्टि ने उस पर लगा हुआ घास निकालकर दूर फैंका और उसे लाकर वह बोला—प्रिये! तुम इन योगी महाराज के पास थोड़ी देर तक बैठो। मैं अभी इनकी पूजा के लिए कमलों को लेकर आता हूँ। यह कहकर और अपनी स्त्री को मुनि के पास बैठाकर वज्रमुष्टि हर्षित होता हुआ कमलों को लाने चल दिया। वहीं पर छिपा हुआ वह सूरसेन, जिसका कि जिक्र ऊपर आ चुका है, बैठा हुआ था। यह सब देखकर वह वज्रमुष्टि के चले जाने पर मंगी के मन की परीक्षा करने को उसके पास आया।

नाना प्रकार हाव-भाव, हँसी-विनोद के द्वारा उस धूर्त ने मंगी के मन को अपने पर रिझा लिया। मंगी भी उस पर मोहित हो गई। वह बोला—'तुम मुझे यहाँ से कहीं अन्यत्र ले चलो। मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।' सुनकर सूरसेन ने उससे कहा—तुम्हारा

पति कोई ऐसा-वैसा साधारण आदमी नहीं। वह बड़ा ही वीर है। मैं उससे डरता हूँ। इस कारण तुझे मैं अपने साथ नहीं लिवा जा सकता।

इस पर मंगी ने कहा—उससे तुम मत डरो। वह मूर्ख क्या कर सकता है। उसे तो मैं बात की बात में मौत के मुँह में डाल दूँगी। इस प्रकार वे दोनों बातें कर ही रहे थे कि इतने में कमल लेकर वज्रमुष्टि भी आ गया। अपने हाथ की तलवार मंगी को देकर दोनों हाथों से उसने मुनि के चरणों में कमल चढ़ाये।

इसके बाद वह मुनि को नमस्कार करने को झुका। मंगी ने तलवार उठाकर उसके गले पर दे मारी। सूरसेन ने बड़ी जल्दी झपटकर तलवार के वार को अपने हाथ पर झेल लिया। उससे उस बेचारे के हाथ की उँगलियाँ कट गईं।

वज्रमुष्टि किसी आकस्मिक भय से मंगी को डरी हुई समझकर बोला—प्रिय, डरो मत। मंगी ने तब झूठ-मूठ ही कह दिया—नाथ! मैं राक्षस से डर गई थी। सच है माया, स्त्री से ही उत्पन्न होती है।

यह सब लीला देखकर उस चोर सूरसेन को बड़ा ही वैराग्य हुआ। उसने संसार को धिक्कार दिया। उसने विचारा—हाय! जिसके लिए बड़े-बड़े कष्ट उठाये जाते हैं, वह स्त्री कितनी ठग, पापिनी और प्राणों की घातक होती है। ऊपर से तो कैसी सुन्दर! कैसी भोली-भाली! और भीतर देखो तो विष-फल की तरह जहर भरी हुई, सदा सन्ताप देनेवाली। वे लोग बड़े ही मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं जो इनसे प्यार कर हथिनी पर प्यार करनेवाले हाथी की तरह दुर्गति में जाते हैं।

इस दु:ख सागर-संसार में सर्प-सदृश भयंकर विषयों से अब मैं सन्तुष्ट हो गया—अब मुझे इनकी जरूरत नहीं। इस प्रकार वह तो विचार ही रहा था कि इतने में उसके छहों भाई भी बहुत धन-माल चुराकर आ गये। उस धन को वे सूरसेन के आगे रखकर बोले—भाई! तुम भी अपना हिस्सा इसमें से ले लो।

यह देखकर सूरसेन ने अपने भाइयों से कहा—भाई! मुझे अब धन की चाह न रही। मैं तो संसार की भयानक दशा देखकर अत्यन्त भयभीत हो गया हूँ, इस कारण अब तप ग्रहण करूँगा। उन सबने तब सूरसेन से पूछा—भाई! एकाएक ऐसा क्या कारण हो गया, जिससे तुम तप लेने को तैयार हो गये। सूरसेन ने तब अपनी कटी उँगलियां दिखलाकर अपनी और मंगी की सब बातें उनसे कह दीं।

स्त्री के इस भयंकर चरित्र को सुनकर यह सब उन्होंने पाप का कारण समझा। उन्हें भी उस घटना से संसार-शरीर-भोगों में बड़ा ही वैराग्य हो गया। वे सातों भाई तब मोहजाल को काटकर और उस सब धन-माल को जीर्ण तृण की तरह वहीं छोड़कर उन **वरधर्म** नाम मुनि के पास गये। बड़ी भक्ति से उन्होंने उन महान तपस्वी-रत्न मुनि को प्रणाम किया और **दीक्षा** लेकर उसी समय वे सब मुनि हो गये। उधर जब यह हाल उनकी स्त्रियों को ज्ञात हुआ तो वे सब भी जिनदत्ता आर्यिका के पास जिनदीक्षा ले गईं।

एक दिन वज्रमुष्टि ने उन सागर-समान गंभीर, शुद्ध रत्नत्रयधारी मुनियों को उज्जैन के जंगल में तप करते देखकर बड़ी आदर-बुद्धि से उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद उसने उनसे पूछा—भगवन! आपकी यह स्वर्गीय सुन्दरता, यह नई जवानी और यह

लावण्य! ऐसे समय में आपने इस कठिन योग को क्यों लिया? सुनकर उन्होंने सब हाल वज्रमुष्टि से कह दिया।

उस घटना से वज्रमुष्टि के मन पर बड़ा असर पड़ा। वह भी उन्हीं वरधर्म मुनि के पास पहुँचा। नमस्कार कर उसने सब परिग्रह छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर ली। निकट-भव्य के तपोलक्ष्मी के समागम में कोई न कोई कारण मिल ही जाता है।

उधर मंगी को भी उन सब आर्यिका के दर्शन हो गये। उन्हें नई उम्र में ही दीक्षित हुई देखकर मंगी ने उनसे पूछा—देवियों! आपकी यह नई जवानी और यह रूप-सौन्दर्य! इतनी छोटी अवस्था में आप क्यों साध्वी हो गईं? वह सब घटना उन्होंने मंगी से कह सुनाई जिस कारण कि उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। सुनकर **मंगी को बड़ा वैराग्य हुआ।** आत्म निन्दा कर वह भी उसी समय उनके पास दीक्षा ले गई।

इसके बाद वे सुभानु मुनि इत्यादि घोर तप कर अन्त में संन्यास-सहित मरण को प्राप्त हुए। तप के फल से वे सौधर्म स्वर्ग में त्रायस्त्रिंश जाति के देव हुए। वहाँ उन्होंने दो सागर की आयुपर्यन्त बहुत दिव्य सुख भोगा।

★ ★ ★

धातकीखण्ड-द्वीप के प्रसिद्ध भारतवर्ष में **रजताद्रि नामक पर्वत** है। उसकी दक्षिणश्रेणी में **नित्यालोक** नाम की एक बड़ी सुन्दर नगरी है। उसका राजा **चित्रशूल** था। उसकी रानी का नाम **मनोहरी** था। वह सुभानु मुनि का जीव स्वर्ग से आकर इन राजा-रानी के **चित्रांगद** नाम पुत्र हुआ। सुभानु के शेष जो छह भाई थे,

वे भी इन्हीं के पुत्र हुए। उनके नाम थे—गरुड़ध्वज, गरुड़वाहन, मणिचूल, पुष्पचूल, गगननन्दन और गगनचर। वे सातों ही भाई बड़े सुन्दर थे और उनके धन-वैभव का तो कहना ही क्या?

इसी दक्षिणश्रेणी में मेघपुर का राजा **धनंजय** नाम विद्याधर था। उसकी रानी **सर्वश्री** थी। उसके एक पुत्री हुई। वह बड़ी सुन्दरी और भाग्यवती थी। उसमें अनेक गुण थे। उसका नाम **धनश्री** था।

इस रजताद्रिपर्वत में एक **नन्दपुर** नाम शहर था। उसका राजा **हरिषेण** था। उसकी रानी श्रीकान्ता थी। उनके **हरिवाहन** नाम एक पुत्र हुआ। वह धनश्री का कोई सम्बन्धी था। जब इस धातकीखण्ड के भारतवर्ष की अयोध्या में धनश्री का स्वंयवर हुआ, तब धनश्री ने बड़े प्यार से वरमाल हरिवाहन को ही पहनाई। उस समय अयोध्या का राज पुष्पदंत चक्रवर्ती था। उसकी रानी का नाम प्रीतिंकरा था। उनके सुदत्त नाम का पुत्र था। इस स्वयंवर में इस पापी, गर्भिष्ठ सुदत्त ने क्रोध से धनश्री को छीन लिया।

इस घटना को देखकर उन चित्रांगद वगैरह सातों भाईयों को बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने श्री भूतानन्द नाम तीर्थंकर के पास जाकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वे संन्यासहित मरकर माहेन्द्र नामक चौथे स्वर्ग में सामानिक जाति के देव हुए। वहाँ उन्होंने सात सागर तक दिव्य सुखों को भोगा।

★ ★ ★

अपने इस भारतवर्ष के **कुरुजांगल** नाम देश में **हस्तिनापुर** जो शहर है, उसमें श्वेतवाहन नाम एक महाजन रहता था। वह बड़ा

पुण्यात्मा था। उसकी सेठानी का नाम **बन्धुमती** था। वह सुभानु का जीव स्वर्ग से आकर इसके **शंख** नामक जिन-भक्ति-रत्न पुत्र हुआ। हस्तिनापुर का राजा उस समय **गंगदेव** था। उसकी रानी का नाम **नन्दयशा** था। सुभानु के वे शेष छहों भाई इन्हीं राजा-रानी के युगल-पुत्र हुए। उनके नाम थे—गंग और नन्ददेव, खड्गमित्र और नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण। रानी नन्दयशा के एकबार फिर गर्भ रहा। न जाने किस कारण से राजा गंगदेव नन्दयशा पर अबकी बार नाराज हो गया। स्वामी को अपने पर नाराज देखकर नन्दयशा ने अपनी धाय रेवती से कहा—

महाराज आजकल मुझसे कुछ अनमने से हो रहे हैं। जान पड़ता है, यह इस गर्भस्थ पुत्र का प्रभाव है। कुछ दिन बाद जब नन्दयशा ने पुत्र जना, तब धाय ने उसे ले जाकर बन्धुमती सेठानी को दे दिया। वहाँ वह **निर्नामक** नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन बाग में गंगदेव के छहों लड़के जीम रहे थे। उन्हें खाते हुए देखकर बन्धुमती के पुत्र शंख ने निर्नामक से कहा—तू भी इन लोगों के साथ खा ले। सुनकर निर्नामक उन छहों के साथ खाने को बैठ गया। यह देखकर नन्दयशा क्रोध के मारे आगबबूला हो गई। उसने आकर बड़े जोर की एक लात बेचारे निर्नामक की पीठ पर जमा दी और कहा—यह किसका छोकरा है ? यह देख शंख और निर्नामक को बड़ा ही दु:ख हुआ।

हस्तिनापुर के जंगल में एक बार **द्रुमसेन** नाम अवधिज्ञानी महामुनि आये। राजा उनके दर्शनों को गया। शंख और निर्नामक भी गये। वहाँ सबने मुनि द्वारा सुख का कारण धर्मोपदेश सुना।

समय पाकर शंख बोला —हे सब जीवों के हित करनेवाले योगिराज! महारानी नन्दयशा ने एक दिन बिना किसी कारण के ही निर्नामक को मारा था और वे सदा इस पर बड़ी ही नाराज सी रहा करती है, इसका कारण क्या है ? यह सुनकर अवधिज्ञानी द्रुमसेन मुनि बोले—

★ ★ ★

''सुराष्ट्र देश में गिरिनगर नाम का शहर है। उसका राजा **चिवरथ** माँस खाने का बड़ा लोभी था। उसके यहाँ **अमृतरसायन** नाम का रसोइया माँस पकाने में बड़ा होशियार था। राजा ने उसके इस गुण पर प्रसन्न होकर उसे कोई बारह गाँव जागीर में दे दिये। एक बार कोई ऐसा योग-जोग मिला कि गिरिनगर में **सुधर्म** नामक मुनि आये। राजा चित्ररथ को उनके उपदेश सुनने का मौका मिला।

जिनप्रणीत जीव-अजीव आदि तत्त्वों को सुनकर उसकी उन पर दृढ़ श्रद्धा जम गई। उसे वहाँ बड़ा वैराग्य हो गया। सो वह अपने मेघरथ पुत्र को राज्यभार सौंपकर सब परिग्रह छोड़कर स्व-पर के कल्याण की इच्छा से मुनि हो गया। उसके पुत्र मेघरथ ने वहाँ श्रावकव्रत ग्रहण किये।

मेघरथ के पिता चित्ररथ ने जो अपने रसोइये को बारह गाँव दे रखे थे, सो मेघरथ ने राजा होते ही उससे वे सब गाँव छुड़ाकर सिर्फ एक गाँव उसके पास रहने दिया। इस कारण से उस पापी रसोइये ने मुनि से शत्रुता बाँध ली।

एक दिन मुनि आहार के लिये आये तो उस दुष्ट रसोइये ने उन्हें घोषात की नाम जहरीले फल का आहार दे दिया। उस आहार

से उन रत्नत्रयधारी मुनि को बड़ा कष्ट हुआ। गिरनार पर्वत पर उन्होंने संन्याससहित प्राण छोड़े। वे अपराजित नाम विमान में जघन्य आयु के धारक अहमिन्द्र देव हुए। वहाँ उन्होंने खूब सुखभोग किया।

वह रसोइया भी मरकर पाप के उदय से तीसरे नरक गया। वहाँ उसने नाना तरह के कष्टों को चिरकाल तक सहा। वहाँ से बड़े कष्ट से निकलर अन्य कुगतियों में वह भ्रमण करने लगा।

★ ★ ★

भारतवर्ष के मलयदेश में **पलाशकूट** नाम का एक गाँव था। उसमें **यक्षदत्त** एक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम **यक्षदत्ता** था। वह रसोइये का जीव कुगतियों में बहुत घूम-फिरकर इनके यहाँ **यक्ष** नाम पुत्र हुआ। थोड़े दिन बाद इनके एक और पुत्र हुआ। उसका नाम **यक्षिल** था। इनमें बड़ा भाई यक्ष बड़ा ही निर्दयी और पापी था। इस कारण लोग उसे निर्दयी ही कहकर पुकारने लगे। और छोटा भाई यक्षिल बड़ा दयालु था, इस कारण उसे सब दयालु कहा करते थे।

एक दिन बर्तनों से भरी गाड़ी पर बैठे हुए ये दोनों भाई आ रहे थे। रास्ते में एक सर्प बैठा हुआ था। दयालु के बहुत कुछ रोकने और मना करने पर भी दुष्ट निर्दयी ने उस सर्प के ऊपर गाड़ी चला दी। वह सर्प अकाम-निर्जरा से मरकर श्वेतविका नामक पुरी के राजा वासव के यह नन्दयशा नाम लड़की हुई।

उस समय दयालु ने अपने भाई निर्दयी को समझाया कि भाई! तुझे ऐसा महापाप करना उचित न था। उस उपदेश का निर्दयी

के मन पर भी असर पड़ गया और उससे उसे उपशम सम्यक्त्व प्राप्त हो गया। आयु के अन्त मरकर वह यही निर्नामक हुआ है। पूर्व पाप के उदय से नन्दयशा इस पर क्रोधित रहा करती है।

मुनि के द्वारा इस हाल को सुनकर गंगदेव राजा, उनके छहों पुत्र शंख, निर्नामक आदि को बड़ा **वैराग्य** हुआ। वे सब ही दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उधर नन्दयशा और उसकी धाय रेवती ने भी सुव्रता आर्यिका के पास संयम ग्रहण कर लिया। इन दोनों ने निदान किया कि तप के प्रभाव से हमें अन्य जन्म में भी इन पुत्रों और इनके पालन-पोषण का लाभ हो।

इसके बाद वे सब ही तप करके पुण्य से शुक्र नाम स्वर्ग में सामानिक देव हुए। अर्थात् कोई इन्द्र का पिता हुआ, कोई माता हुई, कोई भाई हुआ और कोई गुरु आदि हुए। वहाँ कोई सोलह सागरपर्यन्त खूब दिव्य सुखों को भोगकर उनमें जो 'शंख' का जीव स्वर्ग में था, वह वहाँ से आकर वसुदेव की स्त्री रोहिणी के **बलदेव** नाम सम्यग्दृष्टि पुत्र हुआ है और जो नन्दयशा थी, वह मृगावती देश में दर्शाणपुर के राजा देवसेन की रानी धनदेवी के तुम निदानवश **देवकी** नाम की पुत्री हुईं।

तुम्हारा विवाह वसुदेव से हुआ। नन्दयशा की धाय रेवती मलयदेश के भद्रिलपुर में सुदृष्टि सेठ की स्त्री अलका हुई। वह सदा दान-पूजा-व्रत-उपवास करनेवाली और जिन-भक्ति-रत बड़ी धर्मात्मा हुई। बाकी के जो छहों भाई थे, वे स्वर्ग से आकर युगल-रूप से तुम्हारे पुत्र हुए। वे छहों भाई मोक्षगामी हैं, इस कारण एक नैगम नाम देव कंस के भय से उन्हें जन्म समय ही उठा ले जाकर

अलका सेठानी को सौंप आया। उनके नाम हैं—देवदत्त और देवपाल, अनीकदत्त और अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु। वे छहों भाई इसी भव से मोक्ष जायेंगे। इसी कारण वे जवानी में ही दीक्षा लेकर मुनि हो गये। आहार के लिए वे तुम्हारे घर पर आये थे। उस जन्मान्तर के प्रेम से उन्हें देखकर तुम्हारे हृदय में परमानन्द देनेवाला प्रेम उत्पन्न हुआ था।

इसके सिवा जो निर्नामक मुनि थे, तप करते हुए उन्होंने एकबार तीसरे नारायण स्वयंभू के नाना प्रकार छत्र-चँवर आदि वैभव को देखकर निदान किया कि मुझे भी ऐसी सम्पत्ति प्राप्त हो। उसी में मन रखकर वे मरे भी। तप के फल से उस समय वे महाशुक्र साम स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से आकर यह नौवें नारायण **कृष्ण** नाम तुम्हारे पुत्र हुए और कंस तथा जरासंघ को मारकर इनने त्रिखण्डेश की लक्ष्मी प्राप्त की।''

अपने और पुत्रों के भवों का हाल सुनकर राजमाता देवकी बड़ी ही प्रसन्न हुई। उसने बड़ी भक्ति और आनन्द से श्रीवरदत्त गणधर के चरणों को प्रणाम किया। और जितने भव्य उस समय वहाँ उपस्थित थे, उन सबने भी राजमाता देवकी के भवों का हाल सुनकर बहुत आनन्द लाभ किया। बड़ी भक्ति से उन्होंने गणधर देव को सिर झुकाकर वन्दना की।

देवतागण जिनके पाँव पूजते हैं, जो कामरूपी हाथी के दमन करने को सिंह-सदृश और लोकालोक के जाननेवाले हैं, संसार के नाश करनेवाले और अतुल गुण-रत्नों के समूह हैं, वे त्रिभुवन-चूड़ामणि नेमिप्रभु भव्यजन को सुख दें।

इति त्रयोदशः सर्गः।

चौदहवाँ अध्याय

कृष्ण की पट्टरानियों के पूर्वभव

कृष्ण की पट्टरानी **सत्यभामा** ने भी गणधर भगवान को भक्ति से नमस्कार कर अपने पूर्व भवों का हाल पूछा—कृपासिन्धु जैनतत्त्वज्ञ वरदत्त गणधर बोले — देवी, सुनिए! मैं सब हाल तुम्हें कहता हूँ—

''शीतलनाथजिन के बाद जिनधर्म का नाश हो जाने पर भद्रिल नामक पुर में **मेघरथ** राजा हो चुका है। उसकी रानी का नाम **नन्दा** था। वहाँ एक भूतिशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम कमला था। उनके **भुण्डशालायन** नाम का एक पुत्र हुआ। वह वेदों का बड़ा भारी विद्वान् होने पर भी महाकामी और परस्त्री-लम्पट था।

उस दुर्बुद्धि ने कुछ पुस्तकें बनाईं। मिथ्यात्व के उदय से उसने इन पुस्तकों में गौ-दान, पृथ्वी-दान, कन्या-दान, सुवर्ण-दान आदि मिथ्या दानों की बहुत मनमानी तारीफ की। उन पुस्तकों को सुनाकर वह मेघरथ राजा से बोला — महाराज! इन दानों के देने से बड़ा ही सुख प्राप्त होता है। हल-मूसल आदि के साथ ब्राह्मणों को ये दान अवश्य देने चाहिए। देव! इन दानों से स्वर्गादिक प्राप्त होते हैं।

इन दानों को छोड़कर तप करना, व्यर्थ शरीर को कष्ट पहुँचाना, भाग्य से प्राप्त भोगों को नष्ट करना और संन्यास से मरकर आत्महत्या करना है।

इन कामों से जीवन व्यर्थ ही जाता है और कुछ भी सुख-भोग नहीं किया जा सकता। देव! इनसे हम लोगों के गो-यज्ञ इत्यादि कर्म बड़े ही अच्छे हैं। उनमें पशु मारे जाकर बड़े आनन्द से उनका माँस खाया जाता है और बहुत मनमाना विषय-सुख भोगा जाता है।

महाराज! एक सूत्रामणि नाम यज्ञ है। उसमें इच्छा के अनुसार शराब भी पी जाती है। माता-बहिन आदि का भेदभाव नहीं रखा जाता—बड़ी ही स्वच्छन्दता रहती है। उस यज्ञ में अच्छी शृंगार की हुई सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ सपलंग ब्राह्मणों को दान करना लिखा है। महाराज! ये सब बातें धर्म-प्राप्ति की कारण बतलाई गई हैं।

इस प्रकार मनमाना पाप का उपदेश देकर उसने मूर्ख राजा मेघरथ तथा अन्य बहुत से बुद्धिरहित जनों को ठगकर उनके द्वारा इन कु-दानों को करवाया और घर-खेत आदि दान में दिलवाये।

वे लोग कालदोष से उस दुष्ट के वचनों को सत्य समझकर संसार-सागर में डूबे। उधर वह स्वयं भी मद्य-माँस-परस्त्री सेवन आदि महा पापों को जीवनभर करके अन्त में दुर्ध्यान से मरकर सातवें नरक गया। वहाँ उसने छेदन, भेदन, सूली पर चढ़ना, आरे से कटना, भाड़ में भुनना, कढ़ाई में तलना, भूखे-प्यासे मरना आदि हजारों दु:खों को चिरकाल तक सहा।

परमानन्द देनेवाले जिनवचनों से उल्टा चलनेवाला महापापी कौन-कौन दु:खों को नहीं सहता? वहाँ से बड़े कष्ट से निकलकर पाप के उदय से कभी-कभी वह क्रूर पशु भी हुआ। वहाँ से

मरकर फिर नरक में गया। इस प्रकार उस दुर्बुद्धि ने पापरत होकर क्रम-क्रम से सभी नरकों में भयंकर दु:खों को भोगा।

★ ★ ★

गन्धमादन नाम पर्वत से जो **गंधावती** नाम प्रसिद्ध नदी निकली है, उसके सुन्दर किनारे पर भल्लूकि नाम का एक पल्लीगाँव था। वह मुण्डशालायन ब्राह्मण का जीव पाप के उदय से इसी गाँव में काल नाम का भील हुआ। इसे एक बार **वरधर्म** नाम मुनि के दर्शन हो गये। इसने नमस्कार कर उनके द्वारा मद्य-माँस-मधु इन तीनों के त्याग की प्रतिज्ञा कर ली। मरकर यह विजयार्द्ध की अलकापुरी के राजा पुरुषबल की रानी ज्योतिर्माला के **हरिबल** नाम पुत्र हुआ। व्रत के प्रभाव से यहाँ इसे रूप-सुन्दरता आदि सभी बातें प्राप्त हुईं।

एक बार इसने **अनन्तवीर्य** नाम चारणमुनि की वन्दना कर उनसे द्रव्यसंयम ग्रहण किया। आयु के अन्त में मरकर यह सौधर्मस्वर्ग में देव हुआ।

★ ★ ★

रजताद्रि पर्वत पर **रथनूपुर** नाम का शहर है। उसके राजा **सुकेतु** हैं। वे विद्याधरों के स्वामी हैं। उनकी रानी **स्वयंप्रभा** है। वह हरिबल का जीव सौधर्मस्वर्ग से आकर इन्हीं राजा-राानी के तुम **सत्यभामा** नाम पुत्री हुई। एक बार तुम्हारे पिता ने किसी नैमित्तिक से पूछा—बतलाओ कि मेरी प्यारी पुत्री किसकी पत्नी होगी ?

उस बुद्धिमान नैमित्तिक ज्ञानी ने जब तुम्हारे पिता से कहा—यह भरत के त्रिखण्डेश चक्रवर्ती कृष्ण की प्यारी प्रसिद्ध पट्टरानी

होगी। उस निमित्तज्ञानी के वचनों पर तुम्हारे पिता ने विश्वास किया। उसके अनुसार ही तुम्हारे पिता सुकेतु ने कृष्ण के साथ विधिसहित तुम्हारा विवाह कर दिया और तुम उनकी पट्टरानी हुई। इस प्रकार अपना अन्य जन्मों का हाल सुनकर सत्यभामा बड़ी प्रसन्न हुई। सत्य ही है—गुरुओं के कथन को सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता?

★ ★ ★

इसके बाद महारानी **रुक्मिणी** गणधर भगवान को प्रणाम कर बोली—करुणासिन्धो! मेरे भी भवों का हाल आप कहिए। गणधर ने तब यों कहना आरम्भ किया—

★ ★ ★

इस सुन्दर जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में मगध एक प्रसिद्ध देश है। उसके लक्ष्मी नामक गाँव में **सोम** नाम का एक धनी ब्राह्मण हो चुका है। उसकी स्त्री का नाम **लक्ष्मीमती** था। वह बड़ी सुन्दरी और सौभाग्यवती थी। परन्तु थी वह अभिमानिनी।

एक दिन वह सब शृंगार सजकर अन्त में केसर की टींकी लगाकर अपना मुँह काँच में देख रही थी। इतने में तपोरत्न **समाधिगुप्त** नामक मुनि उसके यहाँ आहर के लिए पधारे। उन्हें देखकर इस पापिनी ने उनकी बड़ी निन्दा की। बे-शर्म नंगा न जाने कहाँ से आ गया? कभी नहाता-धोता नहीं। सारा शरीर मैला और महाघिनौना हो रहा है। कभी शरीर पर कोई सुगन्धित वस्तु नहीं लगाता। इस कारण शरीर कैसी बुरी बदबू मार रहा है। कोई पास बैठता तक नहीं—निराधार दुःखी हो रहा है। और घर-घर पर भीख माँगता

फिरता है—शर्म भी नहीं आती।

इस प्रकार मुनि की बहुत निन्दा कर घृणा के मारे उसने उल्टी कर दी। इस पाप के फल से उसे कोढ़ निकल आया। उस पर बैठती हुई मक्खियों के काले-काले छत्ते पाप-समूह से जान पड़ते थे।

इस कोढ़ से उसकी नाक और उँगलियाँ गल गईं। सिर के सब केश खिर गये। शरीर की दुर्गन्ध से कोई उसे पास न बैठने देता था। आग में तपाई हुई लोहे की पुतली की तरह वह तीव्र दु:ख भोग रही थी। एक क्षण भर में उसकी सब रूप-सुन्दरता और नई जवानी नष्ट हो गई।

पाप का एक भयानक उदय आया कि उसे माँगने पर भी कोई रोटी का टुकड़ा न देता था। महान चारित्र के धारक साधुओं की निन्दा करनेवाला पापी पुरुष सचमुच बड़ा ही दु:ख उठाता है। पाप के उदय से कुत्ती की तरह दुतकारी हुई लक्ष्मीमती एक टूटे-फूटे झोपड़े में रहकर दिन काटने लगी।

अन्त में वह महाआर्त्तध्यान से मरी। मरकर वह अपने ही पति के घर में छछूँदरी हुई। एक दिन वह सोम की छाती पर से दौड़ती हुई जा रही थी। सोम ने उसकी पूँछ पकड़कर इतने जोर से आँगन में पटकी कि वह तुरन्त मर गई। मरकर वह इसी गाँव में गधी हुई। पहले जन्म का उसे अभ्यास सा पड़ रहा था, उससे वह बारबार सोम के घर घुसने लगी।

विद्यार्थियों ने उसे पत्थर, लकड़ी आदि से मार-मारकर उसका एक पाँव ही तोड़ डाला। वह बड़ी दु:खी हो गई। एक बार वह

जाती हुई कुएँ में गिर पड़ी। बड़े कष्ट से उसने वहाँ प्राण छोड़े। वह फिर सूअर हुआ। उसे निर्दयी कुत्तों ने खा लिया।

मन्दिर नाम गाँव में मत्स्य नाम का एक कहार रहता था। उसकी स्त्री का नाम मंडूका था। वह ब्राह्मणी का जीव सूअर के भव से मरकर इसी मंडूका के दुर्गन्धा नाम लड़की हुई। लोग इसे पाप के उदय से पूतिका नाम से पुकारने लगे। इसे पैदा होने के बाद कुछ ही दिनों में इसके माता-पिता भी मर गये। तब इसकी आजी ने बड़े कष्ट से इसे पाला-पोसा। धीरे-धीरे यह समझदार हो गई।

विचिकित्स्या नाम नदी के किनारे एक दिन वे ही समाधिगुप्ति मुनि कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। काललब्धि से पूतिका ने उन्हें देखा। प्रणाम कर वह उनके पास शान्त मन होकर खड़ी रही और मुनि को जो डांस-मच्छर काट रहे थे, उन्हें अपने कपड़े से दया कर उड़ाने लगी।

इसी तरह सारी रात बीत गई। सवेरे जब ध्यान पूरा कर जैनतत्वज्ञ मुनिराज बैठे तब पूतिका भी उनके सुख देनेवाले चरणों के पास बैठ गई। मुनि ने उसे धर्मोपदेश दिया। वे बोले—

जिस धर्म का जिनभगवान ने उपदेश किया, उसका मूल जीवदया है। वह सत्य-शौच-पवित्रता-संयम आदि गुणों से युक्त है। स्वर्ग-मोक्ष का कारण है। उसे देवतागण पूजा करते हैं। तू उसे धारण कर। पूतिका ने पवित्र धर्म का उपदेश तथा अपने दुःख-पूर्ण भवान्तरों को सुनकर मद्य-माँस-मधु और पाँच उदुम्बर फल का त्याग कर अणुव्रतों को धारण कर लिया। इस प्रकार व्रत ग्रहण

करके पूतिका उन सुख के कारण मुनि को बड़े विनय से नमस्कार कर चली गई।

एक दिन कुछ आर्यिकाओं का संघ तीर्थयात्रा के लिये जा रहा था। पूतिका भी उसके साथ हो गई। उसके साथ-साथ अन्य गाँवों में घूमती-फिरती अपने व्रतों का यह पालन करने लगी। उस संघ के आश्रय में इसे भोजन आदि का कभी कोई कष्ट न हुआ। जो कुछ प्रासुक खाने को मिलता, उसे खाकर यह रह जाती थी।

इस प्रकार सुख से यह अनेक जगह जिनवन्दना करती हुई एकबार किसी पर्वत की गुहा में जाकर ठहरी और व्रत-उपवास करने लगी। वहाँ इसे एक पूर्वजन्म की बड़ी प्यारी सखी का समागम हो गया। उसने इसकी बड़ी तारीफ की। अन्तसमय पूतिका संन्यास से प्राणों को छोड़कर अच्युतेन्द्र की देवांगना हुई। वहाँ वह ५५ पल्य तक खूब सुख भोगती रही।

विदर्भदेश में जो सुन्दर कुण्डलपुर है, उसके राजा **वासव** हैं। उनकी रानी का नाम **श्रीमती** है। पुण्य से वह पूतिका का जीव स्वर्ग से आकर इन्हीं राजा-रानी के तुम **रुक्मिणी** नाम प्रसिद्ध सौभाग्यवती और सुन्दरी पुत्री हुई हो।

मंगल नाम नगरी का राजा **भेषज** था। उसकी रानी **मद्री** बड़ी गुणवती थी। उनके जो **शिशुपाल** नाम का पुत्र हुआ, उसके तीन नेत्र थे। भेषज को उसके ललाट पर तीसरा नेत्र देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने निमित्त ज्ञानी को बुलाकर पूछा—शिशुपाल के इस तीसरे नेत्र का फल क्या है? वह बोला—जिसे देखकर इसका यह नेत्र नष्ट होगा, वही इसे मार डालेगा।

एक दिन राजा भेषज अपनी रानी, पुत्र वगैरह के साथ कृष्ण के देखने को द्वारिका गया। वहाँ कृष्ण को देखते ही शिशुपाल का वह नेत्र नष्ट हो गया। यह देख मद्री बड़ी चिन्तातुर हुई। उसने तब हाथ जोड़कर कृष्ण से कहा—प्रभो! मुझे पुत्र की भीख दीजिए।

उत्तर में कृष्ण ने कहा—माता! शिशुपाल के सौ अपराध तक उसे किसी प्रकार का भय नहीं है। कृष्ण से यह वर लाभ कर भेषज राजा वगैरह अपनी राजधानी में लौट आये।

शिशुपाल बालपन से ही बड़ा प्रतापी था। उसने अनेक राजाओं को जीतकर अपना बल और भी खूब बढ़ा लिया। इसके बाद उसकी महत्वाकांक्षा यहाँ तक बढ़ गई कि वह कृष्ण को जीतकर त्रिखण्डेश बनने की इच्छा करने लगा। तैल न रहने पर बुझते हुए प्रदीप की शिखा जैसे कुछ देर के लिये तेज हो उठती है, उसी तरह शिशुपाल भी पाप से बड़ा गर्विष्ठ हो गया।

इस तरह कुछ समय बीतने पर, पुत्री! तेरे पिता वासवराज ने तेरा विवाह शिशुपाल के साथ कर देने का विचार किया। यह सब देख-सुनकर झगड़ेखोर **नारद** ने जाकर कृष्ण से कहा—प्रभो! विदर्भदेश में कुण्डलपुर के राजा वासव के रुक्मिणी नाम की एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या है। उसके सम्बन्ध में ज्यादा क्या कहूँ, वह एक दूसरी देवकुमारी है।

प्रभो! सच पूछो तो वह आप ही के योग्य है। अन्य के योग्य नहीं। क्योंकि मुकुट सिर पर ही शोभा देता है—पाँवों में नहीं। बुद्धिहीन, रुक्मिणी का पिता उसे मूर्ख शिशुपाल को विवाहना चाहता है। भला इससे बढ़कर और अन्याय क्या हो सकता है?

कहीं बुद्धिमान जन अपने तेज से सब ओर प्रकाश फैलानेवाली मोतियों की माला को बन्दर के गले में पहराते हैं ?

झगड़े के मूल नारद द्वारा यह सब हाल सुनकर फिर कृष्ण की क्या पूछो; वे क्रोध के मारे जल उठे। उसी समय इन्होंने अपनी सब सेना को लेकर शिशुपाल पर चढ़ाई कर दी। कृष्ण ने शिशुपाल के कोई सौ अपराध को सह लिया, परन्तु जब वह बहुत ही उद्धत होने लगा, तब कृष्ण को उसका दमन करना ही पड़ा।

इस तरह उसे मारकर कृष्ण ने तुम्हारे साथ विवाह किया और बड़े आनन्द उत्सव से तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाया। यह जानकर 'हे पुत्री! कभी रत्नत्रय-पवित्र साधुओं की निन्दा न करनी चाहिए।' इस प्रकार वरदत्त गणधर द्वारा अपना पूर्वभव का हाल सुनकर रुक्मिणी बड़ी सन्तुष्ट हुई।

★ ★ ★

इसके बाद कृष्ण की तीसरी पट्टरानी **जाम्बवती** गणधर को प्रणाम कर बोली—नाथ! मेरे भी पूर्व-जन्म का हाल कहने की कृपा करें। सुनकर गणधरदेव ने यों कहना शुरु किया—

इस मनोहर जम्बूद्वीप में मेरु के पूर्वविदेह में **पुष्कलावती** नाम एक देश है। उसके **वीतशोक** नाम पुर में एक **दमक** नाम का महाजन हो चुका है। पुण्य से उसे धन-दौलत, कुटुम्ब-परिवार आदि का सभी सुख प्राप्त था। उसकी स्त्री **देवमती** थी।

इनके **देविला** नामक एक पुत्री थी। उसकी शादी किसी **वसुमित्र** नाम धनिक के पुत्र के साथ की गई थी। कर्मों के उदय से वह विधवा हो गई। संसार-देह-भोगों से वैराग्य हो जाने से उसने

जिनदेव नाम मुनि के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। तप करके अन्त में वह मरकर मेरुपर्वत के नन्दन वन में व्यन्तरदेवी हुई। वह बड़ी रूपवती थी। वहाँ वह 84 हजार वर्ष सुख भोगती रही।

★ ★ ★

पुष्पकलावती देश में **विजयपुर** नाम एक शहर है। वहाँ **मधुषेण** नाम एक महाजन रहता था। उसकी स्त्री **बन्धुमती** थी। वह व्यन्तरी का जीव वहाँ से आकर इनके यहाँ **बन्धुयशा** नाम की बड़ी खूबसूरत कन्या हुई। वह अपनी प्रियसखी जिनसेन सेठ की पुत्री जिनदत्ता के साथ बहुत व्रत-उपवासादि तपकर अन्त में संन्यास से मरकर सौधर्म-स्वर्ग में कुबेर की देवांगना हुई। वहाँ की आयु पूरी कर वह पुण्डरीकिणी नगरी में वज्र नाम महाजन की स्त्री समुद्रा के **सुमति** नाम की पुत्री हुई।

एक दिन **सुव्रता** आर्यिका उसके घर आहार के लिए आई। सुमति ने नौ-भक्ति के साथ उसे सुख का कारण पवित्र आहार कराया। आर्यिका ने उसे रत्नावली नाम व्रत करने को कहा। सुमति ने उस व्रत को किया। अन्त में वह मरकर पुण्य से ब्रह्मस्वर्ग में देवी हुई। वहाँ वह चिरकाल तक सुख भोगती रही।

★ ★ ★

अपने इस भारतवर्ष के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर-श्रेणी में जो जांबब नाम शहर है, उसके राजा भी जांबब विद्याधर हैं। उनकी रानी जम्बूषेणा है। वह सुमति का जीव ब्रह्म-स्वर्ग से आकर इन्हीं राजा-रानी के तुम **जाम्बवती** नाम बड़ी सुन्दर पुत्री हुई।

पवनवेग विद्याधर की **श्यामला** नाम स्त्री के **नमि** नाम एक

पुत्र था। सम्बन्ध में वह तुम्हारे मामा का लड़का भाई था। एक दिन वह ज्योति नाम बाग में जाकर तुम्हारे पिता से बोला—

मामाजी! जाम्बवती का विवाह आप मेरे साथ कर दीजिए। और यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं जबरन जाम्बवती को छीनकर ले उड़ूँगा। यह सुनकर तेरे पिता को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने तब अपनी विद्या के बल से जहरीली मक्खियों को नमि के काटने को उड़ाया।

किन्नर नाम शहर का राजा यक्षमाली विद्याधर भी नमि का मामा था। वह नमि से बहुत प्यार करता था। उस समय उसने आकर नमि को उन मक्खियों से बचाकर तुम्हारे पिता की विद्या को नष्ट कर दिया

यह सुनकर तुम्हारा भाई जम्बूकुमार समुद्र-समान गर्जता हुआ आया और यक्षमाली की विद्या को उसने काट डाला। जम्बूकुमार के द्वारा इस प्रकार अपमानित होकर यक्षमाली सूर्योदय से नष्ट हुए अन्धकार की तरह डरकर न जाने कहाँ भाग गया।

झगडालू नारद ने यहाँ का भी सब हाल देख-सुनकर कृष्ण से जाकर कहा—धराधीश दामोदर! तुम्हारे लिए मैं एक बड़े अच्छे समाचार लाया हूँ। वह यह कि जांबवनगर के जो विद्याधर जांबवराज और जम्बूषेणा महारानी हैं, उनके जाम्बवती नाम देवांगना सी सुन्दरी कन्या है। उसका वह अलौकिक रूप नेत्रों को बड़ा ही आनन्दित करता है। प्रभो! वह राजकुमारी आपके ही योग्य है।

नारद द्वारा यह हाल सुनकर तुम पर मोहित हुए कृष्ण ने उसी समय विजयार्द्ध पर जा डेरा लगाया। तुम्हारे पिता भी कोई साधारण मनुष्य न थे जो कृष्ण उन पर झट से विजय पा लेते।

कृष्ण ने उनका सहसा जीत लेना कठिन समझकर एक दूसरी युक्ति की। वे उपवास की प्रतिज्ञा कर रात में कुशासन पर विद्या साधने को बैठे। कृष्ण का यक्षिल उर्फ दयालु नाम का एक पूर्वजन्म का भाई जिनप्रणीत, स्वर्गमोक्ष का साधन तपकर महाशुक्र नाम स्वर्ग में बड़ा वैभवशाली देव हुआ था। पूर्वजन्म के स्नेहवश वह कृष्ण को विद्यासाधन की विधि बतलाकर अपने स्थान चला गया। कृष्ण इससे बड़े सन्तुष्ट हुए।

इसके बाद उन्होंने उस देव की बताई विधि के अनुसार मंत्र द्वारा एक बड़ा भारी तालाब बनाया। उसमें सर्प सेज पर बैठकर फिर उनने कोई चार महीने तक **सिंहवाहिनी** और **गरुड़वाहिनी** नाम दो विद्याओं की साधना की। सब कार्यों को सिद्ध कर देनेवाली वे दोनों ही विद्यायें कृष्ण को सिद्ध हो गईं। कृष्ण ने उन विद्याओं पर चढ़कर रणभूमि में जांबवराज के साथ युद्ध किया और युद्ध में जय भी कृष्ण ही की हुई। पुत्री! इसके बाद कृष्ण बड़े सत्कार के साथ तुम्हें अपनी राजधानी में लाकर महादेवी के श्रेष्ठ पद पर नियुक्त किया। ठीक ही है—पूर्व पुण्य से जीवों को क्या प्राप्त नहीं होता?

जाम्बवती गणधर द्वारा अपना सब हाल सुनकर बड़ी सन्तुष्ट हुई। मानो जैसा उसने सब हाल अपनी आँखों ही देखा हो। उसने तब बड़ी भक्ति से गणधर भगवान को प्रणाम किया।

★ ★ ★

इसके बाद कृष्ण की **सुसीमा** रानी उन्हें नमस्कार कर बोली—प्रभो! मेरे भी पूर्व भवों का हाल कहिए। परोपकाररत गणधर बोले—

धातकीखण्ड-द्वीप की पूरब दिशा में मंगलावती देश में **रत्नसंचयपुर** नाम का श्रेष्ठ नगर है। उसके राजा **विश्वदेव** थे। उनकी रानी का नाम **अनुंधरी** था। अयोध्या के राजा के साथ विश्वदेव का एकबार युद्ध हुआ। उसमें विश्वदेव मारे गये। मंत्रियों वगैरह के मना करने पर भी मोह की मारी विश्वदेव की रानी आग में जलकर सती हो गई। वह मरकर अपने कर्मों के अनुसार विजयार्द्ध पर्वत पर व्यन्तरदेवी हुई। वहाँ उसने दस हजार वर्ष की आयु पाई। इतनी आयु पूरी कर वह वहाँ से भी मरण को प्राप्त हुई।

★ ★ ★

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में एक **शालि** नाम का गाँव था। उसमें **यक्ष** नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री **देवसेना** थी। वह व्यन्तरी का जीव मरकर इनके **यक्षदेवी** नाम की पुत्री हुई। एक दिन इसके घर पर महीना के उपवास से धर्मसेनमुनि आहार के लिए पधारे। यक्षदेवी ने बड़ी भक्ति से उन्हें पवित्र आहार कराया। इसके बाद उसने उन गुणगुरु मुनिराज को नमस्कार कर उनके द्वारा कुछ सुख के कारण व्रत ग्रहण किये।

एक दिन यक्षदेवी जंगल में क्रीड़ा करने को गई हुई थी। इतने में घनघोर बादलों से आकाश घिर गया। बिजलियाँ कड़कने लगीं। यक्षदेवी बेचारी डरकर भागी और जाकर एक पर्वत की गुफा में घुस गई। उस गुफा में एक महाभयंकर अजगर रहता था।

उसने यक्षदेवी को काट लिया। मरकर वह दान के पुण्य से मध्यम भोगभूमि के हरिवर्ष नाम क्षेत्र में पैदा हुई। वहाँ उसने भोगभूमि के उत्तम-उत्त सुखों को आयुपर्यन्त भोगा। वहाँ की

आयु पूरी कर वह भवनवासी देवों के स्थान में नागकुमार की देवी हुई।

★ ★ ★

जम्बूद्वीप में महामेरु की पूरब दिशा में जो मनोहर पुष्कलावती देश है, श्रेष्ठ सम्पदा के घर उस देश में **पुण्डरीकिणी** नाम नगरी है। उसके राज का नाम **अशोक** है। उनकी रानी **सोमश्री** है।

वह नागकुमारदेवी का जीव वहाँ अपनी आयु पूरी कर इन राजा-रानी के **सुकान्ता** नाम की पुत्री हुई। वह वैराग्य हो जाने से जिनदत्ता आर्यिका के पास दीक्षा ले गई। उसने **कनकावली व्रत** कर बहुत तपस्या की। अन्त में संन्याससहित मरकर वह माहेन्द्र नाम के स्वर्ग में देवांगना हुई। वहाँ वह पंचेन्द्रियों के योग्य उत्तम-उत्तम भोग भोगती रही।

इस सुन्दर भारतवर्ष में सुराष्ट्र देश के जो **गुणशालीवर्द्धन** नाम राजा हैं, उनकी रानी का नाम **ज्येष्ठा** है। वह सुकान्ता का जीव स्वर्ग से आकर इन राजा रानी के तुम **सुसीमा** नाम गुणोज्ज्वल पुत्री हुई हो। इस समय तुम कृष्ण की महारानी होकर बड़ा सुख भोग रही हो। जिनधर्म के प्रमाद से सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार आनन्दित करनेवाला अपना हाल सुनकर सुसीमा बड़ी प्रसन्न हुई।

★ ★ ★

इसके बाद कृष्ण की पाँचवीं पट्टरानी **लक्ष्मणा** ने गंभीरमना, गणधर भगवान को भक्ति से नमस्कार कर अपने भवों का हाल पूछा। करुणा से सहृदय गणधरदेव बोले—

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में पुष्कलावती देश है, उसके अरिष्टपुर के राजा **वासव** थे। उनकी रानी का नाम **वसुमती** था। उनका पुत्र **सुषेण** बड़ा गुणवान था। एक बार कोई ऐसा कारण बन गया जो वासवराज सागरसेन मुनि के पास दीक्षा लेकर मुनि हो गये।

सत्य है संसार से डरे हुए गुणशाली भव्यजनों को धन-सम्पदा के छोड़ने में कोई न कोई कारण मिल ही जाता है। उनकी रानी वसुमती पुत्र-मोह से घर ही में रह गई। राजा की मृत्यु के बाद उसके कोई ऐसा पाप का उदय आया कि जिससे वह दुराचार-रत हो गई। मरकर इस पाप से वह जंगल में भीलिनी हुई।

एक बार उस जंगल में कामजयी, चारण ऋद्धिधारी **नन्दिवर्धन** नाम मुनि के उसे दर्शन हो गये। भीलिनी ने बड़े भावों से उन मुनि की वन्दना कर उनके द्वारा श्रावकों के व्रत ग्रहण कर लिये।

आयु के अन्त मरकर वह व्रत के प्रभाव से आठवें स्वर्ग के इन्द्र की नाचनारी (अप्सरा) हुई। अपनी खूबसूरती से वह देवों को मोहित करने की एक औषधि थी।

★ ★ ★

इस भारतवर्ष के विजयार्धपर्वत की दक्षिणश्रेणी में **चन्द्रपुर** नाम जो प्रसिद्ध शहर है, उसके राजा **महेन्द्र** थे। उनकी रानी का नाम **अनुंधरी** था। वह भीलिनी का जीव स्वर्ग से आकर इन्हीं राजा-रानी के **कनकमाला** नाम पुत्री हुई। उसे विद्या सिद्ध थी। उसका जब स्वयंवर हुआ, तब उसने **हरिवाहन** नाम राजकुमार को बड़े प्रेम से वरमाला पहराई।

एक दिन कनकमाला जिन भवनों से सुन्दर सिद्धकूट चैत्यालय

की यात्रा करने को गई। वहाँ **श्रीयमधर** मुनि की भक्ति से वन्दना कर उसने अपने भवों का हाल सुना। मुनि ने उससे **मुक्तावली** नाम व्रत करने को कहा। उसने उस व्रत का पालन कर अन्त में समाधि से प्राणों को छोड़ा। मरकर वह पुण्य से सनत्कुमार इन्द्र की इन्द्राणी हुई। वहाँ वह नव पल्य तक दिव्य सुखों को भोगती रही।

स्वर्ग से आकर वह भारतवर्ष के सुप्रकार पुर नाम शहर के राजा शंवर की रानी ह्रीमती के तुम **लक्ष्मणा** नाम अनेक लक्षणों की धारक पुत्री हुई। तुम्हारे जो श्रीपद्म और ध्रुवसेन नाम दो बड़े भाई हैं, गुणों में उनसे तुम बड़ी हो। जिनवचनों पर तुम्हें बड़ा विश्वास है। किसी पवनवेग नाम के विद्याधर ने तुम्हारी त्रिभुवन-श्रेष्ठ सुन्दरता की कृष्ण से जाकर प्रशंसा की।

कृष्ण ने उसके द्वारा सब बातें सुनकर उसी को तुम्हें लाने को भेजा। लाकर उसने बड़े ठाट-बाट से तुम्हारा विवाह कृष्ण से कर दिया। इसके बाद कृष्ण ने तुम्हें पट्टरानी के महा पद नियुक्त किया। देवी! पुण्य से क्या नहीं होता।

लक्ष्मणा अपना हाल सुनकर बड़ी आनन्दित हुई। उसने फिर गणधर भगवान के चरणों को नमस्कार किया।

★ ★ ★

इसके बाद कृष्ण गणधर से बोले—हे करुणासिन्धो! हे निर्मल गुणों के मन्दिर! अब आप **गौरी, गान्धारी और पद्मावती** के भवों को और कह दीजिए। सुनकर गणधर ने पहले गान्धारी का हाल कहना शुरु किया। वे बोले—

इस जम्बूद्वीप में जो **सुकोसल** नाम सब श्रेष्ठ सम्पदा से भरा-पूरा देश है, उसकी राजधानी **अयोध्या** के राजा का नाम **रुद्र** था। उनकी गुणवती रानी का नाम **विनयश्री** था।

दान-पूजा-व्रत-उपवासादि पर उसका बड़ा प्रेम था। पुण्य से उसने एक बार सिद्धार्थवन में **बुद्धार्थ** मुनि को भक्ति से आहार कराया। उस दान के फल से वह मरकर देवकुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुई। चिरकाल वहाँ सुख भोगकर वह ज्योतिर्लोक में चन्द्र की **चन्द्रवती** नाम स्त्री हुई।

★ ★ ★

जम्बूद्वीप के विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में **गगनवल्लभ** एक शहर है। उसके राजा **विद्युद्वेग** थे और उनकी रानी का नाम **वित्द्युद्वेगा** था। वह चन्द्रवती का जीव ज्योतिर्लोक से आकर इन राजा-रानी के **सुरूपा** नाम पुत्री हुई। उसका विवाह विद्या-पराक्रम आदि गुणों के धारक नित्यालोकपुर के राजा महेन्द्रविक्रम के साथ हुआ।

एक दिन ये दोनों पति-पत्नी मेरुपर्वत के चैत्यालयों की यात्रा करने को गये। वहाँ **विनीत** नाम एक पवित्र चारण-मुनि विराजे हुए थे। प्रणाम कर इन्होंने उनके द्वारा धर्म का उपदेश सुना। उससे महेन्द्रविक्रम को बड़ा वैराग्य हुआ और अन्ततः वह दीक्षा लेकर मुनि हो गया।

सुरूपा भी फिर सुभद्रा आर्यिका के पास दीक्षा-लेकर साध्वी हो गई। तप करके आयु के अन्त में संन्यास-मरण कर वह सौधर्म स्वर्ग में देवी हुई। वहाँ एक पल्य पर्यंत वह सुख भोगती रही।

★ ★ ★

इस पवित्र भारतवर्ष में गन्धार देश में जो **पुष्कलावती** नाम शहर है, उसके राजा का नाम **इन्द्रगिरि** है। उनकी रानी का नाम **मेरुमती** है। वह सुरूपा का जीव सौधर्म स्वर्ग से आकर इन राजा-रानी के **गान्धारी** नाम यह श्रेष्ठ सौभाग्य की धारक पुत्री हुई। इसके पिता ने इसका विवाह अपने किसी भानजे के साथ कर देना निश्चय किया था।

नारद ने यह हाल तुमसे आकर कहा। नारद की बातें सुनकर गान्धारी पर मोहित हुए तुमने सेना लेकर इन्द्रगिरि पर चढ़ाई कर दी और युद्ध में उन्हें हराकर गांधारी को तुम ले आये। इसके बाद तुमने पट्टरानी के पद पर नियुक्त कर इसका मान बढ़ाया।

★ ★ ★

कृष्ण! अब **गौरी** का हाल सुनो। इसी जम्बूद्वीप में नागपुर नाम का जो बड़ा भारी शहर था, उसके राजा **हेमाभ** थे। उनकी रानी का नाम **यशस्वती** था। सुन्दरता-सौभाग्य-लावण्य-पुण्य आदि रत्नों की वह पृथ्वी थी। उसे एक बार **यशोधार** नाम आकाशचारी मुनि के दर्शन करने से पूर्वजन्म का ज्ञान हो गया। उसके पति के पूछने पर वह बोली—

धातकीखण्ड द्वीप के मेरु की पश्चिम दिशा में विशाल विदेहदेश में शोकपुर नाम नगर था। उसमें **आनन्द** नाम एक महाजन रहता था, उसकी स्त्री का नाम **नन्दयशा** था। एक दिन नन्दयशा ने अमितसागर मुनि को बड़ी भक्ति से आहार कराया। दान के प्रभाव से उसके घर पर पंचाश्चर्य हुए। आयु के अन्त वह साध्वी मरकर पुण्य से उत्तरकुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुई। वहाँ की आयु पूर्ण कर

वह भवनवासी इन्द्र की देवांगना हुई।

वहाँ से आकर वह केदारपुर के राजा की पुत्री मैं **यशस्वती** हुई। पूर्व पुण्य से पिताजी ने मेरा विवाह आपसे कर दिया।

अपनी स्त्री का हाल सुन हेमाग बड़ा सन्तुष्ट हुआ। इसके बाद एक बार कमललोचनी यशस्वती ने सिद्धार्थवन में सागरदत्त मुनि की वन्दना कर उनके उपदेश से कुछ व्रत-उपवास लिये। तप करके आयु के अन्त मरकर वह सौधर्मस्वर्ग में देवी हुई। वहाँ वह बहुत कालतक सुख भोगती रही।

★ ★ ★

इस जम्बूद्वीप की कौशाम्बी नगरी में **सुमति** नाम एक बड़ा भारी धनी सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम **सुभद्रा** था। वह यशस्वती का जीव सौधर्म स्वर्ग से आकर इन सेठ सेठानी के **धार्मिकी** नाम धर्म-कर्म-रत पुत्री हुई। धार्मिकी ने जिनमती आर्यिका के पास जिनगुणसम्पत्ति नाम व्रत लिया। आयु के अन्त मरकर वह व्रत-प्रभाव से शुक्र स्वर्ग में देवांगना हुई, वहाँ उसने बहुत काल तक दिव्य सुखों को भोगा।

वहाँ से आकर वह इस भारत में वीतशोक नाम पुर के राजा मेरुचन्द्र की रानी चन्द्रवती के प्रसिद्ध सुन्दरता आदि गुणों की धारक यह **गौरी** नाम पुत्री हुई। विजयपुर के राजा विजयनंदन ने फिर लाकर बड़े ठाटवाट से इसका विवाह तुम्हारे साथ कर दिया, तुमने इसे पट्टरानी के उच्च पद पर नियुक्त किया।

★ ★ ★

कृष्ण! सुनिए! अब तुम्हें **पद्मावती** महादेवी के भवों का हाल

कहा जाता है। यह कहकर गणधर बोले—उज्जैनी के राजा विजय की रानी का नाम **अपराजिता** था। उसके विजयश्री नामक पुत्री हुई। वह बड़े उज्ज्वल गुणों की धारक थी। सत्य-शील-दान-पूजा-व्रतरूपी पवित्र जल-प्रवाह द्वारा उसने मन का सब मैल धो डाला था—उसका हृदय बड़ा पवित्र था। हस्तशीर्ष नामक शहर के राजा बुद्धिमान **हरिषेण** के साथ उसका बड़ा राजसी ठाट-बाट और विधिसहित विवाह हुआ।

एक दिन विजयश्री ने तपस्वी समाधिगुप्त मुनि को बड़ी भक्ति से आहार कराया। आयु के अन्त मरकर वह दान के प्रभाव से हेमवत नाम जघन्य भोगभूमि में जाकर पैदा हुई। वहाँ उसने बहुत काल तक इच्छित सुखों को भोगा। वहाँ से मरकर वह चन्द्रमा की रोहिणी नाम प्रिया हुई। वहाँ उने एक पल्य तक सुख भोगा। वहाँ से आकर वह मगधदेश में शाल्मलि गाँव के निवासी किसानों के पटेल विजयदेव की स्त्री देविला के पद्मावती नाम की पुत्री हुई।

उसने फिर वरधर्म मुनि की वन्दना कर उनके द्वारा अजाने फल के न खाने का व्रत लिया। एक दिन पापी भीलों ने आकर शाल्मलि गाँव में खूब लूट-खोंस की और लोगों को बे-तरह मारा। बहुत से लोग गाँव छोड़-छोड़कर घने जंगलों में भाग गये। बेचारों के पास वहाँ खाने को कुछ न था, सो भूख के मारे वे बड़ा कष्ट पाने लगे। उन्होंने भूख न सह सकने के कारण विषबेल के फलों को ही खा लिया। उससे वे सब मर मिटे।

उन लोगों में पद्मावती भी थी। परन्तु उसने उन फलों को न खाया। कारण अनजान फल न खाने की वह प्रतिज्ञा ले चुकी थी।

सो वह वैसे ही भूख के मारे मर गई। सत्य है जो धीर लोग अपने व्रत पालने में दृढ़-मन रहते हैं। वे प्राण जाने पर भी कभी व्रत को नहीं छोड़ते। पद्मावती इस व्रत के प्रभाव से मरकर हेमवती की जघन्य भोगभूमि में जाकर उत्पन्न हुई। वहाँ उसने एक पल्य तक सुखों को भोगा।

वहाँ से आकर वह स्वयंप्रभ नाम देव की स्वयंप्रभ-द्वीप में **स्वयंप्रभा** नाम बड़ी सुन्दर देवांगना हुई। वहाँ से वह इस भारत में जयन्तपुर के राजा श्रीधर की रानी श्रीमती के **विमलश्री** नाम लड़की हुई। उसका ब्याह भद्रिलपुर के राजा मेघनाद के साथ हुआ। वहाँ वह बड़े सुख के साथ रही। एक दिन बुद्धिमान मेघनाद ने धर्म नामक मुनिराज से जिनप्रणीत पवित्र धर्म का उपदेश सुना, उससे उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। वे सब राज-काज दौड़कर मुनि हो गये। तप करके आयु के अन्त में वे संन्यास मरण कर पुण्य से सहस्रार स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए।

इधर उनकी रानी विमलश्री ने भी पद्मावती नाम आर्यिका के पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह अचाम्लवर्द्धमान नाम दु:सह तप कर उसी सहस्रार स्वर्ग में मेघनाद के जीव महर्द्धिक देव की देवांगना हुई। वहाँ वह बहुत काल तक सुखों को भोगती रही। वहाँ से आकर वह इस भारतवर्ष में अरिष्टपुर के राजा हरिवर्मा की रानी श्रीमती के वह **पद्मावती** नाम श्रेष्ठ रूप-सुन्दरता, सौभाग्य आदि गुण-रत्नों की धारक पुत्री हुई।

स्वयंवर में इसने रत्नमाला के द्वारा तुम सदृश त्रिखण्डेश को भी अपने वश में कर लिया। तुमने फिर कृष्ण! इस पवित्र जिन-

भक्ति-रत देवी को मान देकर इसे अपनी प्रधान रानी बनाया।

इस प्रकार गणधर के मुख-कमल से अपनी रानियों का हाल सुन— श्रीकृष्ण बड़े ही सन्तुष्ट हुए। उनकी सब रानियाँ भी अपना-अपना हाल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं। बड़ी भक्ति से उन सबने गणधर भगवान को नमस्कार किया।

इनके सिवा वहाँ और जितने धर्मात्मा जन बैठे हुए थे, वे भी इस धर्मामृत को पीकर बड़े सन्तुष्ट हुए। जिनधर्म को वे अब और अधिक भक्ति के साथ पालने लगे। जहाँ गणधर-सदृश कृपासिन्धु महाज्ञानी स्वयं वक्ता हो, वहाँ कौन धार्मिक न हो जायेगा?

जिनकी देवों के इन्द्र, चक्रवर्ती, चांद-सूरज, विद्याधरों और राजों-महाराजों ने बड़ी भक्ति से पूजा की, जो भव्यजनों को भवसमुद्र से पार करने में एक दृढ़ जहाज-सदृश और गुणनिधि हैं, वे त्रिलोक-चूड़ामणि नेमिजिन दोनों लोक में सुख दें।

इति चतुर्दशः सर्गः।

पन्द्रहवाँ अध्याय
प्रद्युम्न का हरण, विद्यालाभ और मातृ-समागम

बलदेव ने लोक-श्रेष्ठ गणधर भगवान को भक्ति से प्रणाम कर **प्रद्युम्न** और **शंभुकुमार** भवान्तर-कथा सुनने की इच्छा प्रकट की। वह इसलिए कि त्रिजगद्गुरु की सभा में बैठे हुए अन्य भव्यजनों के मन पर उन दोनों के गुणों का प्रकाश पड़े। सुनकर जग-हितकर्ता गणधर भगवान बोले—

राजन! मिथ्यात्व के पाप से संसार में रुलते हुए जीवों के अनन्त जन्म बीत गये। उन दुःखरूप जन्मों में कुछ लाभ नहीं। परन्तु जिन्होंने जिनप्रणीत धर्मलाभ से अपना जन्म पवित्र किया, उनके जन्म का हाल मैं तुमसे कहता हूँ, सो सुनिए।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में जो मगधदेश है, उस जिनप्रणीत श्रेष्ठ धर्म से युक्त देश में **शालि** नाम एक गाँव था। उसमें **सोमदेव** नाम का ब्राह्मण रहता था। सोमदेव की स्त्री का नाम **अग्निला** था। इनके **अग्निभूत** तथा **वायुभूत** नाम के दो पुत्र हुए। ये दोनों भाई मिथ्याशास्त्र वेद के अच्छे विद्वान थे। ब्राह्मण-कुल में पैदा होने का इन्हें बड़ा गर्व था। एक दिन ये दोनों भाई नन्दिवर्द्धनपुर को गये हुए थे। इन्होंने वहाँ जंगल में पृथ्वी को पवित्र किये हुए संघसहित नन्दिवर्द्धन मुनि को देखकर बड़ी गालियाँ दीं। सत्य है दुष्ट दुराचारी लोग पवित्र साधुओं को देखकर, चाँद को देखकर भोंकते हुए कुत्तों की तरह उन पर क्रोधित होते हैं।

नन्दिवर्द्धन गुरु ने उन दुष्टों को अपनी ओर आते देखकर संघ के मुनियों से कहा—आप लोगों में से कोई इनके साथ न बोले, नहीं तो सारे संघ को कष्ट सहना पड़ेगा। अपने आचार्य के इस प्रकार हित-मित-सुखरूप वचनों को सुनकर सब मुनि मौनसहित ध्यान में बैठ गये।

उन सब मुनियों को इस प्रकार मेरु-सदृश ध्यान में निश्चल बैठे देखकर ये दोनों भाई उनकी हँसी-दिल्लगी उड़ाते हुए अपने गाँव को चल दिये। उधर से जैनतत्त्वज्ञ एक सत्यक नाम निरभिमानी मुनि आहार करके आ रहे थे। ये ज्ञानलव-विदग्ध दोनों भाई उन्हें देखकर बोले—

अरे ओ नंगे! ओ तपोभ्रष्ट! तूने, जिसमें बहुत पशु वध कर बलि दिये जाते हैं, वह वेद-विहित यज्ञ तो कभी किया ही नहीं, तुझे नाना तरह के दिव्य सुखों का स्थान स्वर्ग कहाँ से मिलेगा? यह सुनकर, जिनवचनरूप समुद्र के बढ़ानेवाले चन्द्रमा सत्यक मुनि उनसे बोले—

ब्राह्मणो! तुम बड़े ही मूर्ख हो-अविचारी हो। भला, जरा तो विचार करो कि निरपराध, घास-तृण के खानेवाले पशुओं की यज्ञ में बलि देकर, उनका माँस खाकर और शराब पीकर ही यदि स्वर्ग प्राप्त हो जाता है तो फिर नरक किस पाप से जायेंगे? यदि पशुओं का मारना तुम्हारे यहाँ स्वर्ग का कारण माना है, तब तो भील आदि नीच लोग, जो सदा जीवों को मारा करते हैं, अवश्य ही स्वर्ग में जायेंगे। फिर व्रत करना, नहाना-धोना, गेरुए वस्त्र धारण कर संन्यासी बनना और एकादशी वगैरह करना, वे सब कर्म किसी

भी काम के न रह जायेंगे।

उस समय सत्यक मुनि की युक्तियों को जितने लोग सुन रहे थे, उन सबने सत्य पक्ष का समर्थन कर मुनि की बड़ी तारीफ की। वे दोनों भाई मुनियों की इन युक्तियों का कुछ भी उत्तर न दे सके। उन्हें वहाँ बड़ा ही अपमानित होना पड़ा।

इस अपमान के कारण वे मुनि के जानी दुश्मन बन गये। उन्होंने इस अपमान का बदला लेना स्थिर किया। रात के समय क्रोध में भरे हुए वे दोनों भाई तलवार लिये उस घने जंगल में आये। सत्यक मुनि धीरमन होकर प्रतिमा-योग तप कर रहे थे। यह देखकर उन पापियों ने मारने के लिए उन पर तलवार उठाई।

स्वर्ण नाम का यक्ष कुछ खास चिह्नों से मुनि पर उपसर्ग जानकर उसी समय वहाँ आया और उन दोनों भाईयों को उसने तलवार उठाये के उठाये ही कील दिया। उन्हें अपने जी बचाने की भी मुश्किल पड़ गई। सत्य है जो दुष्ट, पापी साधु पुरुषों को कष्ट पहुँचाने हैं, उनकी त्रिभुवन में निन्दा होकर वे किन कष्टों को नहीं पाते ?

जब इनके माता-पिता को यह हाल सुन पड़ा तो वे बड़ी दुःखी हुए। बेचारे घबराकर उसी समय दौड़े-दौड़े मुनि की शरण आये और भगवन्! रक्षा कीजिए, बचाइए, कहकर उनके पांवों में गिर पड़े। यक्ष के भी उन सबने हाथ जोड़ दया की भीख मांगी। इस पर यक्ष ने कहा—

आप लोग यदि हिंसाधर्म छोड़कर जिनप्रणीत दयाधर्म स्वीकार करें तो मैं आपके पुत्रों को छोड़ सकता हूँ। उन सबने तब डरकर, पर मायाचारी से मुनि को नमस्कार कर श्रावक के योग्य जिनधर्म

स्वीकार कर लिया। और जब यक्ष ने उनके पुत्रों को छोड़ दिया, तब घर पर आकर उन दुष्टों ने सन्तुष्ट होकर अपने पुत्रों से कहा—

बेटो! हमने जो जैनधर्म ग्रहण कर लिया था, वह तो कारणवश किया था। अब उसके रखने की कोई जरूरत नहीं। तुम उसे छोड़ दो।

इस प्रकार माता-पिता द्वारा आग्रह किये जाने पर भी काललब्धि और पुण्य से अग्निभूति और वायुभूति का विश्वास श्रावकधर्म पर से जरा भी न उठा। इस कारण उनके मूर्ख माता-पिता तीव्र मिथ्यात्ववश उन पर बड़े ही क्रोधित हो गये और इस क्रोध से ही अन्त में उन्हें कुगति में जाना पड़ा। और ये दोनों भाई पवित्र श्रावकधर्म की आराधना कर सौधर्म स्वर्ग में पारिषद जाति के देव हुए। वहाँ इन्होंने धर्म के प्रभाव से पाँच पल्य तक दिव्य सुख भोगा।

★ ★ ★

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में जो **कोशल** देश है, उसकी राजधानी अयोध्या के राजा **अरिंजय** बड़े धर्मात्मा और जिनभक्ति-रत थे। वहाँ एक धर्मप्रेमी **अर्हद्दास** नाम का सेठ रहता था। उसकी सेठानी का नाम **वप्रश्री** था। वे अग्निभूति और वायुभूति के जीव सौधर्म स्वर्ग से आकर इन सेठ-सेठानी के **पूर्णभद्र** और **मणिभद्र** नाम के पुत्र हुए। अर्हद्दास सेठ इन पुत्रों से निश्चय और व्यवहार-नय से युक्त धर्म की तरह शोभित हुए।

एक दिन सिद्धार्थवन में **महेन्द्र** नाम के महामुनि पधारे। राजा अर्रिजय, अर्हद्दास सेठ इत्यादि सब मुनि-वन्दना को गये। भक्तिसहित नमस्कार कर उन सबने मुनि द्वारा धर्म का पवित्र

उपदेश सुना। उपदेश का राजा के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे विरक्त होकर उसी समय अपने अरिंदम नाम के पुत्र को राज्य सौंपकर, जिनदीक्षा ले गये।

परमेष्ठि-भक्ति-रत अर्हद्दास सेठ भी राजा के साथ मुनि हो गये। उस समय अर्हद्दास के बड़े पुत्र पूर्णभद्र ने उन मुनि को नमस्कार कर पूछा—मुनिनाथ! मेरे पूर्वजन्म के माता-पिता इस समय कहाँ पर हैं? कृपाकर आप कहिए। ज्ञानी महेन्द्र मुनिराज पूर्णभद्र से बोले—

★ ★ ★

महाभव्य पूर्णभद्र! सुनो! मैं सब हाल तुम्हें कहता हूँ। जिनप्रणीत धर्म से पराङ्मुख तुम्हारा पिता सोमदेव ब्राह्मण, नाना प्रकार पाप कर रत्नप्रभा नरक के सर्पावर्त नामक बिल में नारकी हुआ। वहाँ उसने बड़े ही दुःखों को सहा। बड़े कष्ट से वहाँ से निकलकर वह काकजंघ नाम चाण्डाल हुआ है। और जो तुम्हारी माता अग्निला थी, वह कुलाभिमान के वश हो पाप के उदय से अनेक दुर्गतियों में भ्रमण करके इसी काकजंघ के यहाँ बड़ी कठोर और अप्रिय आवाजवाली कुत्ती हुई है।

वे दोनों इसी गाँव में हैं। यह सुनकर पूर्णभद्र उसी समय उनके पास गया। उन पर दया कर उसने बड़े मीठे शब्दों में उन्हें प्रबोध दिया। इससे उन्हें उपशम सम्यक्त्व हो गया।

वह काकजंघ चाण्डाल अन्त में संन्याससहित मरकर नन्दीश्वरद्वीप में सारे द्वीप का मालिक देव हुआ। इस कारण भव्यजनों! ध्यान रखिए कि धर्म से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है, और

जो वह कुत्ती थी, सो मरकर इसी जगह राजा अरिंदम की रानी श्रीमती के **प्रबुद्धा** नाम बड़ी सुन्दर पुत्री हुई।

जब प्रबुद्धा प्रौढ़ हुई और उसका स्वयंवर किया गया, तब वह वरमाल लेकर स्वयंवर मंडप में जा रही थी, उस समय उस सुवर्णयक्ष ने आकर उससे कहा—बेटी! तुझे क्या याद नहीं रहा कि तू पूर्व जन्म में पाप के उदय से काकजंघ के घर में कुत्ती हुई थी और तुझे पूर्णभद्र ने प्रबोध दिया था। उसी के फल से तो तू राजकुमारी हुई है, और अब इस विवाहरूपी अशुभकार्य में क्यों फँस रही है?

यक्ष के द्वारा इस प्रकार समझाई गई प्रबुद्धा को वैराग्य हो गया। वह उसी समय प्रियदर्शना नाम की आर्यिका के पास दीक्षा लेकर साध्वी हो गई। जिनप्रणीत तप करके वह संन्याससहित मरण कर सौधर्मेन्द्र की मणिचूला नामक सुन्दरता आदि गुणों की धारक देवी हुई। इधर पूर्णभद्र और मणिभद्र भी श्रावक व्रत का पालन कर इसी स्वर्ग में सामानिक जाति के देव हुए। वहाँ वे दो सागर तक सुख भोगते रहे। वहाँ से आकर वे दोनों भाई इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में जो कुरुजांगल देश है, उसकी राजधानी हस्तिनापुर के राजा अर्हद्दास की रानी काश्यपी के **मधु** और **क्रीड़ाव** नाम दो रूपवान पुत्र हुए।

एक दिन जिनभक्त अर्हद्दास राजा विमलप्रभ मुनि की वन्दना करने को गया। बड़ी भक्ति से नमस्कार पूजा कर उसने मुनि द्वारा स्वर्ग-मोक्ष का साधन जिनप्रणीत धर्म का उपदेश सुना। संसार के दु:खों से डरकर उसने सब राज्यभार पुत्रों को सौंपकर जिनदीक्षा

ग्रहण कर ली। रत्नत्रय से पवित्र होकर वह स्व-पर का तारनेवाला हो गया।

एक बार आमलकण्ठ पुर का राजा **कनकरथ** कर्मयोग से मधुराज की सेवार्थ हस्तिनापुर आया। साथ ही उसकी स्त्री **कनकमाला** थी। मूर्ख मधु महासुन्दरी कनकमाला को देखकर उस पर मोहित हो गया और जबरन उसे उसने अपने महल में रख ली। काम बड़ा ही अन्यायी है, जिसके वश होकर राजे लोग भी परस्त्री-लम्पट हो जाते हैं।

बेचारा कनकरथ एक क्षुद्र राजा था, सो वह इस बलवान मधु का कुछ न कर सका। तब वह स्त्री के शोक से अत्यन्त दु:खी होकर जंगल में चला गया।

उसे एक द्विजटी नाम मिथ्या तापसी मिल गया। उससे दीक्षा लेकर वह महा कठिन पंचाग्नि तप करने लगा। अन्त में मरकर वह उस कुतप के प्रभाव से ज्योतिश्चक्र-देवों में धूमकेतु नाम देव हुआ। वहाँ योग्य-वैभव पाकर वह सुख भोगने लगा।

एक बार हस्तिनापुर में **विमलवाहन** नाम के मुनि आये। मधुराज और क्रीडाव उनकी वन्दना करने को गये। बड़ी भक्ति से नमस्कार-पूजा कर उन्होंने उन मुनि के द्वारा जिनप्रणीत दसलक्षण धर्म का उपदेश सुना। अपने किये अन्याय पर बड़ा पश्चात्ताप होने से संसार-विषय भोगों से उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ।

राज्य की लक्ष्मी को छोड़कर वे दोनों भाई मोक्ष की साधना जिन-दीक्षा लेकर मुनि हो गये। जिनप्रणीत सत्य तत्त्व को जानकर वे दु:खों के जलाने को दावानल-सदृश महा घोर तप करने लगे।

उन्होंने माया-मिथ्या और निदान इन तीनों शल्यों से रहित होकर चार आराधना की आराधना शुरु की। अन्त में संन्यास मरणकर वे महाशुक्र नाम स्वर्ग में देव हुए। वहाँ उन्होंने बहुत काल तक सुख भोगा।

उनमें जो बड़ा भाई पूर्णभद्र या मधु था, वह वहाँ से आकर पुण्य से रुक्मिणी महारानी के प्रद्युम्न हुआ। बालसूर्य सदृश तेजस्वी और बड़ा ही रूपवान तुम्हारा प्रद्युम्नकुमार कामदेव है और चरमांगधारी इसी भव से मोक्ष जानेवाला है। प्रद्युम्न जन्म के दूसरे दिन अपनी माता की गोद में सुख से सोया हुआ था।

इसी समय प्रद्युम्न मधु के भव का शत्रु कनकरथ, जो ज्योतिषी देवों में धूमकेतु नाम देव हुआ था, विमान में बैठा हुआ आकाशमार्ग से जा रहा था। उसका विमान जब प्रद्युम्न के ऊपर आया, तब वह आगे न बढ़कर वहीं ठहर गया। अपने वायु-सदृश शीघ्रगामी विमान को सहसा ठहरा देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

विभंगावधिज्ञान से उसे जान पड़ा कि जिस कारण उसका विमान ठहर गया, वह उसका शत्रु यहाँ पर मौजूद है। कनकरथ के भव में इसी पापी ने मेरी स्त्री कनकमाला को मुझसे जबरन हर लिया था। बड़ा अच्छा अब मौका मिला। मैं भी अब इसे महाकष्ट दे-देकर मारूँगा।

वह क्रोध के मारे आग की तरह जलने लगा। नीचे आकर अन्त:पुर के सब लोगों को निद्रावश कर वह प्रद्युम्न को उठाकर चलता बना। जाकर उसने घने वृक्षों से अन्धकारमय खदिर नाम वन में, जो एक बड़ी भारी शिला थी, उसके नीचे उसे दबा कर

आप शीघ्र ही न जाने किस ओर भाग गया। निर्दयी, पापी शत्रु को जब मौका हाथ लग जाता है, तब वह दूसरों को कष्ट देने में कोई कसर नहीं रख छोड़ता।

★ ★ ★

इस समय विजयार्द्ध की दक्षिणश्रेणी में स्थित मृगावती देश के मेघकूटपुर का राजा **कालसंवर** अपनी रानी **कंचनमाला** के साथ विमान पर चढ़ा हुआ जिनप्रतिमाओं की पूजन करने को आकाशमार्ग से जा रहा था। वह इस खदिरवन में इतनी बड़ी भारी शिला को हिलती-डुलती देखकर बड़े अचम्भे में पड़ गया।

नीचे आकर अपने चारों ओर देखकर बड़ी सावधानी से उस शिला को उठाया। उसके नीचे उसे एक बड़ा ही सुन्दर और सब श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त बालक दीख पड़ा।

उसने झट से उस सूर्य-सदृश तेजस्वी बालक को उठा लिया। उसे उसके असाधारण चिह्नों को देखकर जान पड़ा कि वह कोई साधारण बालक नहीं है। उसने तब अपनी रानी से कहा—प्रिये, देखो तो सही, यह बालक कैसा सुन्दर लोक-श्रेष्ठ है। जान पड़ता है कोई पूर्वजन्म का शत्रु इस घोर वन में इसे यहाँ शिला के नीचे दाब गया है।

प्रिये! लो तुम इसे अपना ही पुत्र समझो। सुनकर कंचनमाला बोली—नाथ! मैं इसे अपना बड़ा सौभाग्य मानती हूँ; परन्तु यदि आप इसे अपना युवराजपद दें तो मैं इसे ले सकती हूँ। 'एवमस्तु' कहकर कालसंवर ने कंचनमाला के कानों का सुवर्णपत्र निकालकर उस बालक के बाँध दिया। इसके बाद वे पति-पत्नी उस पुण्यपुंज

बालक को लेकर आनन्दित होते हुए मेघकूटपुर चले आये। आकर उन्होंने शहर के सजाने की आज्ञा की। घर-घर के दरवाजों पर रत्नों के तोरण बाँधे गये। ध्वजायें लगाई गईं। सब ओर खुशी के गीत-गान होने लगे। मंगल बाजे बजने लगे। भिखारी-याचकों को मुँहमाँगा दान दिया जाने लगा। सबने मिलकर जिनभगवान का महाभिषेक किया-पूजन की। इस प्रकार बड़े भारी उत्सव के साथ उस बालक का नामकरण संस्कार किया गया। उसका नाम रखा गया **देवदत्त***। पुण्य के उदय से जीवों को पग-पग पर मंगल प्राप्त होते ही हैं।

गुणवान प्रद्युम्न अब कालसंवर के यहाँ सुख से दिन पर दिन दूज के चांद-समान बढ़ने लगा। उसके बाल-सुलभ खेलों को देखकर माता-पिता, अन्य राजे-महाराजे तथा विद्याधर-राजे आदि सभी अत्यन्त हर्षित होते थे-सबका मन वह मोह लेता था।

★ ★ ★

अब इधर द्वारिका में रुक्मिणी की हालत देखिए। जिस दिन से प्रद्युम्न हरण हुआ, उसके दु:ख का कोई पार न रहा। मालती लता पर मानों हिम-कुहरा गिर पड़ा। वह पानी बरस जाने पर निस्सार हुई मेघमाला के समान दिन पर दिन दुबली, निर्बल होने लगी। चाँद रहित रात्रि की तरह उसकी सब शोभा-सुन्दरता नष्ट हो गई।

दावानल से आगे-सदृश गरम पर्वत की तरह वह पुत्र के वियोग-शोक से बड़ी सन्तप्त हुई। फलरहित लता के समान वह

---

* प्रद्युम्न का ही दूसरा नाम 'देवदत्त' है। उसका यह नाम कालसंवर राजा ने रखा है। हम आगे सब जगह इसका नाम 'प्रद्युम्न' नाम से ही उल्लेख करेंगे।

शोभाहीन हो गई। रुक्मिणी को किसी प्रकार की कमी न थी—सब सुख उसे प्राप्त था; तो भी वह बड़ी ही दु:खी हो रही थी।

सत्य है स्त्रियों को पुत्र-वियोग-सदृश और कोई महा दु:ख नहीं होता। प्रद्युम्न के इस सहसा वियोग से कृष्ण, बलदेव तथा अन्य परिवार के लोगों और प्रजा को भी बड़ा ही दु:ख हुआ। इस प्रकार कृष्ण का सारा कुटुम्ब ही शोक-सागर में आकण्ठ मग्न हो गया। खाना-पीना-पहनना सबके लिए जहर हो गया।

इसी समय पुण्य के उदय से वहाँ नारद आ गये। उन्हें मान देकर कृष्ण ने प्रद्युम्न के हरे जाने का सब हाल कहा और उसका पता लगाने की प्रार्थना की। सुनकर नारद बोले—महाराज सुनिए। चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। मैं आकाशमार्ग से घूमता-फिरता पूर्वविदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में चला गया था। वहाँ केवलज्ञान-भास्कर श्रीस्वयंप्रभ तीर्थंकर विराजमान थे। मैंने उन सुरासुर-पूजित भगवान की वन्दना कर उनसे प्रद्युम्न का हाल पूछा था। उन्होंने उसके कई जन्मों का हाल कहकर कहा था कि किसी पूर्वजन्म के वैरी देव ने हरण कर प्रद्युम्न को एक घने वन में छोड़ दिया था।

विद्याधरों का राजा कालसंवर बड़े प्रेम से उसे अपने घर ले गया है। वह वहीं सुख के साथ बढ़ रहा है। अपने सुन्दर खेलों से नये माता-पिता का मन बहुत प्रसन्न करता है। सब ज्ञान-विज्ञान में होशियार होकर वह सोलह वर्ष बाद कई बड़ी-बड़ी विद्याओं को प्राप्त करके आयेगा।

उस परम उदयशाली कामदेव पुत्र के साथ सोलह वर्ष बाद

नियम से तुम्हारा समागम होगा। पुत्र के वैभवपूर्ण समागम से तुम बहुत आनन्दित होंगे। इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान के द्वारा प्रद्युम्न का हाल सुनकर मैंने तुमसे आकर कहा। इस कारण तुम चिन्ता छोड़कर सर्वज्ञ के कहे पर विश्वास करो।

नारद द्वारा पुत्र का हाल सुनकर श्रीकृष्ण-रुक्मिणी आदि सभी सन्तुष्ट हुए। उनकी चिन्ता मिट गई।

★ ★ ★

उधर विजयार्द्ध पर्वत पर कालसंवर के घर पुण्य से प्रद्युम्न को किसी प्रकार की कमी न थी। वह बड़े सुख से वहाँ रहता था। धीरे-धीरे बड़े होकर उसने जवानी में पैर रखा। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसकी बुद्धि, चतुरता, ज्ञान आदि बढ़ते ही गये।

अपने इन गुणों से उसने सब विद्याधरों को मोह लिया। वह बलवान भी बहुत था और चरम-शरीरी के बल का ठिकाना भी क्या? वह स्वयं त्रिभुवन को मोहित करनेवाला कामदेव था। भला, फिर उसकी सुन्दरता आदि किसे प्यारी न लगती। इत्यादि गुणों का धारक और जिन-भक्ति-रत प्रद्युम्नकुमार बड़े सुख के साथ कालसंवर के यहाँ रहता था।

एक बार कालसंवर ने सेना देकर प्रद्युम्न को लड़ाई पर भेजा। प्रद्युम्न ने रणभूमि में शत्रु से घोर लड़ाई लड़ी। इस युद्ध में विजय प्रद्युम्न की हुई। शत्रु को बाँध लाकर उसने अपने पिता कालसंवर के सामने रख दिया। कालसंवर उसकी यह वीरता देखकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ। उसने प्रद्युम्न का नाना प्रकार के वस्त्राभरणों से खूब

सत्कार किया और अपने सब पुत्रों में श्रेष्ठ उसे ही समझा। पुण्यात्मा का कौन मान नहीं करता ?

उस समय प्रद्युम्न ने शत्रुओं के नाश करनेवाले प्रताप और त्रिभुवन को मोहित करनेवाली उज्ज्वल कान्ति से सूरज और चन्द्रमा की शोभा धारण की। परम ऐश्वर्य-सम्पन्न वह, शत्रु और मित्र इन दोनों का ही यथेष्ट दान-मानादि से सत्कार करता था और इस कारण सत्पुरुष उसे कल्पवृक्ष समझते थे।

एक दिन—कालसंवर की रानी कंचनमाला सुन्दरता के घर इस कामदेव को देखकर बड़ी मोहित हो गई। वह काम से पीड़ित होकर हाव-भाव-विलास-विभ्रमादि द्वारा उस पर अपनी इच्छा प्रगट करने लगी। जन्मान्तर के प्रेम-सम्बन्ध से वह यहाँ भी विकार वश हो गई। इतना करने पर भी जब वह प्रद्युम्न को अपने पर न लुभा सकी, तब उसने सब लाज शर्म, भय, कुलीनता आदि को छोड़कर उससे कहा—

कुमार! मुझे प्यार कर जीवन-दान दो। इसके उपलक्ष में मैं तुम्हें एक **प्रज्ञप्ति नाम विद्या** बतलाती हूँ, तुम उसे सिद्ध कर लो। हाय! जिसने पहले पुत्र-भाव से जिसका लालन पालन किया, वही माता अपने पुत्र पर बुरी इच्छा प्रगट करे, यह सब लीला पापी काम की है, उसे धिक्कार है।

प्रद्युम्न ने अपनी माता के मनो-भावों को जान लिया। उसने तब केवल विद्यालाभ की इच्छा से वचनों द्वारा, न कि मन से कहा —अच्छा, मैं तुम्हारा कहा स्वीकार करता हूँ। सुनकर तब कंचनमाला ने उसे विद्या सिखला दी। कुमार उस अनेक सिद्धियों की देनेवाली

दिव्य विद्या को सीखकर सिद्धकूट चैत्यालय गया।

पाप नाश के कारण और ध्वजा आदि से सुन्दरता धारण किये हुए उस चैत्यालय को देखकर वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ। बड़ी भक्ति से उसने चैत्यालय की वन्दना की। वहाँ दो लोक-श्रेष्ठ आकाशचारी मुनिराज विराजमान थे, भक्ति से उन्हें नमस्कार कर उनके द्वारा उसने जिनप्रणीत पवित्र धर्म का उपदेश और संजयंत मुनि का चरित्र सुना।

इसके बाद प्रतिमा के सामने विधिपूर्वक विद्या सिद्धकर आनन्द से अपने शहर लौट आया। उस विद्या-लाभ से कुमार साण पर चढ़ाये हुए उज्ज्वल मणि की तरह दीप उठा। उस समय का कुमार का रूप त्रिभुवन की स्त्रियों के मन को मोहित करने के लिए एक मोहिनीसा बन गया।

रानी कंचनमाला कुमार की उस रूप-सुधा को पीकर बड़ी ही बे-चैन हो गई। उसे खाना-पीना कुछ न रुचने लगा। कुमार के बिना यह विशाल महल उसे वन-सा सूना जान पड़ने लगा। काम-पीड़ित होकर उसने अपनी इच्छा पूरी करने के लिए कुमार से बड़ी आरजू-मिन्नत की।

अबकी बार प्रद्युम्न ने उससे कहा—आप मेरी माता होकर मुझे ऐसा पाप करने के लिए क्यों कह रही हैं, यह नहीं जान पड़ता? माँ! तुम नहीं जानती क्या, इस घोर पाप से अनन्त काल संसार-सागर में बड़े-बड़े दु:ख उठाना पड़ते हैं। कुमार का यह रूखा उत्तर सुनकर कंचनमाला बोली—

कुमार! यदि यही बात थी तो पहले तुमने क्यों मेरा कहना

स्वीकार किया था ? और सुनो। मैं तुम्हारी माता भी नहीं हूँ। खदिर वन में तक्षकशिला के नीचे कोई तुम्हें दाब गया था। वहाँ से हम तुमको ले आये हैं। अब तुम्हारा मेरे पुत्र होने का सन्देह कहाँ जाता रहा ? अधिक क्या कहूँ, मैं प्रार्थना करती हूँ, तुम मुझे प्यार कर सुखी करो। कंचनमाला काम-पीड़ित होकर इस प्रकार न जाने क्या-क्या बका। प्रद्युम्न तो उसे बकती हुई ही छोड़कर झट से निकल आया। कंचनमाला यह देखकर बड़ी ही हताश हुई।

प्रद्युम्न के इस वर्ताव पर उसे बेहद क्रोध चढ़ आया। वह उसे बदनाम करने की इच्छा से नखों द्वारा अपना सब शरीर नोंच-नाचकर और कपड़े फाड़कर कालसंवर के पास पहुँची। उस सैकड़ों छल-कपट की खान, पापिनी रानी ने राजा से सिसकते सिसकते कहा—

नाथ! सौ पुत्रों के होते भी तुम्हारी इच्छा न भरी और पुत्र चाहरूप बात-रोग से तुम्हारा सिर घूम गया। सो न जाने किसके एक लड़के को और, जंगल में से उठा लाये। कहीं दूसरे का जाया पूत भी अपना हुआ है ? देखिए, जिसे मैंने इतने दिनों तक अपने पुत्रों से ज्यादा करके माना और पाला-पोसा, उस पापी, कामी और न जाने कहाँ पैदा हुए दुष्ट छोकरे ने मेरी क्या दुर्दशा की है ? (रोते हुए) हाय! उस दुराचारी ने मेरी छाती पर अपने तीखे नखों से कैसे घाव कर दिये! नाथ! (कालसंवर की छाती से लगकर) वह बड़ा दुष्ट है। उसे मैं तो अब एक पल भर भी अपने घर में न रहने दूँगी।

कंचनमाला के इस रोने-धोने से कालसंवर ठगा गया। रानी

की पाप-चेष्टा को न समझकर उस अविचारी मूर्ख ने क्रोध से आग-सदृश लाल होकर अपने विद्युदंष्ट आदि सुतों से कहा—जाकर तुम प्रद्युम्न को इस तरह छुपे तौर से मार डालो कि उसे कोई न जान पावे।

वे सब तो पहले भी कुमार पर जले-भुने बैठे हुए थे और ऐसे ही समय की राह देख रहे थे। अब और पिता की आज्ञा मिल गई, तब फिर क्या कहना ? पिता का कहा सर पर चढ़ाकर वे पाँच-सौ ही भाई खेलने का बहाना बनाकर कुमार को एक बड़े घोर वन में ले गये।

राजा लोग कोई काम करें, उसके पहले उन्हें इतना विचार अवश्य कर लेना चाहिए कि यह कहनेवाला कैसा आदमी है ? यह जो कुछ कह रहा है, वह झूठ है या सच ? यह इतना क्रोधित क्यों हुआ ? किसी ने इसे कष्ट तो नहीं दिया ? अथवा लज्जा, भय, मान, लोभ आदि से तो इसकी यह हालत नहीं हुई है ? या दूसरों के लांच वगैरह देकर तो इसे नहीं उकसाया है ?

इतना विचार करके काम करनेवाले कभी ठगे नहीं जाते। मूर्ख, विचाररहित कालसंवर ने पापिनी रानी के बहकाने में आकर जो प्रद्युम्न के मारने की आज्ञा दी, वह अच्छा नहीं किया। इस दोनों लोक में दु:ख देनेवाली मूर्खता को धिक्कार है।

उस वन में पहुँचकर उन दुष्ट भाईयों ने आग से धधकता हुआ यम के मुँह-समान एक कुण्ड देखा। उसे देखकर बड़ा डर मालूम देता था। वे प्रद्युम्न से बोले—भाई ! बड़े लोग इस कुण्ड के बारे में कहते आये हैं कि धीर-वीर की परीक्षा यहीं होती है। जो निर्भय

होकर इस कुण्ड में घुस पड़ते हैं, वे ही सच्चे वीर पुरुष हैं। कायर लोग इसमें नहीं घुस सकते। सुनकर पुण्यवान, महा धीर-वीर कुमार सब सिद्धि के देनेवाले पंच नमस्कार मन्त्र को याद कर बड़ी निर्भयता के साथ उस दुस्सह कुण्ड में झट से कूद पड़ा। कभी-कभी भावी के भरोसे सत्पुरुष भी अविचारक काम कर बैठते हैं।

उस कुण्ड-निवासिनी देवी ने वहाँ कुमार का दिव्य वस्त्राभरणों से बड़ा आदर किया। सच है, पुण्यवानों के लिए आग जल हो जाती है, समुद्र स्थल बन जाता है, विष अमृत हो जाता है, शत्रु-मित्र बन जाता है, क्रूर सिंह, सांप, दुष्ट पुरुष, और देवता वश हो जाते हैं और विघ्न सुखरूप हो जाता है। इस कारण सत्पुरुषों को जिनप्रणीत दान-पूजा-व्रत-उपवास आदि पुण्यकर्म करना चाहिए।

प्रद्युम्न को जल जाने के बदले उलटा महावैभव युक्त आया देखकर उसके दुष्ट भाई बड़े आश्चर्य में पड़ गये। वे फिर बोले— भाई! ये जो सामने मेंढ़े के आकार के दो पर्वत हैं, सुना है कि उनके बीच में वही पुरुष जा सकता है, जो बड़ा वीर है। कायर-डरपोक पुरुष की वहाँ तक पहुँच नहीं।

प्रद्युम्न दौड़कर उन पर्वतों के बीच में जा खड़ा हो गया। इतने में उसकी ऊपर की ओर नजर गई तो वह क्या देखता है कि वे दोनों पर्वत उसके ऊपर गिर रहे हैं। उस वीर ने तब उन पर्वतों को अपने दोनों हाथों से गिरने से रोक दिया और आप उनके बीच में बड़ी स्थिरता और निर्भीकता से खड़ा रहा।

उस वीरचूडामणि प्रद्युम्न को इस तरह भुजाओं के बल ऐसे

विशाल पर्वतों को रोके हुए देखकर पर्वत की देवता (देवी) बड़ी प्रसन्न हुई। उसने आनन्दित होकर प्रद्युम्न को दिव्य वस्त्र और रत्नों के कुण्डल की जोड़ी भेंट की और उसका बड़ा विनय किया, पुण्यवानों के लिए कुछ असाध्य नहीं।

यहाँ से निकलने के बाद उन दुष्टों ने प्रद्युम्न को बराह नाम पर्वत के भयानक बिल में जाने को कहा। प्रद्युम्न उस बिल में घुसने लगा कि एक अत्यन्त क्रूर विकराल और प्रचण्ड सूअर लाल-लाल आँखें किये मुँह फाड़े और भयानक गर्जना करता हुआ, उसके ऊपर दौड़ा-जान पड़ा, काल ही सूअर का शरीर लेकर उसके प्राणों को हरने को आया है। उसे पास आते ही प्रद्युम्न ने एक बड़े जोर का उसके मुँह पर थप्पड़ जमाकर और दूसरे हाथ से एक ऐसी सिर पर जमाई कि वह तत्काल अधमरा सा हो गया।

प्रद्युम्न की इस प्रचण्ड हिम्मत को देखकर प्रसन्न हुए देवता ने आकर बड़े विनय और भक्ति से शत्रुओं को भय पैदा करनेवाला एक **विजयघोष** नाम शंख और शत्रुमत्स्यों को फँसानेवाला, **महाकाल** नाम का जाल उसको भेंट किया। इन दोनों महा लाभों को लेकर प्रद्युम्न अपने भाईयों के पास आ गया।

थोड़ी दूर चलकर उन्हें **कालगुहा** नाम की एक गुहा (गुफा) मिली। उन लोगों ने प्रद्युम्न को उसमें घुसने के लिए कहा। प्रद्युम्न उसके भीतर निडर होकर चला गया। उसमें काल नाम का एक राक्षस रहता था। वह महा बलवान प्रद्युम्न को देखकर, उलटा उसके सामने आया। भक्ति से प्रणाम कर उसने एक **वृषभ** नामक

रथ तथा रत्न का बना हुआ **कवच** प्रद्युम्न को भेंट किया। इन दोनों चीजों को लेकर प्रद्युम्न बाहर आ गया।

यहाँ से थोड़ी दूर जाकर प्रद्युम्न ने इसी **विजयार्द्ध पर्वत** पर देखा कि कोई विद्याधर एक दूसरे विद्याधर के दोनों पावों को कीलकर चला गया है। उससे वह बेचारा बड़ा कष्ट पा रहा है। वटवे पर लगी हुई उसकी नजर से प्रद्युम्न उसके मन की बात जानकर उस बटवे के पास गया। उसमें से बन्धन-मुक्त करनेवाली अँगूठी निकाल कर प्रद्युम्न ने उसका अंजन उस विद्याधर की आँखों में आंज दिया। वह उसी समय बन्धन-मुक्त हो गया। खुश होकर उसने प्रद्युम्न को दिव्य **सुरेन्द्रजाल, नरेन्द्रजाल** और **पाषाणविद्या** इस प्रकार अनेक कामों की सिद्ध करनेवाली तीन विद्यायें भेंट कीं। जिसने प्राण बचाया उस प्राण बचानेवाले उपकारी का कौन बुद्धिमान उपकार न करेगा ?

अबकी बार अपने भाईयों की प्रेरणा से सरलमना, वीरश्रेष्ठ प्रद्युम्न ने शेषनाग के मन्दिर में जाकर **महाशंख** पूर दिया। उसकी ध्वनि सुनकर **नागकुमार** अपनी देवांगनासहित प्रद्युम्न के पास आया और प्रसन्न होकर उसने बड़े आदर के साथ एक दिव्य धनुष, नन्दक नाम तलवार और कामरूपिणी नाम एक अँगूठी भेंट की।

यहाँ से निकल उसने कैथ के एक बड़े भारी वृक्ष को सहज ही में खूब हिला दिया। उसमें रहनेवाली देवी ने प्रद्युम्न को रत्न की बनी हुई श्रेष्ठ एक जोड़ी खड़ाऊ प्रदान की। इस खड़ाऊ के बल आकाश से बड़ी अच्छी तरह चला जाता था।

यहाँ से चलकर प्रद्युम्न सुवर्णपादक नामक एक बड़े सुन्दर बाग में पहुँचा। वहाँ पाँच फणवाला साँप रहता था। उसने सन्तुष्ट होकर तपन, तापन, मोहन, विलापन और मारण ऐसे **पाँच बाण** बड़े आदर और प्रेम से प्रद्युम्न को दिये। पुण्य के प्रभाव से कौन आदर नहीं करता ?

एक धना क्षीरवन नाम का बड़ा भारी बाग था। प्रद्युम्न इस बाग में गया। यहाँ के एक बन्दर ने रत्नों की कान्ति से चमकता हुआ मुकुट, निर्मल औषधिमाला, मोती जिन पर लटक रहे हैं ऐसे तीन छत्र और गंगा की तरंग-सदृश उज्ज्वल दो चँवर भेंट किये। पुण्यवानों का बन्दर भी सहायक बन जाता है।

यहाँ से प्रद्युम्न कदम्बमुखी नाम बावड़ी पर पहुँचा। यहाँ से इसे पुण्य से शत्रुओं के बाँध लेनेवाला दिव्य **नागपाश** नामक अस्त्र प्राप्त हुआ। प्रद्युम्न को उन लोगों ने ऐसे स्थानों पर भेजा तो इसलिए था कि वह बे-मौत मर जाये। परन्तु प्रद्युम्न मरने के बदले उल्टा अनेक लाभ प्राप्त कर उन स्थानों से लौटा। यह देखकर वे लोग मन ही मन प्रद्युम्न से और अधिक जलने लगे। दुष्टों का यह स्वभाव ही होता है।

अबकी बार प्रद्युम्न को मार डालने की इच्छा से वे बोले— भैया! अब तक तो जो कुछ तुमने किया, वे सब साधारण बातें थीं—इनमें कुछ महत्व नहीं है। देखो, वह जो सामने पातालमुख नामक बावड़ी है, उसमें जो साहसकर कूद पड़ता है, वह महावीर सब पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट् बनता है। इस महालाभ के सामने अन्य लाभ कुछ गिनती में नहीं हैं।

बुद्धिमान प्रद्युम्न यह सुनकर उनकी दुष्टता को ताड़ गया। उसने तब प्रज्ञप्ति नाम की विद्या को अपना-सा रूप लेकर कूद जाने को कहा। प्रज्ञप्तिविद्या इशारा पाकर प्रद्युम्न-सा रूप धरकर झट से उस बावड़ी में कूद पड़ी। प्रद्युम्न छुपकर देखने लगा कि अब वे लोग क्या करते हैं? भ्रम से, प्रद्युम्न को बावड़ी में गिरता देखकर उन पापियों ने ऊपर से बड़ी-बड़ी पत्थर की शिलाओं से वह सारी बावड़ी पूर दी।

उनकी यह नीचता देखकर प्रद्युम्न को बहुत ही क्रोध चढ़ आया। उसने तब उन सबको नागपाश से बाँधकर नारकों की तरह बावड़ी में ओंधे मुँह लटका दिया और ऊपर से एक बड़ी भारी शिला ढँक दी।

प्रद्युम्न ने उन सबमें छोटे ज्योतिप्रभा को नहीं बाँधा था। सो उसे इस घटना की कालसंवर को खबर कर आने के लिए उसने मेघकूटपुर भेज दिया और आप आकर शिला पर बैठ गया। पापी लोग नाना तरह की चालें चलकर ठगना तो दूसरों को चाहते हैं, परन्तु पाप से उलटे आप ही ठगे जाकर अनेक कष्टों को सहते हैं।

इसी समय प्रद्युम्न ने **नारद** को आकाशमार्ग से आते हुए देखे। उठकर नारद का उसने बड़ा आदर किया और बड़े विनय से उन्हें अपने पास बैठाकर उनके आने का कारण पूछा।

सब बातें सुनकर वह आनन्द से बैठा हुआ था कि इतने में उसने आकाश में बड़ी भारी सेना को लेकर क्रोध से आग की तरह लाल हुए कालसंवर को आता हुआ देखा। प्रद्युम्न भी तब उठकर लड़ने को तैयार हो गया।

उसने कालसंवर से घोर लड़ाई लड़कर बात की बात में उसकी सब सेना को जीत लिया। कालसंवर को इससे बड़ा अपमान सहना पड़ा। वह अपनी सेना को लेकर भाग गया और जाकर पातालबावड़ी में छुप गया। इतने में उसके छोटे लड़के जयोतिप्रभ ने आकर बड़ी नम्रता से कहा—

पिताजी! पापी क्रोध को छोड़कर सुनिए। हम सब भाई प्रद्युम्न को मार डालने की इच्छा से जिस-जिस स्थान पर ले गये, वहाँ-वहाँ उसके पुण्य से देवी-देवताओं ने आकर उसे कई विद्यायें दीं और दिव्य वस्त्राभूषणों से उसका सत्कार किया। पिताजी! जान पड़ता है, आपको माता ने ठग लिया और इसी कारण आपने कुछ विचार न किया। पिताजी! स्त्रियाँ बड़ी पापिनी होती हैं। वे सब सच ही बोलती होंगी, यह विश्वास नहीं किया जा सकता। कौन जान सकता है—माता ने आपसे किस बुरे अभिप्राय से क्या कहा हो? परन्तु इतना अवश्य है कि स्त्रियाँ हजारों मायाओं की घर, दुष्ट और बड़ी ठगनियाँ होती हैं। इसलिए पिताजी! स्त्रियों पर तो कभी विश्वास न करना चाहिए। आप सदृश बुद्धिमानों को तो परलोक के लिए सदा सावधान रहना चाहिए।

पिताजी! आपने भी न जानकर और माता के वचनों पर विश्वास कर वृथा ही उस पुण्यवान के मारने का विचार किया। वह तो बड़ा ही धीर-वीर, गम्भीर, पवित्र हृदयवाला, सत्य बोलनेवाला, निर्लोभी और जिन-भक्तिरत धर्मात्मा है। पिताजी! मोह-पिशाच के वश न होकर आप अपने बुरे संकल्प को छोड़कर कुमार के साथ अच्छा बर्ताव कीजिए।

पुत्र के सत्य और अच्छे वचनों को सुनकर कालसंवर भी समझ गया। इसके बाद वह कुमार के पास जाकर झट से उसे अपनी छाती से लगा लिया और बड़ी शान्ति तथा मीठेपन से बोला—बेटा! तुम बड़े पवित्र हो और शील के समुद्र हो, सब बातों को जाननेवाले और विनय के मन्दिर हो। मैंने जो कुछ तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव किया, उसे क्षमा करो। सुनकर प्रद्युम्न ने बड़ी भक्ति से कालसंवर को नमस्कार किया।

इसके बाद उसने शिला उठाकर नागपाश से बँधे हुए उसके सब पुत्रों को बावड़ी से निकाल दिया और उन्हें क्षमा भी कर दी। संसार में क्षमा ही सत्पुरुषों का भूषण है।

मौका पाकर नारद ने प्रद्युम्न से कहा—बेटा, अभी सच्चा हाल तुम्हें मालूम नहीं है। अच्छा सुनो! ये कालसंवर महाराज जो इस समय तुम्हारे पिता कहे जाते हैं, वास्तव में ये तुम्हारे पिता नहीं हैं। किन्तु इन्होंने तुम्हें पाला-पोसा है। तुम्हारे खास पिता तो द्वारिका में हैं। वे त्रिखण्डेश और बड़े ही प्रसिद्ध महापुरुष हैं। सब विद्याधर-राजे और नर-राजे उन्हें मानते हैं—उनकी सेवा करते हैं। उनका नाम है **कृष्ण**। और उनकी पट्टरानी बड़ी व्रत-शील की पालन करनेवाली **रुक्मिणी** तुम्हारी माता है।

जबसे तुम्हारा हरण हुआ है, तब से वे बड़े कष्ट में हैं। तुम्हारे माता-पिता और सब यादवगण मेघ की ओर आँखें गड़ाये हुए चातक की तरह तुम्हारे आगमन की बाट जो रहे हैं।

नारद द्वारा यह हाल सुनकर प्रद्युम्न ने कालसंवर से कहा—महाराज! वास्तव में तो आप मेरे पिता हैं और महारानी कंचनमाला

माता है। क्योंकि दूध पिलाकर उन्हीं ने मुझे बड़ा किया है।

पिताजी ! मैं आपका बालक हूँ, मुझे आप क्षमा कीजिये। और मुझे आप आज्ञा दीजिये कि मैं द्वारिका जाकर आपकी कृपा से उन माता-पिता को भी सन्तुष्ट करूँ।

प्रद्युम्न का आग्रह देखकर कालसंवर ने उसे द्वारिका के लिए विदा कर दिया। इसके सिवा प्रद्युम्न अन्य स्नेहियों से भी पूछ पाछकर नारद के साथ वृषभ रथ पर सवार होकर बड़े आनन्द से द्वारिका की ओर चल दिया। रास्ते में नारद ने प्रद्युम्न से वह सब हाल जो स्वयंप्रभ जिन द्वारा उनने प्रद्युम्न के सम्बन्ध में सुना था, कहा।

अग्निभूति के भव से लगाकर अपना अब तक का विस्तार सहित सब हाल सुनकर प्रद्युम्न बड़ा आनन्दित हुआ। इतने में वे हस्तिनापुर में आ पहुँचे। यहाँ इस समय दुर्योधन की रानी जलधि से उत्पन्न हुई उदधिकुमारी के विवाह की धूमधाम मच रही थी।

कृष्ण की दूसरी रानी सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार के साथ उसका विवाह होना निश्चित हुआ था। उदधिकुमारी को मंगल-स्नान कर रत्नहार आदि बहुमूल्य आभूषणों से सजी हुई देखकर प्रद्युम्न ने अपने रथ में लाकर बैठा दिया और नारद को प्रस्तर नामक महाविद्या-शिला से ढक दिया। जिससे कि उन्हें अपने ये विनोद भरी बातें ज्ञात न हों।

इतना करके प्रद्युम्न आकाश से जमीन पर उतरा। अपनी विद्या के प्रभाव से उसने वहाँ बड़ी हँसी-दिल्लगी करना शुरु की। नाना तरह की चेष्टायें कीं। स्त्रियों के मूछें बना दीं और पुरुषों

के स्तन बना दिये। इसी तरह किसी के कुछ और किसी के कुछ और किसी के कुछ बनाकर उसने वहाँ के लोगों को बड़े विस्मय में डाल दिया।

यहाँ इतनी लीला कर वह मथुरा आया। यहाँ पर **पाण्डव** लोग कुटुम्ब-परिवार, स्त्री-पुत्र आदि को लेकर अपनी राजकुमारी का भानुकुमार के साथ विवाह करने के लिए द्वारिका जाने को राजसी ठाट से सजधजकर तैयार खड़े हुए थे। वहाँ प्रद्युम्न ने धनुष चढ़ाये हुए काल के सदृश डरावने भील का रूप लेकर माल-असबाब छीन लेने के बहाने पाण्डु के शूरवीर पुत्रों को विद्या के प्रभाव से थोड़ा नाच नचाकर कष्ट दिया।

वहाँ से द्वारिका पहुँचा। शहर बाहर ही ठहरकर उसने नारद को तो पहले की तरह पाषाण नाम महाविद्या-शिला से ढँक दिया और आप नीचे सत्यभामा के बाग में उतरा। वह बाग बड़ा ही सुन्दर और सब तरह से फल-फूलों से खूब फल-फूल रहा था। प्रद्युम्न ने वहाँ बन्दर बनकर बड़ा ऊधम मचाना शुरु किया। वह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और दूसरे से तीसरे पर, इस प्रकार सब वृक्षों पर दौड़ता हुआ उनके फलों को तोड़-तोड़कर इधर-उधर फैंकने लगा।

इस तरह उसने थोड़ी ही देर में सारे बाग की सुन्दरता को मटियामेट कर दिया। इसके बाद वह वहाँ की सब बावड़ियों का पानी अपने कमण्डलु में भरकर ब्रह्मचारी के वेष में निकला। रास्ते में उसने सत्यभामा की दासियों की बड़ी दिल्लगी की। वहाँ से द्वारिका के भीतर जाने के लिए प्रद्युम्न ने अपनी विद्या से एक रथ

तैयार किया। उसमें बड़े ऊँचे गधे और मेंढ़े जोते। तो वे भी उल्टे मुँह। इस रथ पर चढ़कर वह शहर-प्रवेश के दरवाजे पर पहुँचा और वहाँ आने-जाने का रास्ता रोककर खड़ा हो गया। लोग रास्ता रुका देखकर बड़े घबरा गये।

इस प्रकार सबके मन को प्रसन्न करता हुआ प्रद्युम्न वैद्य बनकर द्वारिका में घुसा। वह जाता हुआ जोर-जोर से कहता जाता था, जिस किसी के नाक-कान आदि कटे होंगे, मैं उन्हें बहुत जल्दी पीछा लगा दूँगा। किसी को कैसी भी भयंकर से भयंकर बीमारी होगा, मैं उसे क्षणमात्र में आराम कर दूँगा। मेरा नाम **शालक वैद्य** है। संसार के सब वैद्यों में एक मैं ही अच्छा वैद्य हूँ। उनकी इस हँसी भरी बातों और उसके खेलों से भानुकुमार को ब्याहने आई हुई राजकुमारियाँ बड़ी खुश होती थीं।

वहाँ से वह सुन्दर ब्राह्मण बनकर सत्यभामा के महल पर पहुँचा। इस समय वहाँ ब्राह्मण-भोजन की तेयारी हो रही थी। प्रद्युम्न ने भी उन सब ब्राह्मणों के साथ भोजन करने की सत्यभामा से प्रार्थना कर आज्ञा माँग ली। उसे वहाँ खूब अच्छा भोजन मिला।

माया से उसने बहुत कुछ खा लिया, तब भी रहा वह भूखा का भूखा ही। वह बारबार खाने को माँगने लगा और ज्यों ही उसकी पत्तल में कुछ परोसा कि वह बात की बात में उसे खा लेता था। और उसका माँगना फिर वैसा का वैसा ही जारी रहता था। यह देखकर सत्यभामा बोली—न जाने कहाँ से यह राक्षस ब्राह्मण बनकर मेरे घर पर आ गया ? जो परोसा जाता है, उसे आग की तरह खाता ही चला जाता है।

यह सुनकर प्रद्युम्न क्रोध से कह उठा—पूरा पेट भर खाने को भी नहीं दिया जाता और बन बैठी महारानी! ब्रह्मा ने क्यों इस लोभिनी को कृष्ण महाराज की रानी बनाया? मुँह फुलाकर इस प्रकार लोगों को सुनाता हुआ, वह सत्यभामा के महल से निकल गया।

वहाँ से क्षुल्लक बनकर अपनी माता **रुक्मिणी** के महल पर गया। जाकर वह रुक्मिणी से बोला—देवी! सुनता हूँ तुम बड़ी दयालु हो। मैं भूखा हूँ। मुझे कुछ अच्छा खिलाओ। सुनकर रुक्मिणी ने उसे छह-रसमय सुन्दर भोजन कराया। फिर भी वह भूखा ही रहा।

रुक्मिणी ने उसके मनोभावों को जानकर अबकी बार खास कृष्ण के लिये बने रखे मिष्टान्न को खिलकर उसकी भूख मिटाई। उस भोजन को करके वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ। वह थोड़ी देर के लिए वहीं बैठ गया।

इतने में रुक्मिणी की नजर अपने बाग के वृक्षों पर गई। उसने देखा कि असमय में ही चम्पे, अशोक आदि के वृक्ष फूल उठे हैं। जिन पर फल न थे, उन पर फल आ गये हैं। जिन पर पत्ते न थे, उन पर पत्ते आ गये हैं। कोकिलायें कुहू कुहू की ध्वनि से बाग को गूँजा रही हैं। भौंरे के झुण्ड के झुण्ड नये खिले सुगन्धित फूलों की सुगन्ध से खिंचे हुए आ रहे हैं।

इधर रुक्मिणी की भुजायें फरकने लग गईं। स्तनों में से दूध झरने लगा। सारा शरीर रोमांचित हो उठा।

मन में हर्षित होकर रुक्मिणी ने क्षुल्लक से कहा—महाराज! पुत्रसमागम का नारद ने जो समय मुझे बतलाया था, वह आ गया।

क्या तुम्हीं तो मेरे प्यारे पुत्र नहीं हो ? क्योंकि तुम्हें देखकर मुझे बड़ा प्रेम होता है। माता के प्रेम भरे वचन सुनकर प्रद्युम्न बड़ा सन्तुष्ट हुआ। तब अपना सच्चा रूप प्रगट कर उसने माता के पाँवों में प्रणाम किया। रुक्मिणी बड़ी आनन्दित हुई।

उस समय पुत्र-समागम से उसे जो सुख मिला उस प्रेम-सुख का कौन वर्णन कर सकता है ?

इसके बाद रुक्मिणी से उसने कालसंवर के यहाँ अपने सुखपूर्वक रहने, बढ़ने और विद्या वगैरह का महालाभ होने आदि का सब हाल अथ से इतिपर्यंत कह सुनाया। वह सब वृत्तान्त सुनकर रुक्मिणी बड़ी सन्तुष्ट हुई। वह बोली—

बेटा ! मेघ बरसने से सन्तुष्ट हुए चातक की तरह तुझे देखकर मेरे सब मनोरथ तो पूर्ण हो गये, परन्तु एक बात का बड़ा ही दुःख बना रहा कि मैं मन और आँखों को प्यारे तेरे बालपन का सुख न भोग सकी। सुनकर प्रद्युम्न उसी समय विद्या के प्रभाव से बालक बन गया और अपनी सब बाल-लीलाओं को दिखलाकर उसने माता को अत्यन्त प्रसन्न कर दिया।

सुपुत्र का यही लक्षण भी है कि वह अपने माता-पिता को प्रद्युम्न की तरह सुखी करे। इस प्रकार महिमाशाली प्रद्युम्न नाना तरह के हँसी-विनोद द्वारा अपनी माता का मन प्रसन्न कर रहा था।

उधर सत्यभामा ने यह सोचकर, कि अब तक रुक्मिणी का पुत्र नहीं आ पाया, रुक्मिणी के बाल लेने को अपना नाई भेजा। उस नाई ने आकर रुक्मिणी से कहा—महारानीजी, भानुकुमार का इस समय मंगल-स्नान होगा, इसलिए आप अपने बालों को दीजिए।

सुनकर प्रद्युम्न को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला—माँ! यह दुष्ट क्या बुरी तरह बोल रहा है ? रुक्मिणी बोली—बेटा! जिस समय तेरा जन्म हुआ, उसी समय सत्यभामा के भी भानु नाम का पुत्र हुआ था। हम दोनों की सखियाँ यह शुभ समाचार देने को कृष्ण महाराज के पास गईं। उस समय महाराज सो रहे थे। सो मेरी सखी तो उनके पावों के पास जाकर बैठ गयी और सत्यभामा की सखी उनके सिरहाने बैठी।

महाराज जैसे ही नींद से उठे कि पहले मेरी सखी ने प्रणाम कर उनसे कहा—राजराजेश्वर, महारानी रुक्मिणी के जो पुत्र हुआ, वह सब श्रेष्ठ लक्षणों का धारक और बड़ा ही खूबसूरत है। सुनकर महाराज ने मेरे ही पुत्र को पहला या बड़ा पुत्र कहा। अच्छा बेटा, सुन, अब मैं तुझे तेरे हरण होने के पहले का कुछ हाल कहती हूँ।

कृष्ण महाराज ने एक बार विनय नाम मुनि को मेरे और सत्यभामा की पुत्रोत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछा था। उनके द्वारा सब हाल जानकर मैंने और सत्यभामा ने जवानी के गर्व से अज्ञानी बनकर परस्पर में प्रतिज्ञा कर डाली कि जिसके पहले पुत्र होगा, वह एक दूसरी के केशों को कटवा मँगवाकर अपने पुत्र को विवाह-मंगल-स्नान करायेगी। बेटा, यद्यपि पहले पैदा तू ही हुआ था, तब भी तुझे दुष्ट धूमकेतु जो हर ले गया, इस कारण फिर सत्यभामा का पुत्र ही कर्मयोग से बड़ा पुत्र ठहराया गया। आज सत्यभामा के महल पर भानुकुमार का विवाह-मंगल-स्नान है। इसीलिए सत्यभामा ने मेरे केश लेने को इस नाई को भेजा है। कर्म का उदय बड़ा ही दु:सह है। माता के वचनों को सुनकर प्रद्युम्न

को बहुत ही क्रोध चढ़ आया। उसने तब विद्या-बल से उस नाई के नाक-कान आदि काटकर बड़ी बुरी सूरत बना दी। शूरवीर अपनी माता का ऐसा अपमान कभी नहीं सहन कर सकता। थोड़ी देर बाद सत्यभामा के बहुत से नौकर रुक्मिणी के महल पर चढ़ आये। प्रद्युम्न ने विद्या-बल से कृष्ण का रूप बनाकर उन लोगों की खूब ही निर्दयता से खबर ली।

इसके बाद जर नाम एक वीर आया। प्रद्युम्न ने अपना पाँव बढ़ाकर उसके भी एक लात जमाई। वह भी लम्बा बना। उसने फिर मेढ़े का रूप लेकर अपने पितामह वसुदेव को और सिंह बनकर बलदेव को भी जीत लिया।

इतना करके उसने एक और बड़ी भारी कौतुकपूर्ण लीला की। उसने अपनी माता रुक्मिणी को एकान्त में छुपाकर विद्या-बल से एक नई रुक्मिणी की सृष्टि की और उसे विमान में बैठाकर वह चलता बना।

यह देखकर द्वारिका में बड़ी खलबलाहट मची। कृष्ण उस पर बड़े बिगड़े। वे क्रोध से यम की सी भयंकरता धारण कर प्रद्युम्न के मारने को सेनासहित उसके पीछे दौड़े। उसने पीछे आते हुए कृष्ण को **नरेन्द्रजाल** नामक विद्या द्वारा बात की बात में जीत लिया। पुण्यवानों को विजय कहीं दुर्लभ नहीं।

इस समय नारद ने आकर हँसकर कृष्ण से कहा—महाराज! किस पर चढ़ाई कर रहे हैं? कुछ खबर है कि वह कौन है? अच्छा तो सुनिए। वह महारानी रुक्मिणी का पुत्र कामदेव प्रद्युम्नकुमार है और त्रिभुवन को मोहित करने के लिए मोहिनीरत्न है।

प्रभो ! इसके सम्बन्ध में जो तीर्थंकर भगवान ने कहा था, वह सब सत्य निकला। ठीक सोलह वर्ष बाद अनेक विद्याओं को प्राप्त कर यह आया है। महाराज ! द्वारिका में जो-जो नई घटनायें अभी हुई हैं, वे सब इसी ने अपने विद्या-प्रभाव से की हैं।

सुनकर कृष्ण बड़े ही सन्तुष्ट हुए, मानों उन्हें निधि मिल गई। इतने ही में प्रद्युम्न भी वहीं आ गया और बलदेव तथा कृष्ण के पाँवों में गिर पड़ा। उस अत्यन्त विनयी और प्रताप से सूर्य-सदृश पुत्र को देखकर कृष्ण वगैरह को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने खुशी के मारे फूलकर झट से उस सौभाग्य के मन्दिर प्रद्युम्न को उठाकर छाती से लगा दिया।

उसकी स्वर्गीय सौन्दर्य-सुधा का बारबार पानकर उन्होंने जो अपूर्व सुख लाभ किया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

इसके बाद प्रद्युम्न को एक बड़े भारी हाथी पर बैठाकर राजसी ठाठ के साथ कृष्ण सुन्दर द्वारिका में लिवा ले गये। चारणगण उसके आगे-आगे जय-जयकार करते जाते थे। नाना तरह के बजते हुए बाजों से सब दिशायें शब्द पूर्ण हो रही थीं। उज्ज्वल छत्र उस पर शोभा दे रहा था, चँवर ढुर रहे थे। मानों सब सेनासहित देवेन्द्र प्रतीन्द्र के साथ जा रहा है।

भानुकुमार के लिए उस समय जितनी सुन्दर राजकुमारियाँ आई हुई थीं, कृष्ण आदि ने उन सबका बड़े उत्साह के साथ फिर प्रद्युम्न से ब्याह कर दिया। उस समय अत्यधिक दान दिया गया। सबका उचित से अधिक मान-आदर किया गया। इस प्रकार सब बड़े घराने की राजकुमारियों से विवाह कर प्रद्युम्न बड़े पुत्र कहलाने

का सौभाग्य प्राप्त किया। सूर्य-सदृश प्रद्युम्न ने उस समय अपनी माता के हृदय-कमल को अत्यधिक प्रफुल्ल किया। इस प्रकार पुण्य उदय से बहुत काल इन लोगों का सुखपूर्वक बीता।

एक दिन किसी ज्ञानी ने आकर कहा—प्रद्युम्न का पूर्व जन्म का भाई भी स्वर्गलोक से आकर कृष्ण का पुत्र होगा। यह सुनकर सत्यभामा कृष्ण से जाकर बोली—नाथ! उस सुत का लाभ जब तक मुझे न हो, तब तक आप अन्य रानियों के मन्दिर न जायें। यह मेरी आपसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना है।

यह खबर जब रुक्मिणी को लगी तो वह ईर्ष्या के मारे जल गई। उसने तब प्रद्युम्न को एकान्त में बुलाकर कहा—बेटा! तू वह उपाय कर जिससे तेरा भाई मेरी प्रिय सखी जाम्बवती के पुत्र हो। सुनकर ज्ञान-विज्ञान-चतुर प्रद्युम्न ने वह अपने पास की कामरूपिणी नाम विद्या-अँगूठी, जिससे मनचाहा रूप धारण किया जा सकता है, जाम्बवती को दे दी।

उस अँगूठी को उँगली में पहनकर चालाक जाम्बवती सत्यभामा का रूप धरकर कृष्ण के पास गई और उनके साथ आनन्दपूर्वक उसने सुख भोगा।

उसी समय प्रद्युम्न का पूर्वजन्म का भाई क्रीडाव जो स्वर्ग में देव हुआ था वह, पुण्य से वहाँ से आकर जाम्बवती के गर्भ में आया। नौ महीने पूरे होने पर बहुत आनन्द और उत्सव के साथ जाम्बवती ने उस पुण्यात्मा को जन्म दिया। वह सब लक्षणों का धारक जवान जाम्बवती का पुत्र **संभवकुमार** भी बड़ा ही गुणी और मोक्षगामी है।

रानी सत्यभामा ने भी जो **सुभानु** नाम पुत्र-लाभ किया, वह भी बड़ा आनन्द का देनेवाला और गुणवान है। एक दिन बलवान सम्भवकुमार और सुभानु का गान-कला के सम्बन्ध में बड़ा ही विवाद हो गया था, परन्तु उस समय सुभानु हार गया।

संसार में सब जगह पुण्यवानों को ही जय, यश, सुख, लक्ष्मी, कीर्ति और कान्ति आदि प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार गणधर भगवान के मुखकमल से सब हाल सुनकर महारानी रुक्मिणी और सत्यभामा संसार-समुद्र में गिरानेवाला परस्पर का बैरभाव छोड़कर बड़ी मैत्रिणी बन गईं।

★ ★ ★

जिन शुद्ध चारित्र के धारक महामुनियों के उपदेश को सुनकर सिंह आदि क्रूर जानवर भी क्षणभर में जन्म-सिद्ध बैर भाव छोड़कर बड़े ही शुद्धमन हो जाते हैं, तब मनुष्य की तो बात ही क्या है ?

बलदेव भी गणधर भगवान के मुँह से प्रद्युम्न और सम्भवकुमार के चरित्र को सुनकर बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने फिर भक्ति से अन्य भव्यजनों के साथ गणधरदेव को नमस्कार किया।

सब सुर-असुर जिनके चरणों को पूजते हैं, सैकड़ों बड़े-बड़े योगी-ध्यानी मुनि जिनकी सेवा में सदा उपस्थित होते हैं, जो भव्यजनों के एक-सर्वश्रेष्ठ बन्धु या हितकर्ता हैं और जिन्होंने केवलज्ञान द्वारा मिथ्या अन्धकार को नष्ट कर दिया है, वे नेमिनाथ जिन सदा जयलाभ करें—उनका पवित्र शासन संसार में सदा विद्यमान रहे।

इति पंचदशः सर्गः।

सोलहवाँ अध्याय
कृष्ण की मृत्यु, पांडव और नेमिजिन का निर्वाण

जगद्गुरु नेमिजिन तीर्थंकर को नमस्कार कर बलदेव ने हाथ जोड़कर पूछा—हे प्रभो! हे भुवनाधीश और गुण-सागर! बतलाइए कि यह विशाल राज्य कृष्ण के पास कहाँ तक रहेगा? कबतक कृष्ण इसका सुख भोग सकेंगे?

सब संसार के एक श्रेष्ठ बन्धु, त्रिभुवन-स्वामी श्रीनेमिप्रभु बोले—''बलदेव! यह राज्य कृष्ण के पास बारह वर्ष तक रहकर अन्त में शराब का निमित्त पाकर नष्ट हो जायेगा; और **द्वारिका** द्वीपायन के निमित्त से आग लगकर **भस्म** हो जायेगी। कृष्ण जरत्कुमार के प्राण-संहारक बाण से मरकर घोर दु:खमय पहले नरक में जायेगा। दुष्कर्मों के फल से प्राप्त हुए कष्टों को वहाँ एक सागर-पर्यन्त सहकर वहाँ से निकलेगा।

फिर इसी भारतवर्ष में यह केवलज्ञानरूपी महान् साम्राज्य का स्वामी होकर देवताओं द्वारा पूज्यता लाभ करेगा। श्रेष्ठ गुणों का धारक होकर संसार नाश करेगा—मोक्ष जायेगा। और बलदेव! तुम कृष्ण के वियोग से अत्यन्त दु:खी और शोकाकुल होकर मोहवश छह महीने तक कृष्ण को कन्धे पर उठाये-उठाये फिरते फिरोगे।

इसके बाद सिद्धार्थ नाम देव के हितरूप प्रबोध से निन्दनीय शोक को छोड़कर परमार्थ समझ लोगे और फिर संसार-शरीर-भोगों से मुँह मोड़कर मन-वचन-काय की पवित्रता से जिनदीक्षा

ग्रहण कर घोर तप करोगे। इसके बाद तप के प्रभाव से माहेन्द्रस्वर्ग में कुछ अधिक सात सागर तक सुख भोगकर पुण्य-प्रभाव से इसी भारतवर्ष में जगत् का हित करनेवाले तीर्थंकर होंगे। तुम सदृश सूरज को पाकर भव्यजनरूपी कमल बड़ी प्रसन्नता लाभ करेंगे। इसके बाद लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त करके सब कर्मों का नाशकर तुम शुद्ध सिद्ध होंगे।''

नेमिप्रभु द्वारा यह सब हाल सुनकर **बलदेव** को सम्यक्त्व प्राप्त हो गया। जिनका कहा कभी झूठा नहीं होता। **द्वीपायन** वहीं बैठे हुए थे। सो नेमिजिन द्वारा यह सब हाल सुनकर उसी समय जिनदीक्षा लेकर देशान्तर को चल दिए। जरत्कुमार भयानक कौशाम्बी के वन में जाकर भील के वेश में रहने लगे। मूर्ख लोग दुराग्रह के वश हो कितने ही यत्न क्यों न करें, परन्तु जिन भगवान का कहना तो सत्य ही होगा।

त्रिखण्डाधीश कृष्ण ने नेमिजिन का संसार-सागर से पार करनेवाला उपदेश सुना, परन्तु पूर्व पापकर्म के उदय से जो उनके नरकायु का बन्ध हो चुका था, उससे उनकी इच्छा संयम ग्रहण करने की न हुई। उन्होंने तब सब सम्पदा के देनेवाले श्रेष्ठ सम्यक्त्व-रत्न को मन-वचन-काय की पवित्रता से आनन्दपूर्वक ग्रहण कर लिया। इतना करके वे अन्य लोगों से बोले—

सत्पुरुषों! मैं तो कर्मरूपी ग्रह से ग्रस लिया गया हूँ, इस कारण जिनदीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। परन्तु मैं किसी अन्य को इस पवित्र कार्य के लिए रोकता नहीं। इसलिए जिनका आत्मा बलवान है—जो वीर-शिरोमणि हैं, वे मोक्ष-सुख की प्राप्ति के

लिए परमानन्द देनेवाले नेमिप्रभु के संसार-ताप मिटाने को मेघ-सदृश चरणों की शरण लें।

इस प्रकार सब हाल उन्होंने क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बूढ़े और क्या बालक—आदि सभी के पास पहुँचा दिया।

यह सुनकर कृष्ण के प्रद्युम्न आदि पुत्रों और रुक्मिणी आदि महारानियों को संसार की दु:स्थिति देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने तब अपने कुटुम्ब परिवार के लोगों की अनुमति से सब परिग्रह और माया-ममता का त्याग करके नेमिप्रभु तथा अन्य मुनिराजों को बड़े प्रेम से नमस्कार कर देव-पूज्य संयम ग्रहण कर लिया। जिनप्रणीत तत्त्व के जाननेवाले निकट भव्यों को धन-दौलत छोड़ देने के लिए कोई महान साहस नहीं करना पड़ता।

इसके बाद कामदेव **प्रद्युम्न मुनि,** जांबवती का पुत्र बुद्धिमान **संभवकुमार** और महाधीर-वीर प्रद्युम्न का पुत्र **अनिरुद्धकुमार** इन तीनों बुद्धिमानों ने सबके चित्त को हरनेवाले चारित्र से शोभित होकर गिरनार के तीन शिखरों पर शुक्लध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया।

इन्द्रादि देवताओं ने आकर इनके चरणों की पूजा की। इसके बाद 'व्युपरतक्रियानिवर्ति' नाम ध्यान द्वारा बाकी चार अघातिया कर्मों का भी क्षयकर इन्होंने शिव-सुन्दरी का सुख लाभ किया। त्रिलोक-शिखर पर स्थित वे आठ गुणों के धारक सिद्धजिन संसार का हित करते हुए मेरे कर्मों का भी नाश करे।

★ ★ ★

एक बार परम सम्यग्दृष्टि त्रिखण्डेश कृष्ण ने बड़े धर्मानुराग

और आदर के साथ किसी साधु को **औषधिदान** दिया। उससे उन्हें विस्मयकारी तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध हुआ। यह सब योग्य ही है-जो भव्यजन साधु-सन्तों की भक्ति से सेवा-सुश्रूषा करते हैं, वे अवश्य अमृत पद-मोक्ष प्राप्त करते हैं।

केवलज्ञानरूपी सूरज **श्रीनेमिप्रभु** पहले की तरह अब भी भव्यजनों के पुण्य से नाना देशों में विहार कर **पल्लव** नाम देश में पधारे। प्रभु के आगे-आगे धर्मचक्र चल रहा था। देवता लोग उनके चरणों के नीचे सोने के कमल रचते जाते थे। हजारों विद्याधर राजे-महाराजे और बारहों गणधर उनके साथ चल रहे थे।

सुरासुर-पूज्य, त्रिजगद्गुरु भगवान रास्ते में भव्यजनों को पवित्र वचनामृत से संतुष्ट करते हुए जा रहे थे। आठ प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयों से वे युक्त थे। उनके आगे देवता लोग नगाड़े बजाते जाते थे और उनका जय-जयकार करते जाते थे। इस बीच में थोड़ा सा पाँच पाण्डवों का आवश्यक सम्बन्ध लिखा जाता है, उसे सुनिए।

★ ★ ★

द्रुपद काम्पिल्य नामक नगर के राजा थे। उनकी रानी का नाम **दृढ़रथा** था। **द्रौपदी** नाम की इन राजा-रानी के एक पुत्री थी। वह बड़ी सुन्दरी और खुशदिल थी। अपने गुणों से वह देवकन्या सदृश शोभा पाती थी। उसे भर जवानी में आई देखकर द्रुपदराज ने अपने बुद्धिमान मन्त्रियों को बुलाकर पूछा—अमात्यगण! बतलाइए द्रौपदी की शादी किसके साथ की जाये?

उनमें से पहला मन्त्री बोला—महाराज! पोदनापुर के राजा

चन्द्रदत्त और रानी देविला के जो **इन्द्रवर्मा** राजकुमार हैं, वे अच्छे बुद्धिमान हैं। अपनी कुमारी द्रौपदी का उनसे विवाह कर देना अच्छा है।

दूसरा मन्त्री बोला—प्रभो! आजकल **भीमराज** बड़े प्रतापी राजा सुने जाते हैं। अपना कन्या-रत्न उन्हीं के योग्य है।

यह सुनकर तीसरे मन्त्री ने कहा—राजन्! इन सबसे **अर्जुन** की बड़ी ख्याति है। वह है भी बड़ा शूरवीर और शत्रु-विजयी। उचित होगा कि राजकुमारी द्रौपदी उससे ब्याह दी जाये।

इन सबकी बातें सुनकर चौथा मन्त्री बोला—राजराजेश्वर! इन सबसे तो मुझे **स्वयंवरविधि** बहुत अच्छी जान पड़ती है। उसमें कन्या अपनी इच्छा के अनुरूप प्रसन्नता से किसी पुण्यवान के गले में वरमाला पहरा देगी और ऐसा करने से किसी के साथ विरोध भी न होगा। यह सब सुनकर बुद्धिमान द्रुपदराज ने सब मन्त्रियों का दान-मानादि से उचित आदर कर उन्हें विदा किया।

अन्त में—द्रुपद ने स्वयंवर करना ही स्थिर किया। उसके लिए बड़ी तैयारियाँ की गईं। एक से एक सुन्दर वस्तु उसके सजाने को इकट्ठी की गई। इस स्वयंवर में बड़ी-बड़ी दूर के राजे लोग छत्र-चँवर आदि राजसी ठाट के साथ आये। दुष्ट दुर्योधन ने शूरवीर पाण्डवों को जुआ में कूट-कपट से हराकर उनका राजपाट छीनकर देश बाहर कर दिया था।

हाय! तृष्णा बड़ी पाप की कारण है। वहाँ से वे एक धोखे के बने लाख के महल में ठहरे, परन्तु जब उन्हें पुण्योदय से दुर्योधन की चालबाजी ज्ञात हो गई, तब वे दरवाजे पर पहरा दे रहे किल्विष

नाम के सिपाही को मार झाट से सुरंग के रास्ते निकल भागे। वहाँ से वे भाग्य से इस काम्पिल्य नगर में आकर स्वयंवर-मण्डप में आ पहुँचे।

स्वयंवर-मण्डप राजे लोगों से भरचक भर गया। राजा द्रुपद ने जब जिन भगवान की पूजा करके सौभाग्य-रस की बावड़ी के सदृश राजकुमारी द्रौपदी को बहुमूल्य वस्त्राभरणों से खूब सजाकर बड़े आनन्द के साथ, तोरण-ध्वजाओं तथा सुवर्ण-रत्नों और नाना तरह के फूलों की मालाओं से दिव्य सुन्दरता धारण किए हुए स्वयंवर-मण्डप में भेजी।

मण्डप में आई हुई द्रौपदी द्रुपद की उज्ज्वल कीर्ति के समान जान पड़ी। अपनी रूप-सुन्दरता से त्रिभुवन में श्रेष्ठता का मान पायी हुई द्रौपदी सूर्य की कान्ति-सदृश सबके मनरूपी कमलों को प्रफुल्ल करती हुई सिद्धार्थ नामक राज-पुरोहित के पीछे-पीछे चल रही थी।

पुरोहित सब राजाओं के नाम कह-कहकर उनकी विभूति का वर्णन करता हुआ आगे-आगे बढ़ता जाता था और द्रौपदी सबको देखती जाती थी।

इन सब राजाओं को लांघकर वह **अर्जुन** के पास आई। अर्जुन को सब तरह योग्य देखकर द्रौपदी ने वरमाला उसके गले में डाल दी। यह देखकर लोगों की आनन्द-ध्वनि से स्वयंवर-मण्डप गूँज उठा।

उस समय उग्रवंशीय और कुरुवंशीय नीतिज्ञ राजाओं तथा अन्य राजगण ने द्रौपदी की प्रशंसा कर कहा कि यह बड़ा अच्छा

काम हो गया। सब लोग परस्पर में उसकी प्रशंसा करने लगे। द्रुपद भी बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद उन्होंने बड़े दान-मान से द्रौपदी का अर्जुन से विवाह कर दिया। सत्य ही है—पूर्व के पुण्य से जीवों को पग-पग पर लाभ होता ही है।

इस प्रकार सत्पुरुषों को हर्षित करनेवाले महान् उत्सव के साथ अर्जुन ने द्रौपदी को ब्याहा। ज्ञानीजन जो कुछ कह देते हैं, वह सत्य ही होता है। उसे जो मूर्ख झूठा कहता है, वह पापी है।

इसके बाद पाण्डव लोग राजसी ठाठ से साथ अपने नगर आ गये। वहाँ बड़ी भक्ति से उनने अभिषेक और जिनपूजा की। फिर वहाँ वे पुण्य के उदय से बड़े आनन्दपूर्वक रहने लगे।

कुछ दिनों बाद धर्मात्मा अर्जुन की **सुभद्रा** नाम की रानी से महा शूरवीर **अभिमन्यु** नामक बड़ा भाग्यशाली पुत्र हुआ और द्रौपदी के **पांचाल** नाम के पाँच पुत्र हुए। वे सब ही बड़े सुन्दर, गुणवान और साहसी थे।

इसके सिवा पाण्डवों के भुजंगशैलपुरी में **कीचक** के वध करने, विराट के यहाँ छुपी रीति से रसोइया, ग्वाल, ज्योतिषी आदि के वेश में रहने और बलपूर्वक गौओं को हरण करने आदि बातों का विस्तृत वर्णन 'पाण्डव-पुराण' आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए।

इसके बाद वीर-शिरोमणि युधिष्ठिर ने अपने भाईयों के साथ कुरुक्षेत्र में आकर कौरवों के साथ घोर युद्ध कर उन्हें पराजित किया और अपना सब राज्य वापिस उनसे लौटा लिया।

इसके पश्चात् युधिष्ठिर राज्य की ठीक व्यवस्था के लिए उसे अपने भाईयों में बाँटकर उनके साथ बड़े आनन्द से राज्यलक्ष्मी का सुख भोगने लगे।

इस प्रकार साहसी और जिनप्रणीत धर्म-कर्म में रत पाण्डवों के दिन, पुण्य से बड़े सुख से बीत रहे थे। इस प्रकार को यहीं छोड़कर एक दूसरी कथा लिखी जाती है, उसे सुनिए।

★ ★ ★

बारह वर्षों के पूरे होने में कुछ थोड़ा-सा समय बाकी रह गया था। कृष्ण ने उस समय शहर भर की दुकानों की शराब जंगल में फिंकवा दी। इसी समय **द्वीपायन मुनि** भ्रम से बारह वर्ष पूरे हुए समझकर इधर आये और द्वारिका के बाहर ठहरे।

यादवों के राजकुमार उस वन में खेलने को गये हुए थे, जहाँ कृष्ण की आज्ञा से शराब फैंकी गई थी। उन राजकुमारों को वहाँ प्यास लग आई। पाप की प्रबलता से उन्होंने धोखे से उस शराब को पानी समझकर पी लिया। नशे में मस्त होकर वे आ रहे थे। रास्ते में उन्होंने द्वीपायन मुनि को बड़ा तंग किया-मारा पीटा।

मुनि तीव्र क्रोध के वश हो निदान कर मरे। मरकर वे भवनवासी देव हुए। पूर्वभव का वैर याद कर वह देव क्रोध से जल उठा। उसने फिर क्षणभर में सुन्दर महलों और अट्टालिकावाली द्वारिका को भस्मीभूत कर दिया।

उस पापी ने क्रोध से जलकर बात की बात में धन-जन से भरीपूरी मनोहर नगरी को खाककर ढेर बना दिया। अरे! दुःख पाप और संसार के कारण क्रोध को धिक्कार है।

उस समय सारी द्वारिका में सिर्फ कृष्ण और बलदेव बच पाये। लोगों की इस प्रकार कष्ट से मृत्यु देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। दावानल से तपे पर्वत की तरह वे शरीरमात्र लेकर वहाँ से भागे और एक घने जंगल में आकर ठहरे।

जो पहले शत्रुओं के लिए एक बड़े भय की वस्तु थी, वे त्रिखण्डेश कृष्ण भी आज भागकर वन की शरण गये। अब उनके पास न ध्वजा है, न छत्र है, न चँवर है और न नौकर लोग हैं। पुण्य नष्ट होने पर जीवों की क्या दशा नहीं हो जाती ?

उस सिंह आदि जन्तुओं से भरे हुए वन में पहुँचकर रास्ते की थकावट से कृष्ण को बड़ी प्यास लग आई। उनका शरीर प्यास से मारे बड़ा शिथिल पड़ गया। काल की दूती की तरह मूर्छा ने उन्हें मोह लिया। एक वृक्ष के नीचे पड़े हुए वे मरे से जान पड़ने लगे।

कृष्ण की, बिना पानी के यह दशा देखकर बलदेव बड़े दुःखी हुए। वे भाई के मोह से उस घोर वन में अकेले ही जल ढूँढ़ने चल दिये। इसी समय भाग्य से **पापी जरत्कुमार** घूमता-फिरता मील के वेश में इस ओर आ निकला। उस विचारशून्य दुर्जन ने दुर्जन-सदृश अपने तीखे और निर्दयी प्राण-संहारक बाण से कृष्ण को वेध दिया। यह जीव पर्वत, जल, पाताल आदि किसी स्थान में क्यों न जाकर छुपने की कोशिश करे, परन्तु होनेवाले दुःख या कष्ट होकर ही मिटते हैं—उनसे वह कभी छुटकारा नहीं पा सकता।

इतने में बलदेव भी पानी लेकर आ गये। कृष्ण को पृथ्वी पर चेष्टाहीन सोये देखकर उनने कहा—भैया, उठो, हाथ-मुँह धोकर पानी पियो। ऐसी घोर चिन्ता में क्यों सोये हुए हो ? देखो, तो

तुम्हारा सब शरीर धूल में भर गया है। भैया, उठो उठो! मुझसे नाराज तो नहीं हो गये ?

भाई! तुम बोलते क्यों नहीं, मुझे तो बड़ी भारी चिन्ता हो गई है। भैया! उठकर मुझसे कुछ बोलो जिससे मेरे जी में जी आवे। भैया! राज्य-वैभव, धन-जन गये तो जाने दो, जहाँ तुम-सदृश वीर पुरुष मौजूद हैं, वहाँ सब सुन्दर सुन्दर वस्तुएँ आँख के इशारे मात्र से प्राप्त हो सकेंगी। तुम तो सब विषय की चिन्ता छोड़कर उठ बैठो।

इस प्रकार प्रेम भरे वचनों से बलदेव ने कृष्ण से बहुत कुद कहा-सुना, पर कृष्ण नहीं उठे। तब बलदेव ने उन्हें उठाने को हाथ से छुआ, इतने में उनकी नजर उस बाण के घाव पर पड़ गई। देखते ही दु:खरूपी दावानल ने उन्हें मानों घेर लिया—वे सिर थामकर बैठ गये; और घोर जंगल में दहाड़ मार-मारकर रोने लगे।

हाय! यह क्या बुरा हो गया! हाय! भैया, तुम्हारे इस वज्रसदृश शरीर को किस दुष्ट ने वेध दिया! हाय! वज्र के बड़े भारी खम्भे को एक छोटासा कीड़ा खा गया! हाय! पापी जरत्कुमार ने आकर तो कहीं मेरे इस वीराग्रणी भाई को नहीं मार दिया।

इस प्रकार बहुत शोक करने के बाद बलदेव उठे और मोह से कृष्ण को अब तक भी मरा हुआ न समझ उन्होंने उस शव को नहलाया, उस पर केशर-चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं का लेप किया और नाना तरह के सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा फूलों की माला पहनाकर वे उन अचेतन कृष्ण के शव को कन्धे पर उठाकर चल दिये।

मोहवश मरे हुए कृष्ण को भी जीता समझ वे कोई छह महीने तक पृथ्वी पर इधर-उधर घूमते-फिरे। उनकी यह दशा देखकर एक सिद्धार्थ नाम देव ने आकर उनको नाना उपायों द्वारा प्रबोध दिया। देवता के उपदेश से उन्हें अपने भले-बुरे की समझ पैदा हो गई।

फिर उसी समय उन्होंने चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं से कृष्ण का अग्निसंस्कार कर दिया। इस घटना से उन्हें बड़ा वैराग्य हो गया। वे संसार-शरीर-भोगों से अत्यन्त विरक्त हो गये। उसी समय नेमिजिन के समवसरण में जाकर उन्होंने बड़ी भक्ति से प्रभु के संसार-समुद्र से पार करनेवाले चरणों को नमस्कार किया।

इसके बाद वे पवित्रात्मा जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गये। बड़े निस्पृह भाव से उन्होंने चिरकाल तक जिनप्रणीत तप किया, शुद्ध चित्त होकर चार आराधना साधीं और रत्नत्रय प्राप्त किया। इसके बाद वे शल्यरहित संन्यास मरण कर माहेन्द्रस्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए। वहाँ अवधिज्ञान द्वारा पूर्वजन्म का सब हाल जानकर उन्होंने स्वर्ग-मोक्ष के देनेवाले जिनशासन की बड़ी तारीफ की।

अब तत्त्वज्ञानी वह महर्द्धिक देव स्वर्ग में बड़े सुख से स्थित है। हजारों देवी-देवता उसकी सेवा में सदा मौजूद रहते हैं। वह खूब पंचेन्द्रियों के सुखों को भोगता है और बड़ी भक्ति से जिनभगवान की पूजा-प्रभावना करता है। जो आगामी तीर्थंकर होनेवाला है, उसके गुण-रत्नों का कौन वर्णन कर सकता है। महासुख-सम्पदा के कारण जिनधर्म के प्रभाव से भव्यजन सुख लाभ करें, इसमें कोई सन्देह नहीं।

★ ★ ★

सर्वजयी और लोक-प्रसिद्ध पांडव, कृष्ण की मृत्यु का हाल सुनकर प्रभु और बन्धु-वियोग से बड़े दु:खी हुए। फिर वे संसार के डर से सब राज-पाट छोड़कर शीघ्र ही नेमिजिन की शरण आ गये। बड़ी भक्ति से उन्होंने लोकश्रेष्ठ और केवलज्ञानरूपी सूरज नेमिप्रभु की जल-चंदनादि श्रेष्ठ द्रव्यों से पूजा करके विनय से सिर झुकाकर स्तुति करना आरम्भ की।

हे देव! तुम त्रिभुवन के स्वामी देवताओं द्वारा पूज्य, केवलज्ञानरूपी श्रेष्ठ तेज के धारक और मिथ्यान्धकार के नाश करनेवाले हो। तुम भव्यजनों के रक्षक, पिता, स्वामी, बन्धु और संसार रोग का नाश करनेवाले एक श्रेष्ठ वैद्य हो। तुम नीचे गिरते हुए जीवों के दु:ख दूर करनेवाले और धर्मोपदेश द्वारा हाथ का सहारा देनेवाले हो।

प्रभो! बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे पास कोई हथियार नहीं, और तुम बड़े ही क्षमावान, तो भी तुमने बड़े भारी मोह बैरी का बड़ी सावधानी से नाश कर जगत का हित किया। देव! राग-द्वेष के सच्चे नाश करनेवाले संसार में तुम ही हो, इसी कारण तो तुमने संसार समुद्र का पवित्र किनारा प्राप्त कर लिया। हे देव! हे जिनाधीश और हे जगद्गुरो नेमिजिन! काम-शत्रु के नाश करनेवाले और संसार-सागर से पार पहुँचानेवाले वास्तव में तुम ही हो!

हे प्रभो! तुम सब दोषों से रहित हो, इसलिए तुम ही वन्दनीय हो, तुम ही पूज्य हो। और इसी कारण हम तुम्हारी शरण में आये हैं। नाथ! हमने तुम सदृश परमानन्द देनेवाले महापुरुष की शरण ली है, इसलिए कि तुम संसार के दु:खों से हमारी रक्षा करो।

इस प्रकार **त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभु की बड़ी भक्ति** से स्तुति कर पाण्डवों ने उनसे अपने **पूर्वजन्म** का हाल पूछा। उस समय अनन्त गुणों के धारक, जगत् के हितकर्ता, त्रिभुवन-पूज्य, संसार के पितामय-सदृश और दिव्यभाषा के स्वामी तेजोमय नेमिप्रभु सबके समझ में आनेवाली दिव्य भाषा में बोले-भव्यजन, सुनिए।

★ ★ ★

इस जम्बूद्वीप के सुन्दर भारतवर्ष में जो प्रसिद्ध अंगदेश है उसमें **चम्पापुरी** नाम एक प्रसिद्ध नगरी है। उसमें कुरुवंशी **मेघवाहन** नाम का एक राजा हो चुका है। वह बड़ा धर्मात्मा और राजनीति का जाननेवाला था। इसी चम्पापुरी में एक **सोमदेव** नाम ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम **सोमिला** था। वह बड़ी गुणवती और पतिव्रता थी। उसके तीन पुत्र हुए। वे तीनों ही बड़े ज्ञानी—सब शास्त्रों के ज्ञाता थे, उनके नाम **सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति** थे। उनका हृदय चन्द्रमा के समान बड़ा निर्मल-शुद्ध था।

उनके मामा का नाम **अग्निभूति** था। अग्निभूति की स्त्री अग्निला थी। उसके तीन पुत्रियाँ हुईं। वे सब बड़ी सुन्दर थीं। लक्ष्मी के सदृश पहली लड़की का नाम **धनश्री** और दूसरी तथा तीसरी का नाम **श्रीमती** और **नागश्री** था। लड़कियों के पिता अग्निभूति ने उन तीनों का विवाह क्रम से सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति से कर दिया।

इस प्रकार इन सबके दिन बड़े सुख के साथ बीतने लगे। कोई वैराग्य का कारण पाकर धर्मात्मा सोमदेव सब प्रकार निर्मोही होकर जिनभगवान के चरणों को नमस्कार कर साधु हो गया।

एक बार कर्मयोग से **धर्मरुचि** नामक मुनि लोगों के घर आहार के लिए आये, उन्हें देखकर मुनि-भक्ति-परायण सोमदत्त ने अपने छोटे भाई की बहू नागश्री से उन मुनि को आहार कराने के लिए कहा।

पापिनी नागश्री मन में यह सोचकर, कि जेठजी सदा मुझे ही हरएक काम के लिए जोता करते हैं, सोमदत्त पर बड़ी गुस्सा हो गई। सो उसने उन मुनि को प्राणहारी जहर मिला हुआ आहार करा दिया। जो आगामी दुर्गति में जानेवाले हैं, वे ही ऐसा दुष्कर्म करते हैं। वह जहर मुनि के सब शरीर में फैल गया। उससे उन्हें बड़ी वेदना सहनी पड़ी। अन्त में वे संन्याससहित मरण कर सर्वार्थसिद्धि में जाकर अहमिन्द्र हुए।

मूर्खजन साधु-सन्तों को भले ही तकलीफ दें, परन्तु वे तो अपने पुण्य से सद्गति का ही लाभ करते हैं। सोने को आग में तपाते हैं, घनों से कूटते हैं और कसौटी पर घिसते हैं, तो भी वह अपने गुणों से श्रेष्ठ लोगों के सिर का भूषण ही होता है।

सोमदत्त आदि सब भाई नागश्री के इस महापाप को जानकर बड़े दुःखी हुए, लज्जा और आत्मग्लानि के मारे वे लोगों को मुँह भी न दिखा सके। उन्हें इस घटना से संसार-शरीर-भोगों से बड़ा वैराग्य हो गया। वे सब धन-दौलत छोड़कर वरुण नामक मुनिराज के पास बड़ी भक्ति और उल्हास के साथ संसार-भ्रमण का नाश करनेवाली जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गये और उग्र तप करने लगे।

उधर धनश्री और मित्रश्री भी गुणवती नाम आर्यिका के पास संयम ग्रहण कर महातप करने लगीं।

इस प्रकार वे पाँचों जनें जिनप्रणीत चार आराधनाओं का आराधन कर हृदय में जिनभगवान का ध्यान करते हुए संन्याससहित मरकर पुण्य के प्रभाव से आरण और अच्युत स्वर्ग में सामानिक जाति के देव हुए। उनकी आयु वहाँ बाईस सागर की हुई।

अपने पूर्वजन्म का हाल जानकर वे सन्तुष्ट हुए। सदा जिन-पूजनादि सत्कर्मों को करते हुए उन्होंने वहाँ पंचेन्द्रियों के सुखों को चिरकाल तक भोगा। जिनधर्म के प्रभाव से कौन सुखी नहीं होते ?

नागश्री मरकर पाप के उदय से पाँचवें नरक गई। वहाँ उसने बहुत दु:ख भोगे। वहाँ से निकल कर वह स्वयंप्रभु नाम द्वीप में दृष्टिविष जाति का भयानक सर्प हुआ। मरकर वह दूसरे नरक गया। वहाँ उसने तीन सागर तक बड़े घोर दु:ख सहे। पापियों का संसार-समुद्र में भ्रमण होता ही रहता है।

वहाँ से निकलकर उसने इस दु:खरूप संसार में दो सागर तक स्थावरों में तीव्र दु:ख सहा। फिर कर्मयोग से वह चम्पानगरी में **चांडाल** के यहाँ लड़की हुई। एक दिन उसे **समाधिगुप्त मुनि** के दर्शन हो गये। नमस्कार कर उसने उनसे सुख का कारण जिनप्रणीत धर्म का उपदेश सुना और मद्य-माँस-मधु त्याग की प्रतिज्ञा की। आयु के अन्त मरकर वह पुण्य से चम्पापुरी में ही सुबन्धु महाजन की स्त्री धनदेवी के **सुकुमारी** नाम पुत्री हुई। किन्तु पूर्व पाप के उदय से उसका शरीर दुर्गन्ध युक्त हुआ।

इस चम्पापुरी में **वनदेव** नाम एक और महाजन रहता था। उसकी स्त्री का नाम **अशोकदत्ता** था। इसके जिनदेव और जिनदत्त

नाम के दो सुन्दर पुत्र हुए। सुख से बड़े होकर इन दोनों भाईयों ने जवानी में पैर रखा। इनमें बड़े भाई जिनदेव के विवाह के लिए कुटुम्ब के लोगों ने सुकुमारी को तजवीज किया। जिनदेव उसके दुर्गन्धित शरीर का हाल सुनकर सुव्रत नाम मुनिराज के पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया। तब छोटे भाई जिनदत्त ने इच्छा न रहते हुए भी माता-पिता आदि के आग्रह से सुकुमारी के साथ विवाह कर लिया। विवाह तो उसने कर लिया, परन्तु वह उसे भयानक सांपिन की तरह समझकर स्वप्न में भी छूना पसन्द नहीं करता था; और न कभी उससे बोलता था।

स्वामी की अपने पर इस तरह अकृपा देखकर कुमारी सदा दुखी रहती थी और दुर्भाग्य से प्राप्त हुए दुर्गन्धित शरीर तथा अपने पापकर्म की निन्दा किया करती थी। इस प्रकार खेदखिन्न होकर वह सदा अपनी पुण्य-हीनता पर विचार करती रहती थी।

एकबार कुमारी उपासी थी। उस दिन उसके यहाँ कुछ आर्यिकाओं के साथ सुव्रता नाम आर्यिका आई। उन सबको भक्ति से हाथ जोड़कर कुमारी ने पूछा—माताजी! इन और माताओं ने किस कारण से यह जिनप्रणीत पवित्र तप ग्रहण किया, वह मुझे कहो।

सुनकर सुव्रता बोली—बेटी, सुनो। पहले जन्म में ये दोनों सौधर्म-स्वर्ग में सौधर्मेन्द्र की देवियाँ थीं। एक बार ये धर्म-प्रेम के वश हो नन्दीश्वर द्वीप में जिनपूजा करने को गई थीं। वहाँ इन दोनों ने परस्पर में दृढ़ प्रतिज्ञा की कि 'हम मनुष्य-जन्म पाकर निश्चय से तप ही करेंगे।'

इसके बाद ये मरकर धन-जन से भरी-पूरी अयोध्या में श्रीषेण राजा की श्रीकांता नाम रानी के हरिषेणा और श्रीषेणा नाम दो सुन्दर पुत्रियाँ हुईं। जब ये जवान हुईं, तब बड़ा भारी व्यय करके श्रीषेण ने इनके विवाह के लिए स्वयंवर-मण्डप तैयार किया तो बड़ी-बड़ी दूर के राजे लोग स्वयंवर में आये।

ये दोनों बहिनें वरमाला लेकर सजे हुए स्वयंवर-मण्डप में आयीं। भाग्य से उसी समय इनको अपने पूर्वजन्म का बोध हो गया। ये तब भव-भोगों से बड़ी विरक्त हो गईं और बड़ी नम्रता से अपने माता-पिता तथा अन्य कुटुम्बीजनों को समझाकर और उन सबको विदाकर ये जिनदीक्षा ले गईं।

यह हाल सुनकर कुमारी भी बड़ी विरक्त हो गईं। उसने फिर उसी समय सुव्रता आर्यिका द्वारा जिनदीक्षा ले ली।

एकबार कुमारी ने देखा कि कुछ कुशील लोग वसन्तसेना नाम वेश्या के रूप-सौभाग्य पर मोहित होकर उससे बड़ी-बड़ी नग्न प्रार्थनायें और खुशामदें कर रहे हैं।

यह देखकर कुमारी ने निदान किया कि परजन्म में मुझे भी इसके सरीखी रूप-सुन्दरता प्राप्त हो। इस निन्दनीय निदान को करके कुमारी मरी।

तपोबल से वह अच्युत स्वर्ग में नागश्री के भव के पति सोमभूति की, जो इसी स्वर्ग में देव हुआ है, देवी हुई। सबके मन को प्यारे सुन्दर चिन्तामणि को देकर क्या तुच्छ कीमत का काँच नहीं खरीदा जा सकता।

हाँ सुनिये पांडवराज! वे जो स्वर्ग में तीनों भाई थे, वहाँ उनने

पुण्य के उदय से चिरकाल तक बहुत सुख भोगा। पश्चात् वहाँ की आयु पूरी कर वे तीनों भाई पाण्डु की कुन्ती नाम रानी के रत्नत्रय-सदृश तुम युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन हुए। और वे धनश्री और मिश्री के जीव पाण्डु की दूसरी स्त्री मद्री के नकुल और सहदेव हुए। पाण्डवराज, पूर्व पुण्य से तुम सब कलाओं में चतुर, वीर और धर्मात्मा हुए। और वह जो दुर्गन्धा कुमारी तप के प्रभाव से स्वर्ग में देवी हुई थी, सो स्वर्ग की आयु पूरी कर काम्पिल्य नगर के राजा द्रुपद की रानी दृढ़रथा के द्रौपदी नाम पुत्री हुई। वही गुणवती, धर्मात्मा और सुन्दरता की खान द्रौपदी अपने अर्जुन की प्रिया हुई।

इस प्रकार नेमिजिन द्वारा अपना सब हाल सुनकर पाण्डव बड़े सन्तुष्ट हुए। इसके बाद पाँच परमेष्ठी के सदृश जान पड़नेवाले वे पाँचों भाई जगत् के हितकर्ता नेमिप्रभु को बड़ी भक्ति से नमस्कार कर और बहुत से क्षमाशाली सत्पुरुषों के साथ जिनदीक्षा ले गये। मुनि होकर संसार-शरीर-भोगों से अत्यन्त निस्पृह और धीर वे पाण्डवगण खूब तप करने लगे।

इधर कुल की उज्ज्वल दीपिका सदृश **कुन्ती** और अर्जुन की स्त्रियाँ **सुभद्रा** तथा **द्रौपदी** ये तीनों **राजीमती आर्यिका** के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गईं और शास्त्राभ्यासपूर्वक जिनप्रणीत तप तपने लगीं। राग-द्वेष का नाश कर इनने हृदय को बड़ा पवित्र बना लिया।

अन्त में ये निर्मोही आर्यिकायें संन्यास-मरण कर सोलहवें स्वर्ग में गईं। वहाँ वे बड़ा मनोहर सुख भोग रही हैं। वहाँ से वे

पवित्र मनुष्य-जन्म लेकर जिनप्रणीत तप करेंगी और कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त कर अन्त में मोक्ष जायेंगीं।

उधर तप से जिनका आत्मा बड़ा पवित्र हो गया है, ऐसे भक्तिपरायण पाण्डवगण नेमिप्रभु के साथ पृथ्वीतल में विहार करते हुए शत्रुंजय पर्वत पर आये। दर्शन-ज्ञान-चारित्र से पवित्र पाण्डवगण यहाँ आकर आतापन-योग धारण कर ध्यान करने लगे।

पर्वत पर निश्चलतापूर्वक ध्यान करते हुए पाण्डव ऐसे जान पड़ने लगे मानों पाँच मेरु ही आ गये हैं। हृदय में वे नेमिजिनप्रणीत जीवाजीवादि सात तत्त्वों का निरन्तर विचार किया करते थे। शत्रु-मित्र में उनके समान भाव थे।

शरीर से इन्होंने बिल्कुल ही मोह छोड़ दिया था। स्वर्ण-पाषाण की तरह जीव और कर्म को उन्होंने सर्वथा भिन्न समझ लिया था। अपने आत्मा में वे स्थिर थे। यद्यपि वे तप के ताप से तप रहे थे तो भी उनका हृदय चन्द्रमा के सदृश बड़ा ही शीतल हो रहा था।

इसी समय दुर्योधन का भानजा दुष्ट **कुर्यवर** इस ओर आ निकला, पाण्डवों को देखकर, उसे उन पर अत्यन्त क्रोध चढ़ आया। इसलिए कि उसके मामा का वध इन्हीं के द्वारा हुआ था। तब उस बैर को याद कर उसने पाण्डवों को मार डालने के लिए अपनी सेना को उनके घेर लेने की आज्ञा दे दी। वही हुआ, उसकी सेना ने पाण्डवों को चारों ओर से घेर लिया।

इसके बाद उस पापी ने लोहे के बने हुए कड़े, कण्ठी, कुण्डल, मुकुट आदि आभूषणों को आग में खूब तपाकर उन शान्त साधुओं

के फूल सदृश कोमल सुन्दर शरीर में पहरा दिये, और इस प्रकार उस दुष्ट ने उन पर बड़ा ही घोर उपसर्ग किया–उन्हें महान कष्ट दिया।

कायर लोग जिसे नहीं सह सकते, ऐसे घोर कष्ट को भी बड़े धीरज के साथ सहकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन शुक्लध्यानरूपी अग्नि के कर्म–शत्रुओं को भस्मकर मोक्ष चले गये। और नकुल और सहदेव मुनि पुण्य के प्रभाव से सुख–समुद्र सार्वर्थसिद्धि में गये। त्रिभुवन–श्रेष्ठ वे पाँचों पाण्डव स्तुति–वन्दना करनेवाले भव्यजन के कर्मों का नाश करें।

देवतागण जिनके चरणों की पूजा करते हैं, ऐसे केवलज्ञानरूपी सूरज श्रीनेमिप्रभु ने 699 वर्ष 9 महीने और 4 दिन पर्यन्त विहार कर धर्मामृत से भव्यजनों को सन्तुष्ट किया और स्वर्ग–मोक्ष के मार्ग का प्रकाश किया। इसके बाद लोकश्रेष्ठ नेमिजिन योगी ने **प्रसिद्ध गिरनार पर्वत पर आकर एक महीने का योग–निरोध किया।**

यहाँ कोई 533 ज्ञानरूपी नेत्र के धारक ध्यान–तत्पर पवित्र मुनियों के साथ आषाढ़ सुदी सप्तमी के दिन, रात के पहले भाग में चित्रानक्षत्र का उदय होने पर पवित्रात्मा नेमिप्रभु ने व्युपरतक्रिया–निवृत्ति नाम चौथे शुक्लध्यान द्वारा चौदहवें गुणस्थान में, पाँच लघु अक्षर काल के उपान्त्य समय में 72 और अन्त्य समय में 13 प्रकृतियों का क्षय किया।

इस प्रकार चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर नेमिप्रभु एक ही समय में मोक्ष जाकर सिद्ध, बुद्ध और महान उज्जल–पवित्र हो

गये। सम्यक्त्व आदि आठ शुद्ध और प्रसिद्ध गुणों से युक्त और लोकशिखर पर विराजमान वे सिद्ध भगवान कल्याण करें–मोक्ष दें।

भगवान के निर्वाण–गमन के बाद ही इन्द्रगण, देव–देवांगना तथा भव्यजनों के साथ वहाँ आये। इसके बाद देवताओं ने पुण्य के निमित्त धर्मानुराग से, निर्वाण बाद बिजली की तरह नष्ट हो गये नेमिजिन के शरीर को पुनः रचा और उसे चन्दन, अगुरु आदि सुगंधित वस्तुओं की चिता पर रखकर अग्निकुमार देवों के मुकुटों से प्रज्वलित की हुई अग्नि से भस्म किया।

फिर बार–बार प्रणाम कर उन्होंने नेमिजिन की स्तुति की—हे नेमिजिन! हे नाथ! तुम पवित्र हो, त्रिभुवन के स्वामी हो और कर्म–शत्रुओं का नाश करनेवाले हो। तुम सिद्ध, बुद्ध और ज्ञाता–दृष्टा हो। तुम्हारा आत्मा बड़ा पवित्र है। हे देव! हे निरंजन! तुम अनन्त सुख के अब भोक्ता हो गये हो।

प्रभो! तुम साकार होकर भी निराकार हो—केवल शुद्ध चेतनारूप हो। नाथ! तुम्हारे प्रभाव से तुम्हारी कृपा से हम भी ऐसे हो जायेंगे।

इस प्रकार त्रिभुवन–श्रेष्ठ नेमिप्रभु की स्तुति कर देवताओं ने उनके शरीर की पवित्र और पाप नाश करनेवाली भस्म को बड़े प्रेम से ललाट, सिर, छाती और भुजाओं में लगाया और अन्य सब प्रकार के देवताओं के साथ खूब नृत्य किया, गाया, बजाया।

इस प्रकार भक्ति से जगच्चूड़ामणि नेमिप्रभु के पाँचों कल्याण कर त्रिभुवन के जीवों को सुख देनेवाले उनके गुणों को याद करते

हुए देवतागण सुखसम्पदा के कारण पुण्य का बन्ध कर अपने-अपने लोक को चले गये।

मेरे द्वारा पूजा-वन्दना किये गये, पंचकल्याण के स्वामी नेमिप्रभु मुझे अपनी भक्ति दें। क्योंकि उस भक्ति से ही मुझे स्वर्ग या मोक्ष का सुख मिल सकेगा। फिर मुझे अन्य कायक्लेश आदि के उठाने की कोई जरूरत न रहेगी। संसार में वही मनुष्य धन्य है और वही गुणों का समुद्र है, जिसके कि चित्त में जिनभगवान की निश्चल भक्ति है।

इस प्रकर महावीर भगवान के समवसरण में गौतमस्वामी ने अन्य तीर्थंकरों का पुराण कहकर जो नेमिजिन का श्रेष्ठ पुराण कहा, उसे सुनकर श्रेणिक महाराज बड़े सन्तुष्ट हुए।

मुझ मन्दबुद्धि ने जो महापुराण को देखकर यह नेमिजिन का उत्तम और भव्यजनों के सुख का कारण पुराण संक्षेप में सरल संस्कृत भाषा में लिखा, वह केवल भगवान की भक्ति के वश होकर लिखा है। इसलिए भक्ति-मुक्ति की कारण जिनके मुख-कमल से उत्पन्न हुई माँ सरस्वती, मुझे क्षमा करना, क्योंकि मैं व्याकरण आदि कुछ नहीं जानता।

मैंने तो केवल कथा का सम्बन्ध लेकर यह शुभ पुराण लिख दिया है। माँ! मैंने एक मूर्ख की तरह जो कुछ भी लिख दिया है, मुझे विश्वास है कि मेरा वह श्रम भी तुम्हारे प्रसाद से कर्मक्षय का कारण होगा। इसके सिवा जो सहनशील सज्जन जिन-वचन-रत हैं, उनसे मेरी नम्र प्रार्थना है कि वे बुद्धिमान जन इस पुराण का संशोधन करें।

नेमिजिन का यह पवित्र पुराण बातों बातों में सुना हुआ ही बहुत सुखों का देनेवाला है।

जैसे सूर्य के दूर रहते हुए उसकी प्रभा ही पृथ्वीतल के कमलों को सदा प्रफुल्लित किया करती है। यह जानकर जो भव्यजन नेमिजिन के इस सुख के कारण पुराण को सुनते हैं, पढ़ते हैं और दूसरों को पढ़ाते या सुनाते हैं, तथा लिखते हैं और लिखवाते हैं और भक्ति से नित्य उसकी भावना करते हैं, वे मनचाही वस्तु— लक्ष्मी, कीर्ति, यश, सुख, पुत्र, मित्र, स्त्री, आदि सुख की कारण सम्पत्ति तथा विशाल-राज्य, ज्ञान, मान, मर्यादा और क्रम से स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करते हैं।

यह धर्मशास्त्र है, अनन्त सुखों का देनेवाला है, यह जान कर हितैषी सज्जनों! भक्ति से निरन्तर इसकी भावना करते रहो। जो नेमिजिन के इस पवित्र पुराण का श्रद्धा-भक्ति के अनुसार आश्रय लेते हैं, वे केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं।

देवताओं ने भक्ति से जिनकी पूजा की, मोहान्धकार का नाश कर जिनने केवलज्ञान प्राप्त किया, और जो दोषों से रहित और गुणों के समुद्र हैं, भव्यजनरूपी कमलों को प्रफुल्ल करनेवाले वे नेमिप्रभु संसार का नाश कर सुख दो।

जो पहले चिन्तागति नाम विद्याधर राजा होकर चौथे स्वर्ग में गये; वहाँ से अपराजित राजा होकर अच्युतेन्द्र हुए; फिर सुप्रतिष्ठ नृपति होकर जयन्तविमान में अहमिन्द्र हुए और अन्त में हरिवंशरूपी आकाश के चन्द्रमा नेमिजिन तीर्थंकर हुए, वे भगवान सबकी रक्षा करो।

जिनके ज्ञान ने जीवादि पदार्थों से भरे हुए सारे संसार को सूक्ष्मता के साथ जान लिया और जिसके लिए आलोकाकाश में भी जानने के लिए कुछ न रहा और वह अनन्त होने के कारण लता की तरह त्रिभुवन में व्याप्त हो रहा है, वे त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभु सबका मंगल करो।

जो पहले सुभानु होकर पहले स्वर्ग में देव हुए; वहाँ से विद्याधर होकर चौथे स्वर्ग में गये; फिर शंख नामक महाजनपुत्र होकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए और वहाँ से नौवें बलदेव होकर फिर चौथे स्वर्ग में गये।

वहाँ वह देव खूब दिव्य सुखों को भोगता है, सदा जिनभक्ति में रत रहता है। उसे अणिमादिक आठ ऋद्धियाँ प्राप्त हैं और वह धर्म का बड़ा सेवन करता है। वहाँ से वह मनुष्य-जन्म लेकर संसार का नाश करनेवाला तीर्थंकर होगा।

जो पहले अमृतरसायन नाम से प्रसिद्ध होकर मुनि-हत्या के पाप से तीसरे नरक गया; वहाँ से इस गहन और घोरदुःखमय संसार में भ्रमण कर यक्ष नामक गृहस्थ हुआ, फिर निर्नामक नाम राजपुत्र होकर जिनधर्म के प्रभाव से दसवें स्वर्ग में श्रेष्ठ गुणों का धारक देव हुआ; फिर निदान कर पुण्य से इस भारतवर्ष में कृष्ण नाम अर्द्धचक्री-त्रिखण्डेश हुआ।

यहाँ इसने बड़ी निर्दयता से चाणूर पहलवान, कंस, जरासंध, आदि शत्रुओं को मारा। इसके बाद संसार के परम बन्धु, त्रिजगद्गुरु नेमिजिन की वन्दना कर और उनके द्वारा संसार से पार करनेवाले दयामय श्रेष्ठ जिनधर्म का उपदेश सुनकर इसने संसार दुःख का

नाश करनेवाले और त्रिजग के हितकर्ता निर्मल सम्यक्त्व को ग्रहण किया।

उस सम्यक्त्व के प्रभाव से यद्यपि इसने तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध कर लिया, परन्तु पहले जो **नरकायु का बंध** हो चुका था, उससे इसे प्रथम नरक जाना पड़ा। वहाँ से आकर यह **तीर्थंकर** होगा और देवतागण इसकी पूजा करेंगे।

यह सब एक धर्म का प्रभाव जानकर, पवित्र मन से अपने हित के लिए लौ लगाये हुए भव्यजनों! तुम भी शिव-सुख के कारण जिनधर्म में उल्हास के साथ अपनी बुद्धि को दृढ़ करो। उससे तुम दोनों लोक में सुख-सम्पदा प्राप्त कर सकोगे।

जो इन्द्रों द्वारा वन्दनीय और गुणरूपी रत्नों के पर्वत हैं, काम का दर्प चूर्ण करनेवाले और सब सन्देहों के हरनेवाले हैं, मोक्ष के देनेवाले और सब कल्याणों के कर्ता हैं, वे पवित्र नेमिप्रभु सदा जय-लाभ करें।

उन नेमिप्रभु की श्रेष्ठ वाणी केवलज्ञान की खान है, सुख-विलास की श्रेणी है और अत्यन्त शुद्ध-परस्पर के विरोधरहित है, उसे मैं अपने पवित्र हृदय में बड़ी भक्ति से विराजमान करता हूँ, वह मुझे क्षायिकदर्शनरूपी लक्ष्मी दान करो।

इति षोडशः सर्गः।

ग्रंथकर्ता का परिचय

मूलसंघ के तिलकरूप सरस्वतीगच्छ में **विद्यानन्दि** गुरु के पट्टकमल को सूरज की तरह भूषित (कमल के पक्ष में प्रफुल्ल) करनेवाले **मल्लिभूषण** गुरु हुए। वे ज्ञान-ध्यान-रत, प्रसिद्ध महिमाशाली और चारित्र-चूड़ामणि गुरुमहाराज पृथ्वीतल पर सदा जय-लाभ करें। मेरे ये गुरुदेव ज्ञान के समुद्र हैं। देखिए, समुद्र में रत्न होते हैं, गुरुदेव सम्यग्दर्शनरूपी श्रेष्ठ रत्न को धारण किये हुए हैं। समुद्र में तरंगें होती हैं, ये भी सप्तभंगीरूपी तरंगों से युक्त हैं—स्याद्वाद-विद्या के बड़े विद्वान हैं।

समुद्र की तरंगें जैसे कूड़े-करकट को निकाल बाहर फैंकती हैं, उसी तरह ये अपनी सप्तभंगीवाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्वरूपी कूड़े-करकट को हटा दूर करते थे—अन्यमत के बड़े-बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर विजय-लाभ करते थे।

समुद्र में मगरमच्छ घड़ियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं, परन्तु इन गुरुदेवरूपी समुद्र में यह विशेषता थी—अपूर्वता थी कि इसमें क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेषरूपी डरावने मगरमच्छ आदि न थे—समुद्र में अमृत समाया हुआ था।

समुद्र चन्द्रमा के उदय से बढ़ता है, ये जिनभगवानरूपी चन्द्रमा का सम्बन्ध पाकर बढ़ते थे। और समुद्र में अनेक बिकने योग्य वस्तुएँ रहती हैं, ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होनेवाली पुण्यरूपी विक्रय वस्तु को धारण किये हुए थे। अतएव ये समुद्र की उपमा के ठीक योग्य हैं।

जो मिथ्यान्धकार के नाश करने को सूरज के सदृश और जिन प्रणीत श्रुतज्ञान के समुद्र हैं, चारित्र के उत्कृष्ट भार को उठाये हुए और संसार का भय नष्ट करनेवाले हैं, भव्यजनों के अद्वितीय बन्धु और निर्मल गुणों के समुद्र हैं और जिनकी जिनभगवान के चरण-कमलों में बड़ी निश्चल भक्ति है, उन **सिंहनन्दि आचार्य** की सदा जय हो। उन्हीं सिंहनन्दि महाराज के उपदेश से मुझ सदृश तुच्छ बुद्धि ने भी भक्तिवश होकर नेमिप्रभु के शिवसुख के कारण इस सुन्दर पुराण को रच दिया। यह पवित्र पुराण खूब मंगल-सुख को बढ़ावे।

भव्यजनों! यह नेमिजिन का पवित्र पुराण तुम लोगों को शान्ति, कान्ति, सुकीर्ति, सुख-सम्पदा, दीर्घायु, सौभाग्य, सत्संगति, देवता द्वारा पूज्य श्रेष्ठ जिनधर्म, विद्या, उच्च-कुल और पुत्र-पौत्रादि से भरा-पूरा कुष्टुम्ब आदि धन-जन का सुख और अन्त में मोक्ष का सुख दे।

प्रध्वस्तधातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः॥

ॐ शान्तिः! शान्ति!!